मानचित्र (नक्शों से) परिष्कृत सातवीं बड़ी –

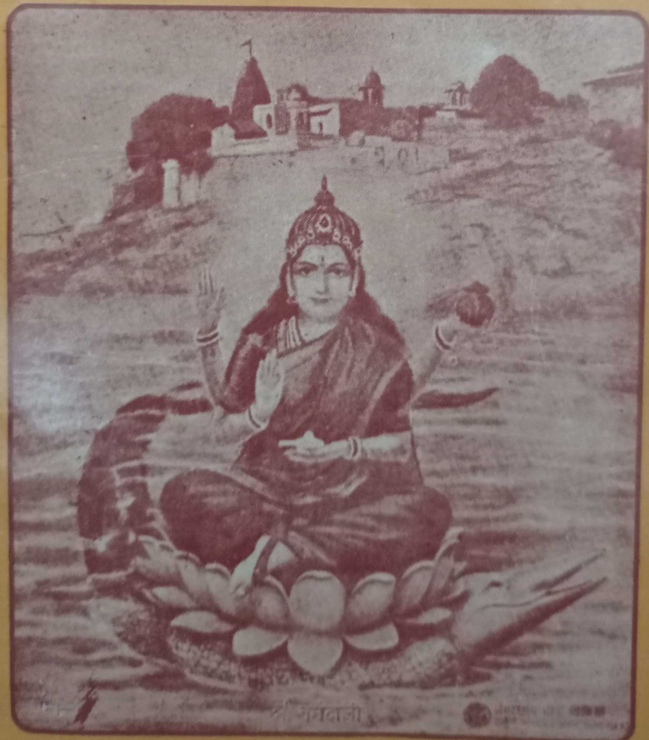
श्रीनर्मदा प्रदक्षिणा

४८९ से भी अधिक तीर्थ स्थानों की पौराणिक कथा

तथा माहात्म्य वर्णन

श्रीनर्मदा देवी

उभयतटपुण्यतीर्था प्रक्षालित सकललोकदुरित्तौघा ।
देव-मुनि-मनुजवन्द्या हरतु सदा नर्मदा दुरित्तम् ।।



ब्रह्मलीन तपोमूर्ति स्वामी ओंङ्कारानन्द गिरिः

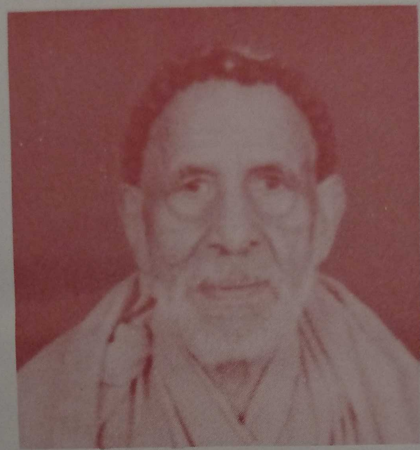
विषय-सूची

पृष्ठ

श्रद्धांजलि

नर्मदे हर - नर्मदे हर - नर्मदे हर

ब्रह्मनिष्ठ तपोमूर्ति पू.स्वामी ओंङ्कारानन्द जी महाराज



नर्मदा सत्संग भवन एवं ज्ञानसत्र न्यास के संस्थापक परम पूज्य स्वामी ओंङ्कारानन्द जी दिनांक:-१४-६-२००२ को ब्रह्मलीन हो गये, उनको **विवेक आश्रम,** माया कुण्ड, ऋषिकेश पर सभी संत महात्माओं की उपस्थिति में गंगा की धारा में जल-समाधि दी गई ।

तपोमूर्ति पू. स्वामी जी आजीवन अपनी निजि साधना एवं जन कल्याण की भावना के द्वारा जन-चेतना के विश्वास को धर्म में द्रढ़ कराते रहे। अपने प्रवचनों एवं प्रकाशनों द्वारा जो पूँजी वह हमको दे गये हैं, वह अमूल्य है, हमारे द्वारा उनका प्रचार प्रसार एवं आचरण ही स्वामी जी को सच्ची श्रद्धांजलि है। आप और हम सभी इस दिशा में अग्रसर हों इसी विनती के साथ-

- **विनीत**

गिरजा शंकर शर्मा

ॐ

नर्मदा सत्संग भवन एवं ज्ञान सत्रायन

आज से लगभग ३७ वर्ष पूर्व नर्मदा तट नर्मदापुर होशंगाबाद म.प्र. में स्व.पं० रामलाल शर्मा ने ब्रह्मलीन स्वामी ओंकारानन्द गिरी की प्रेरणा से नर्मदा सत्संग भवन की स्थापना की। ज्ञानवान तपस्वी महात्माओं तथा कथाकारों के द्वारा स्वाध्याय, प्रवचन कथा निरंतर चलती रहे, ऐसा उद्देश्य था। विगत ३७ वर्षों से यह क्रम न्यूनाधिक निरंतर चल रहा है। कालांतर में ब्रह्मलीन स्वामी ओंकारानन्द गिरी ने स्वयं तथा कुछ अन्य दानदाताओं से राशि एकत्रित कर ज्ञान सत्र प्रकाशन की स्थापना की, जिसका कार्य संपादन नर्मदा सत्संग भवन से ही हो रहा है। ज्ञान सत्र प्रकाशन नर्मदा पुराण, नर्मदा कल्पवली एवं नर्मदा प्रदक्षिणा जैसी अनेक धार्मिक पुस्तकों का प्रकाशन कर उनको यथा संभव कम मूल्य पर आम जन को उपलब्ध करा रहा है। स्वामी ओंकारानन्द गिरि के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् उनके गुरुभाई स्वामी अमरानन्द गिरि तात्कालिक रूप से ज्ञान सत्र प्रकाशन का कार्य संपादित कर रहे हैं। ब्रह्मलीन तपोमूर्ति स्वामी ओंकारानन्द जी के ब्रह्मलीन होने के उपरांत ज्ञान सत्र प्रकाशन न्यास का यह द्वितीय प्रकाशन है। तपोमूर्ति स्वामी ओंकारानन्द गिरि जिनके ज्ञान, कर्म, और त्याग की त्रिवेणी ने न्यास को सदैव प्रेरणा देकर गतिशील रखा, के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए श्री नर्मदा प्रदक्षिणा का सप्तम संस्करण आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

अक्षय तृतीया

२२ अप्रैल २००४

निवेदक-

ज्ञान सत्र प्रकाशन ट्रस्ट

नर्मदापुर, होशंगाबाद म.प्र.

नर्मदा प्रदक्षिणा

प्रदक्षिणा या परिक्रमा देवता की देवमन्दिर की यज्ञस्वरूप भगवान् की उनके मण्डप की ग्राम की नगर की पवित्र क्षेत्रों की तीर्थ स्थानों की क्या समस्त भूमण्डल की भी लोक में वेदशास्त्र में प्रचलित है। प्रदक्षिणा पूज्य माता पिता की पूज्य देवी देवताओं की उनके स्वरूप विशेष या आकार के परिमाण पर निर्भर है, जो कुछ क्षणों में घड़ी दो घड़ी में दिनों में महीनों में तथा वर्षों में भी पूर्ण की जाती है। यह बात संख्या पर भी अवलम्बित है।

'शिवस्यार्ध प्रदक्षिणा' शिवमन्दिर में शिव की आधी किसी की तीन पाँच सात तथा एक सौ आठ अथवा सहस्त्र बार भी करने की लगन होती है प्रदक्षिणा मन्त्र जाप भगवन्नाम स्मरण पूर्वक ही की जाती है। समाहित चित से शनैः शनैः करने की विधि है। पनहारिन शिर पर घड़े रखकर धीरे धीरे जैसे वह चलती है उसी प्रकार शान्त भाव से इष्टदेव का ध्यान-चिन्तन करते हुए की जाती है। साधकों के लिए महत्वपूर्ण साधना यह मानी जाती है।

परिक्रमा उपासना का एक अंग है जो अनुष्ठानों की समाप्ति का भी सूचक है। देवालयों में आरती के अनन्तर स्तुति-वन्दना नमस्कारादि कर चुकने पर परिक्रमा करके प्रसाद ग्रहण की विधि है। इसका फल भी शास्त्रों में—

यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च।
तानि तानि प्रणश्यन्तु प्रदक्षिणा-पदे पदे॥ इस मन्त्र से निर्दिष्ट है—जीवन में किये गये पाप, जन्मान्तरों में भी हुए पाप सभी प्रदक्षिणा करते हुए व्यक्ति के पग पग पर वे विनष्ट हों ऐसी भावना की जाती है।

इससे स्पष्ट है पापों की निवृत्ति ही प्रदक्षिणा का उद्देश्य है। प्राणी पाप कर्म के परिणामस्वरूप दुःख भोगते हैं और दुःखों की निवृत्ति सबको अभीष्ट है जिससे सुख की भी पूर्ण संभावना रहती है तथा पुण्य के प्रताप से ही सुख प्राप्त होता है। पुण्य पवित्र अदृष्ट फल माना जाता, है अतः अन्तःकरण की शुद्धि या मन का पवित्र हो जाना इस उपासना रूप प्रदक्षिणा का चरम लक्ष्य है जिसे साधक श्रद्धा सहित अंगीकार करते हैं।

कार्तिकेय और गणेश की प्रदक्षिणा

पुराणों में—कार्तिकेय जिन्हें स्कन्द षडानन भी कहा जाता है उन्होंने तथा गजानन ने माता पिता की आज्ञा पाकर विशेष फल लाभ से परिक्रमा की थी कथा प्रसिद्ध है—दोनों बन्धुओं को विवाह को लालसा हुई। शिव पार्वती ने भी परीक्षा लेना चाही। कहा—जो पृथिवा की परिक्रमा करके प्रथम आयगा उसका विवाह प्रथम होगा। पितृ मातृ-भक्त अपनी बुद्धि के अनुरूप माता पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके स्कन्द ने समस्त भूमण्डल की सर्वप्रथम प्रदक्षिणा की स्कन्द पुराण सबसे बड़ा इसका साक्षी है।

स्कन्द ने भूतल पर स्थित समस्त सुर सरिताओं की तीर्थ स्थानों की जो जहाँ स्थित रहे भूपरिक्रमा में उन सबकी क्रमशः प्रदक्षिणा की जिसका वर्णन पुराण में बड़े विस्तार से हुआ। इसी पुराण के अन्तर्गत अवन्तिका खण्ड तथा रेवा खण्ड जो 'नर्मदा पुराण' माना जाता है २३६ अध्यायों में प्रसिद्ध हुआ। आशय यही उन्होंने नर्मदा जी की भी तब प्रदक्षिणा विधिवत् की थी।

गणेश जी ने स्थूलकाय लम्बोदर होने से शास्त्र वचनानुसार बुद्धिमत्ता से माता पिता को पवित्र भू का पूर्ण स्वरूप मानकर उनकी परिक्रमा करके अपना विवाह भी प्रथम करा लिया।

मार्कण्डेय की प्रदक्षिणा

उसी पुराण में चिरायु महर्षि मार्कण्डेय ने भी नर्मदा जी का परिक्रमण किया प्रसिद्ध है। सहायक नदियों को भी उपास्य मानकर उनके उद्गम स्थल को पार करके दीर्घ काल तक नर्मदा जी की विधिवत् प्रदक्षिणा उन्होंने की।

इतना ही नहीं प्रलयकाल एक दो नहीं २१ वार उन्होंने देखे जिसमें नर्मदा जी को अमर पाया और माँ नर्मदा की कृपा से वे प्रलय में भी सुरक्षित रहे। २१ कल्पों की अत्यन्त रोचक कथा पुराणों में है। पाण्डवों ने वनगमन के प्रसंग में बड़ी जिज्ञासा से नर्मदा जी की महिमा सुनी। मार्कण्डेयजी ने अपनी चिरस्मृति के अनुसार उन्हे नर्मदा तटवर्ती तीर्थों का देवाधिदेव महादेव के नाम से प्रसिद्ध स्थानों का वर्णन किया। क्रमिक की कोई बात आड़े नहीं आने दो। बस 'ततो गच्छेत्' फिर वहाँ जाय-फिर वहाँ जाय कहकर अमरकण्टक से रेवासागर संगम पर्यन्त सहस्रों तीर्थों का उल्लेख किया। उनके नाम पर अनेकों स्थान आज भी प्रसिद्ध हैं।

मार्कण्डेय शिला, मार्कण्डेय मन्दिर, मार्कण्डेय संन्यास आश्रम ओङ्कारेश्वर में सदैव उनकी स्मृति में जागरूक हो रहे हैं। महर्षि मार्कण्डेय ने प्रदक्षिणा के

व्याज से नर्मदाजी का दिव्य वैभव प्रगट किया। जिसकी ओर अभी भी पवित्र साधक आकृष्ट होते रहते हैं।

प्रदक्षिणा के प्रकार

नर्मदा जी पूर्व दिशा से प्रगट होकर पश्चिम की ओर प्रवाहित हुईं। पश्चिमाभिमुख होने से उनका दाहिना अंग उत्तर तट और वामांग दक्षिण तट माना जाता है। परिक्रमा करने वाले उन्हें सदैव दाहिनी ओर रखकर चलते हैं अतः प्रदक्षिणा नाम परिक्रमा का पड़ा। यह प्रदक्षिणा मुण्डमाल प्रधान है, मस्तक में पड़ी माला के समान प्रमुख स्थान निर्धारित कर उसकी दोनों ओर परिक्रमा करने से पहली मुण्डमाल प्रदक्षिणा, दूसरी जलहरी परिक्रमा जिसमें जलाधारी अर्थात् जलहरी के भीतरी बाहरी भाग को दुहराने से दोनों तटों पर दो वार परिक्रमण करने से पूर्ण की जाती है। तीसरी हनुमान परिक्रमा दोनों तटों पर उछल कूद कर पार करके भी पूर्ण करते हैं जिसे सैलानी ही प्रायः किया करते हैं। यही तीन प्रकार देखे सुने जाते हैं।

सबसे बड़ी परिक्रमा

पृथिवी की परिक्रमा को छोड़कर देवस्थानों की तीर्थों की परिक्रमाओं से नर्मदा जी की परिक्रमा बड़ी है। काशी की पञ्चक्रोशी, अयोध्या मथुरा की, 'वृज चौरासी कोश की, नैमिषारण्य-जनकपुर आदि की परिक्रमाओं से बड़ी १७८० मील की परिक्रमा नर्मदा जी की प्रसिद्ध है। जो पैदल पादचारी हुएही की जाती है अत एव इसका महत्त्व सर्वोपरि है। परिक्रमा कब और किस नियम से उठाना चाहिए इसका भी विचार यहाँ आवश्यक है।

अधिक से अधिक समय जप-तप अनुष्ठानादि की सिद्धि में लगे इस धारणा से पवित्र साधक अपनी साधना आजीवन करते हुए यहाँ सिद्ध हो जाते हैं। इसी लक्ष्य से तथा शास्त्र के आधार पर कितने दिन कितनी रात्रि किस तीर्थं में व्यतीत करना चाहिए यह ध्यान में रखते हुए तीन वर्ष तीन महीने तेरह दिन की भी बात नर्मदा प्रदक्षिणा की प्रसिद्ध हुई।

वैसे सर्व साधारण जन कामना की पूर्ति जो मान्यतानुसार होती है तदर्थ थोड़े समय में ही परिक्रमा कर लेते हैं। और कोई निष्ठा पूर्वक जप तप की सिद्धि करते व्रत नियम लेकर १०८ दिन में भी महापुरूष प्रदक्षिणा करते देखे गये।

कोई-कोई साष्टांग प्रणाम करते हुए वर्षों तक घोरतप करते हुए परिक्रमा करते हैं जो अत्यन्त कठिन है। ये सब सकाम भाव से ही करते हैं। किन्तु

निष्काम साधक सन्त गण केवल नर्मदा जी की महती अनुकम्पा, दिव्य ऐश्वर्य निहारने की लालसा, सिद्ध महात्माओं का ही क्यों भगवान् सदा शिव और उनकी विभूतियों का दर्शन पाने हेतु प्रदक्षिणा के व्याज से दीर्घकाल तक एकाकी विचरते है उनकी वास्तविक परिक्रमा आध्यात्मिक-आधिदैविक वस्तु तत्व प्राप्त कर लेने से सर्वोत्तम प्रदक्षिणा मानी जाती है।

आचार्य श्री शंकर-भगवत्पाद तथा उनके गुरु-परमगुरु भी नर्मदा तट पर विचरते हुए निवास किये। भले ही उन्होने परिक्रमा नहीं की किन्तु नर्मदाजी की स्तुति 'त्वदीय पादपंकजं नमामि देवि नर्मदे' के स्वरों मे जो व्यक्तकर गये वह आज भी परिक्रमा वासियों द्वारा मुखरित होती हुई परमानन्द दे रही है। परिक्रमा जहाँ से उठायी जाय वहीं पूर्ण करना पड़ता है। पश्चात् ओङ्कारेश्वर जाकर भगवान् का अभिषेक आदि करके इससे निवृत होते हैं। साधकों को इसलिए ओङ्कारेश्वर क्षेत्र में स्थित चौवीस अवतार जो उत्तर तट पर है वहाँ से परिक्रमा उठाने में अधिक सुविधा है। प्रथम अमरकण्टक की ओर आते हैं। क्रमशः जो भी स्थान मार्ग में मिलते हैं उनका वर्णन यहाँ विस्तार से किया जा रहा है। या जो दक्षिण तट-गोमुख से अमरेश्वर के समीप से प्रदक्षिणा उठाते हैं वे दक्षिण तट से प्रथम रेवासागर संगम की ओर जाकर फिर वहीं आकर पूर्ण करलेते हैं तब ओङ्कारेश्वर में पूर्ति हेतु पुनः नही आना पड़ता उसी समय वहीं पूरी विधि कर लेते हैं यह भी क्रम समुचित है।

इस पुस्तक में प्रदक्षिणा का आरम्भ प्रथम उत्तर तट से पूर्वाभिमुख हुए अमरकण्टक को ओर जिसमें आना सुतरां सिद्ध है यही क्रम अपनाकर यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

परिक्रमा सम्बन्धी अन्य बातें परिशिष्ट में वर्णन की जाँयगी तथा यथा संभव होने वाली दिव्य अनुभूतियों का भी ग्रन्थ विस्तार के भय से दिग्दर्शन मात्र कराना संभव होगा।

नर्मदे हर! नर्मदे हर! नर्मदे हर! पाहि माम्।
नर्मदे हर! नर्मदे हर! नर्मदे हर! रक्ष माम्॥
नर्मदायै नमः प्रातः, नर्मदायै नमो निशि।
नमस्ते नर्मदे देवि त्राहि मां भव सागरात्॥

नर्मदा का पवित्रतम सर्वोत्तम क्षेत्र

ओंकारेश्वर तीर्थ

जिस ओङ्कार का उच्चारण सर्वप्रथम सृष्टिकर्ता विधाता के मुख से हुआ। वेद का पाठ इसके उच्चारण किये बिना नहीं होता। श्रुतियों में इसका उल्लेख बहुत प्रकार से हुआ—ॐ कारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणःपुरः। कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ॥ उस ओङ्कार के प्राकट्य की अद्भुत कथा ओङ्कारेश्वर से सम्बन्धित है। पुराणों में विशेषतया रेवाखण्ड के अनेक अध्याय इसमें गतार्थ हैं। विद्वानों ने भी अनेक प्रकार इसका विवेचन किया है।

ॐकार से गायत्री तथा वेद, शास्त्र, पुराण इत्यादि सभी शब्दमय-अर्थमय अर्थात् नाम रूपादि समस्त भूत भौतिक प्रपञ्च का प्रादुर्भाव हुआ। ओङ्कार तीन गुणों का भी रूप है, ओङ्कार स्वयं ब्रह्म का गुप्त रूप है। 'तस्य वाचकः प्रणवः' इस योगसूत्र से भी परमात्मा का वाचक ओङ्कार ही है। विष्णु सहस्र नाम आदि में 'ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कार' आदि प्रथम नाम ईश्वर का ॐ है।

इस ओङ्कार का भौतिक विग्रह ओङ्कारक्षेत्र है। इसमें ६८ तीर्थ हैं। यहाँ तेतीस कोटि देवता परिवार सहित निवास करते हैं। १०८ प्रभावशाली शिवलिंग हैं।

ओंकारेश्वर में द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से यहाँ दो ज्योतिर्लिङ्ग हैं। एक ओंकारेश्वर तो बीच नर्मदा में हैं और अमलेश्वर दक्षिण तट पार हैं। ओंकारेश्वर के दो भाग हैं। एक तो विष्णुपुरी ओंकारेश्वर दूसरे शिवपुरी ओंकारेश्वर। विष्णुपुरी में अमलेश्वर हैं और शिवपुरी में ओंकारेश्वर हैं पहिले विष्णुपुरी का वृत्तान्त सुनिये।

ओंकारेश्वर रोड से ओंकारेश्वर मान्धाता ७ मील है, ओंकारेश्वर में जहाँ आप वाहन से उतरेंगे घाट तक भी पक्की सड़क है। बड़े सुन्दर पक्के घाट बने हैं। मार्ग में ही अमलेश्वर शिवका मन्दिर है। अहल्यावाई होलकर की ओर से यहाँ नित्य, मृत्तिका के अठारह सहस्र शिवलिंग बनाकर उनका पूजन करके विर्सजित किये जाते हैं। सात पंडित इस कार्य के निमित्त नियुक्त हैं। अहल्या-

वाई इतनी धर्मात्मा थीं कि भारतवर्ष के प्रायः समस्त तीर्थों में उन्होंने कुछ-न-कुछ धर्म का कार्य किया है। काशी में अहल्याघाट प्रसिद्ध है, वहाँ और भी मन्दिर आदि धार्मिक कार्य हैं। प्रयाग के दारागंज में अहल्यावाई धार्मिक ट्रस्ट है जिसमें अभी तक धार्मिक अनेक कार्य होते रहते हैं।

इस देश में न जाने कितने राजे-महराजे हुए वे जग के भोग-भोगकर परलोकवासी बन गये। उनका कोई नाम तक नहीं जानता। किन्तु इन्दौर की अहल्यावाई का नाम जन-जन के जिह्वाओं पर नाच रहा है।

विष्णुपुरी में धर्मशालायें हैं, अहल्यावाई का अन्नक्षेत्र है। अमलेश्वर शिवजी का पत्थर के खंभों का बना सुन्दर मंडप है। यात्री गण अमलेश्वर शिवजी के दर्शन करते हैं। बड़ा भव्य शिवलिङ्ग है। विधिवत् पूजा होती है। ओंकारेश्वर का जो मान्धाता पर्वत है वह पर्वत स्वयं ओंकार का ही स्वरूप है। ऐसी कथा है कि पहिले पर्वतराज विन्ध्याचल ओंकार चक्र में शिवजी का लिङ्ग बनाकर पार्थिव पूजन किया करते थे। शंकरजी उनकी पूजा से प्रसन्न हुए और साक्षात् प्रकट होकर वर माँगने को कहा। विन्ध्य पर्वत ने कहा—"भगवन्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं यही चाहता हूँ कि आप इसी स्थान पर सदा सर्वदा निवास करें।"

शिवजी ने तथास्तु कहा। उसी समय वहाँ दो शिवलिङ्ग प्रकट हो गये। ओंकार मन्त्र से जो विन्ध्य पूजा करते थे उनसे तो ओंकारेश्वर शिवलिङ्ग हुए और पार्थिव से अमलेश्वर प्रकट हुए। यहाँ समीप में ही कपिलधारा है, उसका जल गोमुख द्वारा नर्मदा जी में गिरता है उसे कपिलधारा संगम कहते हैं कपिलधारा के दूसरी ओर ब्रह्मपुरी है। शिवपुरी विष्णुपुरी और ब्रह्मपुरी तीनों ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश देवों की पुरी है। पुराणों में इस सम्बन्ध की कथा है—

सृष्टि के आदि कल्प के सतयुग में स्वायंभुव मनु के काल में असुरों ने देवताओं को पराजित किया। दैत्य दानवों के भय से समस्त देवता इस ओंकारेश्वर क्षेत्र में आकर तपस्या करने लगे। इससे शिवजी प्रसन्न हो गये। उन्होंने ब्रह्माजी को आज्ञा दी कि तुम दैत्य दानवों का संहार करो।

ब्रह्माजी ने कहा—"भगवन्! इन्हें मारने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है। इनके भय से मुझे वेदों का विस्मरण हो गया है।"

ब्रह्माजी की यह बात सुनकर उन्होंने एक हुँकार की। उस हुँकार से अतल, वितलादि सातों पातालों का भेद हुआ। उसी समय एक परम दिव्य तेजस्वी शिवलिङ्ग उस पर्वत में प्रकट हो गया। उसके आदि अन्त का कुछ भी

पता नहीं था उस अनादि अनन्त शिवलिङ्ग में से एक वाणी प्रगट हुई। वह वाणी कह रही थी—"हे ब्रह्मदेव ! अब आप निर्भय हो जाओ और अपनी विस्मृत हुई वेद विद्या को पुनः ग्रहण करो तथा इन समस्त दानवों का संहार करो।"

इस अद्भुत व्यक्त वाणी को सुनकर ब्रह्माजी निर्भय हो गये, उन्होंने पुनः वेद-विद्या को ग्रहण किया और उन्हीं वेद मन्त्रों द्वारा दानवों का संहार किया। फिर ब्रह्माजी ने भगवान् रुद्र के निमित्त रौद्री इष्टि की। इससे समस्त देवगण परम प्रमुदित हुए। उन्होंने उस ओंकारेश्वर शिवलिङ्ग का पूजन किया, स्तुति की। इस लिङ्ग के दर्शन करने से समस्त पाप भस्म हो जाते हैं। कल्प के अन्त में समस्त देवगण इसी ओंकारमय शिवलिङ्ग में विलीन हो जाते हैं। क्योंकि ओंकार ही गायत्री का तथा समस्त वेदों का जनक है। ओंकार, त्रिगुण, त्रिदेव, त्रिलोक तथा त्रिभुवन का स्वरूप है यहाँ करोड़ों तीर्थ हैं १—ओंकारेश्वर, २—अमलेश्वर, ३—केदारनाथ, ४—महाकालेश्वर तथा ५—सिद्धेश्वर ये पाँचों एक ही हैं। जैसे महाकालेश्वर में क्षिप्रा गंगा है वैसे ही यहाँ कावेरी गंगा है। वैसे कावेरी गंगा का संगम तो ओंकारेश्वर से एक मील पहिले हुआ। फिर भी कावेरी का जल नर्मदा में मिलने पर भी अपना अस्तित्व पृथक ही रखता है। वह जल एक मील तक नर्मदा जी में साथ आता है। मान्धाता पर्वत के निकट उत्तर की ओर कावेरी पृथक् हो जाती है। मान्धाता की परिक्रमा करके आगे पुनः नर्मदा जी में मिल जाती हैं। इन्हीं कावेरी के कारण ओंकारेश्वर द्वीप, टापू अथवा बेट बन गया है और पूरा पर्वत ओंकार का स्वरूप बन गया है। लोगों का कहना है—सातमात्रा के निम्न भाग में जहाँ कावेरी प्रथम नर्मदा जी में मिलती हैं, वहाँ कोई कावेरी जी के नाम से नारियल चढ़ाता है तो वह नारियल नर्मदा में बहता-बहता दक्षिण की धारा में न जाकर उत्तर की ओर जो मान्धाता की परिक्रमा को कावेरी की धारा कही जाती है, उसी में बह कर जायगा। जहाँ काबेरी का दुबारा नर्मदा में संगम हुआ है वहाँ से पूरे ओंकार मान्धाता पर्वत की तीन मील की नौका द्वारा भी परिक्रमा होती है, बड़ा ही मनमोहक दृश्य है। कैसी अद्भुत छटा है, वह तो अवर्णनीय है, लेखनी द्वारा इसका वर्णन किया ही नहीं जा सकता। नर्मदा जी के इस पार अमलेश्वर घाट से चाहें विष्णुपुरी घाट से नौका में बैठिये अथवा उस पार शिवपुरी घाट से बैठिये। नौका पहिले प्रवाह के साथ चलेगी। दोनों ओर महात्माओं के आश्रम हैं। दक्षिण तट पर संन्यासियों के आश्रम हैं। आगे खेड़ापति हनुमान् जी तथा केदारेश्वर महादेव हैं। आगे कावेरी का दूसरा

संगम मिलता है। वहाँ से नौका कावेरी में फिर उलटी चलती है। दोनों ओर के अरण्य की छटा चित्त को बलात् हरण करने वाली है। समीप ही रण-मुक्तेश्वर शिव का मन्दिर है। उलटे प्रभाव में पूर्व की ओर लौटने में नौका को अत्यन्त कठिनाई का सामना करना होता है। नीचे बड़े-बड़े पहाड़ों के खण्ड, जल थोड़ा कठिनता से नौका बढ़ती है। आगे गौरी सोमनाथजी का मन्दिर है कावेरी के दक्षिण तट पर। मन्दिर को जाना हो तो नौका से उतर कर २५० सीढ़ी चढ़कर दर्शन करके पुनः नौका में लौट आइये। मन्दिर में सोमनाथजी का बड़ा लिङ्ग है। आगे सिद्धेश्वर महादेव जी का प्राचीन मन्दिर है। सिद्धेश्वर से उस पार कावेरी के दूसरे तट पर जैनियों का मन्दिर सिद्धेश्बर कूट है। कावेरी से जल ले जाने को सीढ़ियाँ बनी हैं, पानी कल के द्वारा ले जाया जाता है आगे चलकर कावेरी की वह धारा है, जो नर्मदा जी से पृथक् होकर मान्धाता पर्वत को द्वीप बनाती है। फिर नौका नर्मदा जी के प्रवाह में आती है, अव शिवपुरी पहुँचने में विलम्ब न होगा, क्योंकि धारा का प्रवाह सीधा बहाव की ओर है। आगे पश्चिम की ओर जब घूमेंगे तो भृगुपतन पहाड़ी पड़ती है। पहिले ऐसा नियम था कि जब क्रिया-कर्म करने में सन्यासी असमर्थ हो जाय तो वह पहाड़ से कूद कर अपने शरीर का अन्त कर दे। इसी का नाम भृगुपात है। पहिले यहाँ से मुक्ति की इच्छा से बहुत से लोग कूदकर अपने प्राण विसर्जन करते थे। अब यह प्रथा समाप्त हो गयी है। अब फिर लौटकर ओंकारेश्वर मन्दिर के नीचे पक्के घाट पर आते हैं वहाँ से सीढ़ियाँ चढ़कर श्री ओंकारेश्वर के मन्दिर को जाते हैं। सीढ़ियों के आस-पास फूल, प्रसाद, नारियल तथा कंठी, माला वस्त्रों आदि की दुकानें हैं छोटा-मोटा बाजार ही है। मन्दिर का द्वार उत्तर की ओर है। आस-पास कई मन्दिर हैं। भगवान् शंकर का मन्दिर गुंबज से हटकर है, मूर्ति बनायी हुई नहीं है स्वाभाविक है। शिवलिङ्ग के चारों ओर जल भरा रहता है। यहाँ मन्दिर में श्री पार्वती जी की, पंचमुखी गणेशजी की, श्री शुकदेव जी की तथा मान्धा-तेश्वर की लिङ्ग रूप में मूर्तियाँ हैं। दूसरी मंजिल पर महाकालेश्वर शिवजी हैं। आस-पास में श्री अविमुक्तेश्वर, ज्वालेश्वर, केदारनाथ, गणेशजी तथा देवी आदि के छोटे-बड़े मन्दिर हैं।

मन्दिर के समीप ही मान्धाता पर्वत पर राजा का महल है। पहिले यहाँ का राजा नाथू भील था। लगभग ८०० वर्ष पहिले श्री भरतसिंह चौहान ने इस टापू को भील से छीन लिया। ये राजा भिलाला जाति के हैं। भीलों में आला अर्थात् उत्तम भिलाला कहे जाते हैं। अब तक

इनकी ३०-३२ पीढ़ी बीत चुकीं। ये राजा ही मन्दिरों का सम्पूर्ण प्रबन्ध करते थे और इसकी समस्त आय के अधिकारी थे। अब तो राजा रहे ही नहीं। समस्त राज्य नष्ट हो गये। राजा का महल तो खड़ा है राजवंश के लोग इधर-उधर नौकरी चाकरी करते हैं।

इस पर्वत का नाम मान्धाता क्यों पड़ा। इसकी भी कथा हैं मान्धाता चक्रवर्ती राजा थे इनका एक नाम त्रसद्दस्यु है। ये इक्ष्वाकु वंशीय राजा थे। श्री मद्‌भागवत के नवम स्कन्ध के छटे अध्याय में इनकी कथा है। इनके पिता का नाम युवनाश्व था। उनके कोई सन्तान नहीं थी। अतः वे अपनी सौ रानियों के सहित वन में चले गये। वहाँ ऋषियों ने पुत्र कामना के हेतु इन्द्र जिसके प्रधान देवता हैं ऐसा यज्ञ कराया। उन्होंने कलश के जल को पुत्र की कामना से अभिमन्त्रित करके यज्ञशाला में रख दिया और सोचा था—कल इसे राजा की बड़ी रानी को पिलायेंगे।

दैवयोग से राजा को रात्रि में बड़ी प्यास लगी। ऋषिगण तो सबके सब सो रहे थे, राजा इधर-उधर जल खोजने लगे। यज्ञशाला में जल से भरा अभि-मन्त्रित कलश रखा था। राजा ने देखा जल बड़ा ठंडा है, वे उसे पी गये। प्रातःकाल जब जल की ऋषिगण खोज करने लगे तब पता चला उसे तो राजा पी गये। तब ऋषियों ने कहा—'अहो दैवबलं बलम्' भगवान् का बल ही वास्तविक बल है। अब तो राजा के ही उदर से बच्चा होगा। ऐसा ही हुआ। राजा की दाहिनी कोख को फाड़कर पुत्र उत्पन्न हुआ वह पुत्र दूध के लिए रोने लगा। तब ऋषियों ने कहा—' यह बालक किसका दूध पियेगा ?" तब यज्ञ के अधिष्ठातृ देव इन्द्र ने कहा—"मान्धाता—यह मेरा पियेगा।" यह कहकर इन्द्र ने अपनी अमृतमयी तर्जनी उँगली उसके मुख में डाल दी। बालक प्रसन्न हो गया। इनके पिता युवनाश्व की भी मृत्यु नहीं हुई। इन्हीं महाराजा मान्धाता की ५० कन्याओं का पाणिग्रहण वृन्दावन के समीप सुनरख के रहने वाले महर्षि सौभरि मुनि ने किया।

महाराज मान्धाता ने यहीं नर्मदा किनारे इस पर्वत पर घोर तपस्या करके शिवजी को प्रसन्न किया और यही वरदान माँगा कि आप सदा सर्वदा यहीं निवास करें। तभी से यह पर्वत उन्हीं के नाम से मान्धाता पर्वत विख्यात हो गया।

नर्मदा क्षेत्र में ओंकारेश्वर सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है। जैसे हमारे यहाँ भागीरथी गंगा के तीर स्थान सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं—

सर्वत्र सुलभा गंगा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा।
हरिद्वारे प्रयागे च गंगासागरसंगमे ॥

गंगाजी तो सभी स्थानों में जहाँ-जहाँ से प्रवाहित हुई सुलभ हैं, किन्तु हरिद्वार में, तीर्थराज प्रयाग में और गंगासागर संगम में अत्यन्त दुर्लभ हैं। इन तीन स्थानों का विशेष माहात्म्य है। इसी प्रकार नर्मदा जी के भी तीन स्थानों का विशेष माहात्म्य है।

सर्वत्र सुलभ रेवा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा।
ओङ्कारेऽथ भृगुक्षेत्रे तथा रेवोरि-संगमे ॥

नर्मदाजी वैसे तो सभी स्थानों में सुलभ हैं किन्तु तीन स्थानों में दुर्लभ हैं। एक तो ओङ्कारेश्वर में जहाँ नर्मदाजी कावेरी संगम है, दूसरे जहाँ नर्मदा का समुद्र से संगम है भृगुक्षेत्र (भड़ौच) में और तीसरा कर्नालि रेवोरि नदी जहाँ नर्मदा में मिली है चान्दौद में। इसका विस्तार से वर्णन तो कोई कर ही नहीं सकता क्योंकि यहाँ करोड़ों तीर्थों का निवास बताया है।

❀

प्रदक्षिणा प्रारम्भ

उत्तरतट

१—**चौबीस अवतार**—यह स्थान ओंकारनाथ के ईशान कौंण में जहाँ कावेरी का नर्मदाजी में पुनः दूसरा संगम हुआ है उसके समीप ही है, श्री नर्मदाजी की सर्वप्रथम जमात स्थापित करके परिक्रमा आरम्भ करने वाले श्रीस्वामी कमल भारतीजी महाराज का यहाँ आश्रम हैं। श्री भारतीय स्वामी जी ने जमात स्थापित करके जमात के साथ श्रीनर्मदाजी की तीन परिक्रमायें कीं। आपकी जमात में हाथी, घोड़े, बैलगाड़ियाँ झंडा निशान सभी रहते थे। श्री गौरीशङ्कर ब्रह्मचारी महाराज आपके साधक शिष्य थे। तीन परिक्रमाओं के पश्चात् इन्होंने अपना झंडा निशान देकर श्री गौरीशंकर ब्रह्मचारीजी महाराज को जमात का महन्त बनाया। उनके काल में जमात की अत्यधिक वृद्धि हुई। सम्वत् १९४४ में श्री गौरीशंकर महाराज ने समाधि ली तदनन्तर श्री नर्मदानन्दजी महाराज जमात के महान्त हुए। श्रीनर्मदानन्दजी के पश्चात् श्री काशीनन्दजी जमात के महान्त हुए। सं० १९९० में उन्होंने अपने शिष्य श्रीरतिनन्दजीको जमात का महान्त बनाया। पुनः धीरे-धीरे जमात समाप्त ही हो गयी। श्रीस्वामी कमल भारतीजी महाराज जमात का भार छोड़कर

मण्डलेश्वर के समीप मर्कटी संगम पर आश्रम बनाकर रहने लगे। कुछ वर्ष के पश्चात् मर्कटी संगम के आश्रम को छोड़कर यहाँ चौबीस अवतार में अपना नवीन आश्रम बनवाकर रहने लगे। सन् १९१२ के लगभग आपने इस पाञ्च-भौतिक शरीर का परित्याग इसी स्थान पर किया। चौबीस अवतार में आपका स्थान विद्यमान है।

२—चौबीस अवतार से ९ मील आगे। कठिन झाड़ियों के मार्ग से **सेलानी घाट** आता है। इस घाट से कुछ ही दूर पर बखतगढ़ का पुराना छोटा-सा जीर्ण-शीर्ण दशा में पड़ा किला है।

३—सेलानी घाट के समीप ही रामपुरा ग्राम में **कुनाड़संगम** है। घने जंगलों में होकर मार्ग है। घोर जंगल में यह स्थान रमणीक है।

४ कुनाड़ संगम से ६ मील आगे **सीताबाटिकातीर्थ है**। इसे सीता माता भी कहते हैं। कहते हैं यहाँ महर्षि वाल्मीक जी ने तपस्या की थी। जब लव-कुश के सहित श्री सीता माता यहाँ आकर रहीं तो उन्हें देखने अरुन्धती सहित महर्षि वशिष्ठ यहाँ आँये थे। सीता माता की रक्षा हेतु यहाँ पर ६४ योगिनी ५२ भैरव भी समुपस्थित हुए थे। उन सबकी विशाल मूर्तियाँ अद्यावधि यहाँ विद्यमान हैं। सीता माता से मिलने के निमित्त भगवती नर्मदा स्वयं पधारी थी। वह धारा पर्वत को फोड़कर उस पर्वत कन्दरा द्वारा अब तक बहती रहती है। इस धारा में श्रीसीता कुण्ड, श्रीलक्ष्मण कुण्ड और श्रीराम कुण्ड विद्यमान हैं। स्थान अत्यन्त सुन्दर है। यहाँ तपस्या करने से महारोग-कुष्ट-रोग अच्छा होता है।

५. सीता बाटिका से ६ मील आगे धावड़ी ग्राम में **धावड़ी कुण्ड तीर्थ** है। धारा तीर्थ भी कहाजाता है यहाँ विशालकाय धूँआँधार है। २५ फुट ऊपर से धारा गिरती है, यहाँ छोटे-बड़े अनेक स्रोत हैं। परम दर्शनीय स्थान हैं। कहते हैं माता नर्मदाजी ने विन्ध्याचल के गर्व को खर्व करने के निमित्त ऐसा अद्भुत दृश्य दिखाया था। इसके सामने ही दक्षिण तट पर धारेश्वर शिवजी का मन्दिर है। नर्मदा जी के जगत् प्रसिद्ध वाणलिंग इसी धावड़ी कुण्ड में से निकलते हैं। इस सम्बन्ध की एक कथा है—

प्राचीन काल में वाणासुर एक कोटि शिवलिंग बनाकर इस स्थान में पूजन करने के निमित्त बैठा था। उसी समय शिवजी ने उसका स्मरण किया। वे सब बने बनाये शिवलिंग उसने नर्मदाजी के इस धावड़ी कुण्ड में डाल दिये और स्वयं शिवजी के समीप जाकर समुपस्थित हुआ। भारतवर्ष में जहाँ भी जिस

मन्दिर में नर्मदाजी के बाणलिंग स्थापित हैं, वे इसी धावड़ी कुण्ड से जाते हैं। यहाँ पनडुब्बे लोग रहते हैं। उन्हें कुछ द्रव्य दीजिये वे तुरन्त डूबकर कुण्ड में से वाणलिंग निकालकर आपको दे देंगे। यहाँ किये हुए शुभ कर्म अक्षय होते हैं।

यहीं अब पुनासा बांधकी बहुत बड़ी योजना है जिससे नर्मदा तट के अनेकों तीर्थ स्थान जलमग्न हो जायेंगे। नर्मदेश्वर का मिलना असम्भव हो जायगा। नर्मदा भक्तों का विश्वास है यह कुयोजना सफल नही होगी।

६. धावड़ी कुण्ड से ५ मील आगे झाड़ी मार्ग से चलकर प्रेमगढ़ नाम का ग्राम आता है, उसके समीप ही **खांडा संगम** है। यहाँ खांड़ा नदी आकर श्रीनर्मदाजी में मिली है खांडा संगम पर **सङ्गमेश्वर** शिवजी का मन्दिर है।

७. खांडा संगम से १ मील आगे भेटखेड़ा नामक ग्राम है। ग्राम से कुछ ही दूर पर **लक्कड़कोट** नाम का स्थान है। यहाँ नर्मदाजी में चक्रकुण्ड है! **धावड़ी कुण्ड** में वाणलिंग शिवजी का निवास है। वहाँ चतुर्मास में बहकर जो लकड़ियाँ कूड़ा कर्कट आता है। वह धावड़ी कुण्ड में न रहकर यहाँ चक्रकुण्ड में आकर एकत्रित हो जाता है। माता ने इसी के निमित्त स्वयं इस कुण्ड का निर्माण किया है।

८. लक्कड़कोट से ६ मील आगे **कालादेव** नामक स्थान है। परिक्रमा का मार्ग यहाँ वामांग पर्वत श्रेणी पर से गया है। मार्ग झाड़ियों का है। आगे चलने पर बारङ्गा नाला पड़ता है। यह नाला दो पर्वतों के बीच से टेढ़ा-मेढ़ा सर्पाकार बहा है। इसलिए इसे २४ बार पार करना पड़ता है। १६ बार पार करने के पश्चात् झाड़ी में काल भैरव का स्थान है। इन्हीं काल भैरव को ग्वाला लोग कालादेव कहते हैं। ये कालादेव इसी सर्पाकार बारंगा नाला के तीर पर विशाल पर्वत की गुफा में स्थित है। यह गुफा किसी ने बनायी नहीं है। प्राकृत-स्वयंभू है। यह विशेषकर ग्वाला भाइयों का तीर्थ स्थान है।

९. कालादेव से ६ मील आगे झाड़ी मार्ग से चलिये। ८ बार पुनः बारंगा नाले को पार कीजिये, तब आपको **पामाखेड़ी** ग्राम मिलेगा।

१०. पामाखेड़ी ग्राम से ४ मील जंगल के मार्ग से चलकर **धर्मपुरी तीर्थ** में पहुँचेंगे। यहाँ पर धर्मेश्वर शिवजी का मन्दिर है। कहते हैं बनवास के काल में धर्मराज युधिष्ठिर ने यहाँ कुछ काल रहकर यज्ञ, दान, तपादि धर्म के कार्य किए थे। तभी से इसका नाम धर्मपुरी प्रसिद्ध हो गया। सामने ही उस पार दक्षिण तट पर पुण्यघाट है। धर्मपुरी रमणीय स्थान है।

११. धर्मपुरी से ६ मील आगे **कीटी घाट** है। जब पांडव लोग धर्मपुरी में निवास कर रहे थे तब भीमसेन ने किसी राक्षस का यहाँ वध किया था। यहाँ नर्मदाजी के बीच में भीमसेन का कांबड़ है।

१२. कीटीघाट से ६ मील आगे चलकर हरण्याखेड़ा नामक ग्राम है, उसके सन्निकट ही **दाँतोनी संगम** है। यहाँ दाँतोनी नदी आकर नर्मदाजी में मिली है इस स्थान को फतेगढ़ भी कहते हैं। इसके सामने ही नर्मदा के दक्षिण तट पर जोगा किला है। दाँतोनी नदी के संगम के समीप हरणेश्वर शिवजी का एवं काल भैरव का स्थान है। नर्मदा की धारा यहाँ समिट कर छोटी हो गयी हैं।

१३. दँतोनी संगम से १० मील आगे **बागदी संगम** है यहाँ बागदी नदी आकर नर्मदाजी में मिली है यहाँ कालभैरव ने तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की।

१४. बागदी संगम से ६ मील आगे **नेमावर स्थान** है। यह नर्मदाजी का नाभि मंडल माना जाता है यहाँ सिद्धनाथ भगवान का ऐतिहासिक मन्दिर है। कहते हैं इसका निर्माण पांडवों ने कराया था। इस प्रकार का अद्भुत कला-युक्त मन्दिर सम्पूर्ण भारत में स्यात् ही कहीं हो। यात्री इस मन्दिर की कारीगरी को देखकर मन्त्र मुग्ध हो जाते हैं और इसकी धर्मान्ध दस्युधर्मी यवनों द्वारा ऐसी दुर्दशा की हुई देखकर तथा इसकी जीर्ण-शीर्ण दशा देखकर दुःख भी अत्यधिक होता है।

वशिष्ठ संहिता में इस तीर्थ की कथा इस प्रकार है। श्रीरामचन्द्रजी के पूछने पर वसिष्ठजी ने कहा—श्रीराम ! ब्रह्माजी के सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार ये चार मानसिक पुत्र थे। उनकी अवस्था सदा ५-६ वर्ष की सी ही रहती है। वैसे वे प्रजापतियों के भी पूर्वज हैं। एक बार भ्रमण करते हुए वे नर्मदाजी के इस नाभि मण्डल तीर्थ पर आये। इनका आगमन सुनकर चारों ओर से ऋषि महर्षि आ-आकर यहाँ एकत्रित हो गये। तब सबने सनकादि महर्षियों की विधिवत् पूजा की। उनको उच्चासन पर बैठाकर उनसे चारों आश्रमों का धर्म पूछा।

इस पर सबसे पहिले महर्षि सनक ने ब्रह्मचर्याश्रम वाले ब्रह्मचारियों के धर्म बताने आरम्भ किये, उन्होंने कहा—

१–द्विज बालकों को अधिक-से अधिक ८ वर्ष की अवस्था में उपनयन संस्कार कराके गायत्री मन्त्र की दीक्षा लेकर गुरुकुल में वास करना चाहिये।

२–प्रतिदिन नियमित रूप से भिक्षा माँगकर गुरु को अर्पण कर दे। गुरु जो दे दें उसी से निर्वाह करें।

३-नित्य नियम से अंगों के सहित वेदों का अध्ययन करे।

४-सदा पृथ्वी पर ही शयन करे शैया पर नहीं।

५-कभी भी असत्य भाषण न करे। सदा सत्य बोले।

६-अग्नि की आहुति से, सूर्य की अर्घ्य द्वारा, गौ की घास आदि से ब्राह्मण की आतिथ्य द्वारा तथा गुरु की सेवा सुश्रूषा द्वारा पूजा करे।

७-दिन में शयन न करे।

८-केशों का छेदन न करे। पञ्चशिखी बना रहे।

९-सन्ध्यावन्दनादि करता हुआ सदा सर्वदा पवित्रता से रहे।

इस प्रकार कम-से-कम २५ वर्ष तक गुरुकुल में निवास करके ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे। तत्पश्चात् गुरु को दक्षिणा देकर समावर्तन संस्कार कराकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।

इस प्रकार सनक महर्षि ब्रह्मचर्याश्रम के संक्षिप्त धर्म बताकर जब चुप हो गये। तब उनके दूसरे भाई सनन्दनजी गृहस्थाश्रम के धर्मों को बताते हुए कहने लगे।

१-समावर्तन संस्कार कराकर घर में आकर माता-पिता की अनुमति से सत् कुलोत्पन्न अपने ही वर्ण की सुन्दरी कन्या के साथ शास्त्रीय विधि से विवाह करे।

२-ऋतुकाल में ही धर्म समझकर सन्तान की इच्छा से गमन करे। भोग बुद्धि से नहीं।

३-गुरुकुल में जो वेदाध्ययन किया है, उसका समय-समय पर अवलोकन करता रहे। स्वाध्याय नियमित करे।

४-द्रव्योपार्जन धर्मपूर्वक सात्त्विकी वृत्ति से करे। अधर्मपूर्वक धनोपार्जन कभी न करे।

५-समय-समय पर पितरों का शास्त्रीय विधि से श्राद्ध करे। जहाँ तक हो श्राद्ध में विद्वान् कर्मनिष्ठ वेदज्ञ ब्राह्मणों को ही बुलावे। सदाचार से हीनों को नहीं।

६-सदा सर्वदा सत्य का ही भाषण करे। असत्य न बोले।

७-सत्य भी यदि अप्रिय हो तो उसे भी न बोले।

८-नित्य नियम से अग्निहोत्र आदि पञ्चयज्ञ करे।

९-माता, पिता, भाई तथा जो अपने परिजन हैं, इनका कभी अपमान न करे।

१०–धर्मपत्नी का अपमान न करे, क्योंकि जिस घर में स्त्री अपमानित होकर कुपित होती है उस गृह की लक्ष्मी नष्ट हो जाती है।

११–इस प्रकार धर्मपूर्वक गृहस्थाश्रम में रहकर पुत्र पुत्रियों को उत्पन्न करे। तदनन्तर पुत्रों को पढ़ाकर उनकी योग्य वृत्ति लगाकर उन्हें शुभ कार्यों में नियुक्त करे। कन्याओं का योग्य वरों के साथ विवाह कर दे। फिर चाहें विरक्त भाव से घर में ही रहे या वन में जाकर वानप्रस्थ धर्म का पालन करे। गृहस्थाश्रम धर्म का मुख्य कर्तव्य अतिथि सेवा ही है।

इस प्रकार महर्षि सनन्दन जब गृहस्थाश्रम धर्म का वर्णन करके चुप हो गये, तब वानप्रस्थ धर्मों का वर्णन करते हुए महर्षि सनातन कहने लगे।

सनातन महर्षि ने कहा—"इस प्रकार आधी आयु समाप्त करके अपनी धर्मपत्नी को पुत्रों को सौंप कर वानप्रस्थ होकर वन में वास करे। चाहे तो पत्नी को भी साथ रख सकता हैं।

१–वानप्रस्थी वन में निवास करके जटाजूट को धारण करें।

२-वन के कन्द, मूल फलादि जो भी प्राप्त हो जायँ अथवा नीवार सवाँ मुनियों के जो अन्न मिलें उसी में सन्तोष रखे।

३–तपस्या के लिए शीत ऋतु में शीत में निवास करे, उष्ण ऋतु में धूप में रहकर पंचाग्नि सेवन करे। वर्षा के चार महीनों को खुले आकाश में बैठकर बितावे। पूरी वर्षा को शिर पर लें। भगवान् का ध्यान करता रहे।

४–शम, दम, तप, तितिक्षा आदि के द्वारा वैदिक कर्मों का सदा सर्वदा पालन करता रहे।

५–जब तक शरीर में बल रहे। तितिक्षा सहन करने की शक्ति रहे, तब तक अग्निहोत्र आदि कर्मों को करते हुए वानप्रस्थ धर्मों का प्रेम पूर्वक पालन करता रहे। जब पूर्ण वैराग्य हो जाय तब संन्यास ग्रहण कर ले।

इस प्रकार जब सनातन मुनि वानप्रस्थ धर्मों का वर्णन करके चुप हो गये। तब संन्यास धर्मों को बताते हुए सनत्कुमार महामुनि कहने लगे।

महर्षि सनत्कुमार ने कहा—

१–संन्यासी यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन अष्टाङ्गयोग को धारण करके समाधि द्वारा ब्रह्म में लीन हो जाय।

२–चारों वर्णों के यहाँ से भिक्षा मांग लावे।

३—कौपीन तथा दण्ड कमण्डलु धारण किये रहे।

४—सदा वेदान्त शास्त्र में ही अपनी वृत्ति को लगाये रहे।

इस प्रकार जो विधिवत् शास्त्रानुकूल वर्ण और आश्रम धर्मों का पालन करता है वह संन्यासी अन्त में ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेता है।

वसिष्ठजी श्रीरामचन्द्रजी से कह रहे हैं—"राघव! इस प्रकार चारों महर्षियों के मुख से चारों आश्रमों के धर्म श्रवण करके यहाँ एकत्रित हुए मुनिगण परम प्रमुदित हुए। फिर सनकादि महर्षियों ने भगवान् सिद्धेश्वर की स्थापना की। तभी से यह सिद्धनाथ तीर्थ विख्यात हुआ।

यहाँ जमदग्नि ऋषि ने अपनी धर्मपत्नी रेणुका के सहित तप किया था। यहाँ किए हुए शुभ कर्मों का अनन्त फल है।

सिद्धनाथ नेमावर

सुप्रसिद्ध तीर्थ है, नर्मदाजी की नाभि ही ठहरी। यह सिद्ध भूमि कहलाती है। किसी का मत है, पहिले जमदग्नि मुनि का निवास स्थान यहीं था। श्री परशुरामजी का जन्म यहीं हुआ था। गाँव के समीप परशुरामजी की माताजी रेणुकाजी का मन्दिर है। यहाँ ऊँचे पर ग्वाल टेकरी है। पहिले इसका नाम मणिगिरि था। ग्वाल टेकरी नाम कैसे पड़ा इस सम्बन्ध की एक कथा है—

प्राचीन काल में इस मणिगिरि की गुफा में एक सिद्ध महात्मा रहते थे। उनकी गुफा में से एक गौ निकलकर एक ग्वाल की गौओं में आकर मिल जाती, दिन भर चरती। सायंकाल के समय ग्वाला की गौओं से पृथक् होकर चली जाती। बहुत दिनों तक जब वह गौ ग्वाला की गौंओं में चरती रही। तब एक दिन ग्वाला ने सोचा—'इतनी सुन्दर गौ किसी बड़े आदमी की है। मैं बहुत दिन से इसे अपने गौओं के साथ चरा रहा हूँ। इसके स्वामी का पता चले तो उससे अधिक चरवाही के रूप में धन प्राप्त हो सकता है।" यह सोचकर एक दिन जब गौ उसकी गौओं से पृथक् होकर जाने लगी, तब वह ग्वाला भी उस गौ के पीछे-पीछे हो लिया। मणिगिरि के मार्ग से गौ गुफा में घुसी। ग्वाला भी उसके साथ घुस गया। वहाँ उसने एक तेजस्वी महात्मा को बैठे देखा।

महात्माजी ने पूछा—"भाई, तुम यहाँ कैसे आ गये?"

ग्वाला ने कहा—"महात्माजी! बहुत दिनों से मैं आपकी गौ को चराता हूँ। आपसे उशकी चरवाही माँगने के लिये आया हूँ।"

महात्माजी उसकी बात सुनकर कुछ रोष के साथ उसे १०-२० कंकड़ उठाकर देते हुये बोले—"ले यह चरवाही है।"

ग्वाल उन कंकड़ों को लेकर गुफा के बाहर निकला। बाहर देखता है वे तो कंकड़ हैं। महात्मा ने क्रोध में भरकर कंकड़ दे दिये हैं। उसने और सब कंकड़

तो फेंक दिये। ३-४ रख लिये। कि गाँव में चलकर सबको दिखाऊँगा। बाबा जी ने चरवाही में ये कंकड़ दिये हैं। उन कंकड़ों को लेकर वह गाँव की ओर चल दिया। गाँव के समीप पहुँचने पर जब उसने उन कंकड़ों को देखा तो वे तो सुवर्ण के थे। अब उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। पश्चाताप करने लगा—हाय मैंने सबको फेंक क्यों दिया? सबको ले आता तो मालामाल हो जाता। वह लौटकर दौड़ा-दौड़ा पुनः गया। किन्तु न वे कंकड़ मिले, न वह गुफा मिली और न वे साधु ही मिले। पहिले पहिल इस टेकरी पर ग्वाले को ही सिद्ध महापुरुष के दर्शन हुए इसीलिए इसका नाम ग्वाल टेकरी सिद्ध हुआ। कुछ दिन से इसपर बेंगलोर के एक महात्मा रहने लगे हैं। उनका नाम 'मूँगफली बाबा' है। स्यात् वे मूँगफली ही खाकर निर्वाह करते हैं। नीचे राधाकृष्णजी का मन्दिर है। एक बड़ा-सा सघन वृक्ष है।

यहाँ सिद्धनाथजी का बहुत ही प्राचीन कलात्मक मन्दिर है। भारतवर्ष में कितनी अद्भुत पाषाण की कारीगरी थी इसें देखकर पता चलता है। तिल-तिल भर स्थान से भव्य कारीगरी है। सुनते हैं इस मन्दिर का निर्माण पांडवों ने किया था आततायी दस्युधर्मी यवनों ने इसे क्षत-विक्षत कर दिया। अब कोई ऐसा माई का लाल नही है जो इस प्राचीन भारत की अभूतपूर्व दर्शनीय आदर्श विश्वविख्यात अन्यत्र असुलभ कारीगरी का जीर्णोद्धार करा सके। शिव-लिंग पर भी आतताइयों ने प्रहार किया था। मन्दिर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। उसके ऊपर एक टेकरी में विश्वनाथ ब्रह्मचारी नाम के एक महात्मा रहते रहे। उसके ऊपर पहाड़ की चोटी पर नयी धर्मशाला बन गयी है। सामने मैदान है। शतायु एक दण्डी स्वामी भी रहे, वहां की दोनों विभूतियाँ अब केवल स्मृति पथ में ही हैं।

नेमावर से बुधनी

१५—नेमावर से १ मील दूरी पर **जामनेर** स्थान है यहाँ जाम्बुवती नदी आकर नर्मदा जी में मिली हैं। जाम्बुवती संगम पर आत्माराम बाबा की समाधि है। ये महात्मा पेशवाओं के काल में हुए थे।

१६—जामनेर से २ मील आगे **गोनी संगम** है। यहाँ गोनी नदी आकर नर्मदा जी में मिली है सुनते हैं, जब परशुराम जी ने सहस्त्रबाहु का वध कर दिया और इक्कीस वार पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित बना दिया, तब जहाँ-जहाँ इनके पिता महर्षि जमदग्नि ने तप किया था, वहाँ-वहाँ उन्होंने अपने पितरों का श्राद्ध तर्पण किया था। यह स्थान भी जमदग्नि जी की तपस्थली मानी [illegible] यहाँ भी पितरों के श्राद्धतर्पण का अनन्त फल बताया है।

१७—गोनी संगम से६ मील आगे खेड़ीग्राम है। वहाँ **खेड़ीघाट** है। उसके नीचे **ककेड़ा संगम** है। यहाँ ककेड़ी नदी आकर नर्मदा जी में मिलती हैं।

१८—ककेड़ी संगम से ४ मील आगे वन पथ से **छीपानेर घाट** है। यहाँ **सीपसंगम** है। सीप नदी आकर नर्मदाजी में मिली है। आगे सात देव-घाट हैं।

१९—छीपानेर से ३ मील आगे **शीलकंठ शिवजी** का स्थान है। स्थान दर्शनीय है। शिवजी का मन्दिर मण्डी ग्राम की सीमा पर है। तट के कटने से धराशायी होने का भय है।

२०—नीलकंठ शिवजी से ३ मील आगे **कोलार** स्थान है यहाँ कोलार अर्थात् कौसल्या नदी आकर नर्मदा जी में मिली हैं। यहाँ नीलकंठ शिवजी का मन्दिर है। स्थान सुन्दर रमणीक है।

२१—नीलकण्ठ से ५ मील **डिमावर** ग्राम (डिण्डिमेश्वर) प्रसिद्ध है। डिण्डिमेश्वर का अपभ्रंश **डिमावर** प्रतीत होता है। डमरू बजा कर शिवजी ने यहाँ डिण्डिमघोष किया था कथा—रेवाखण्ड में वर्णित है। डिमावर में श्री पञ्चनाथ महादेव मन्दिर मुरलीमनोहर सहित सुशोभित है नूतन होते हुए भी चमत्कार पूर्ण यह स्थान है तपोमूर्ति स्वामी ओङ्कारानन्द गिरि जी की प्रेरणा से इसकी स्थापना हुई अभी तपोवन भी निर्माण की स्थिति में आ गया जो डिमावर से दो मील बाबरी की सीमा में लगा हुआ है।

२२—डिमावर से २ मील आगे **बाबरीघाट** है यहाँ टिमरनी नदी आकर नर्मदा जी में मिली है। **टिमरनी संगम** सुन्दर स्थान है।

२३—टिमरनी संगम से ८ मील आगे **मर्दानपुरघाट** है। वहाँ भी शिवजी का दर्शन है।बड़ा गांव है।

२४—मर्दानपुर से २ मील आगे **आँवरी घाट** तीर्थ है। यहाँ नर्मदा मैया झाड़ियों के बीच में से प्रकाशित होती हुई, तीन मील तक चली गयी हैं। यहाँ नर्मदा जी के बीच में, पर्वत में एक गुफा-सी है। जिसे ब्रह्मयोनि कहते हैं। यात्री इसमें से होकर निकलते हैं जो इस ब्रह्मयोनि से निकल जाते हैं, वे पाप रहित बन जाते हैं। यहीं पर श्री भीमसेन द्वारा निर्मित भीमकुण्ड है। यह प्रसिद्ध तीर्थ है। पुराना मन्दिर है। वसिष्ठ संहिता में इसकी कथा इस प्रकार है—

वसिष्ठ जी श्री रामचन्द्र जी से कह रहे हैं—राघव ! हिरण्यकशिपु ने घोर तपस्या करके ब्रह्माजी से दुर्लभ वर प्राप्त किये। ब्रह्माजी द्वारा निर्मित इस

सृष्टि का कोई भी जीव उसका नाश करने में समर्थ नहीं था। उसने समस्त देवताओं को पराजित करके इन्द्रासन छीन लिया और वह तीनों लोकों का राजा बन गया। तब समस्त देवतागण भगवान् विष्णु की शरण में गये। उन देवताओं की पत्नियाँ इस तीर्थ में आकर घोर तपस्या करने लगीं। वे सब भगवती पार्वती जी की शरणापन्न हुईं, उन्होंने एकाग्रचित्त से भगवती शिवा की आराधना की, उनकी स्तुति कीं। उनकी स्तुति पूजा से प्रसन्न होकर पार्वतीजी प्रकट हुईं और बोलीं—"देखो, तुम सब किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। जब यह हिरण्यकशिपु अपने भगवत् भक्त पुत्र प्रह्लाद को दुःख देगा तब इसका निश्चित ही विनाश हो जायगा। तुम तब तक यहीं निवास करके तप करो। इसके विनाश के पश्चात् तुम्हारे पतिओं को पुनः अपना-अपना पद प्राप्त हो जायगा।"

इसके अनन्तर भगवान् नृसिंह ने हिरण्यकशिपु का वध करके सब देवताओं को उनके स्थान दे दिए। तभी से यह तीर्थ अमरों की पत्नियों के नाम ओंवरी प्रसिद्ध हुआ। यहां जप तप आदि सुकर्म करने का अनन्त फल है। यहाँ सोमवती अमावास्या के स्नान का विशेष माहात्म्य है। (वसि० सं० २१ अ०) दूसरी कथा आमलकी तीर्थ के नाम से आंवलों से शिवजी ने क्रीड़ा की स्कन्द पुराणान्तर्गत रेवा खण्ड में है। इसके दक्षिण तट पर भी अच्छी व्यवस्था है।

२५—आँवरीघाट तीर्थ से ६ मील आगे **तालपुराघाट** है। मार्ग अत्यन्त सुहावना वन प्रान्तों में होकर गया है। यहाँ की शोभा अत्यन्त ही मनोरम है।

२६—तालपुराघाट से २ मील आगे **साततुमड़ीघाट** है इसके सामने दक्षिण तट पर कोकसर ग्राम है।

२७—साततुमड़ी घाट से ६ मील आगे **होलीपुरा घाट** है। यहां भागानेर नदी का संगम है। यहीं पर पंचमुखी हनुमान् जी भी हैं। यहाँ पर किसी भक्त ब्राह्मण को हनुमान् जी द्वारा मुक्ति प्राप्त हुई। यहां बटु ब्राह्मण भोजन का विशेष माहात्म्य है।

२८—होलीपुरा घाट से १ मील आगे **तींदरी नदी का सङ्गम** है। यहां तींदरी नदी नर्मदा जी में मिली हैं। पिछले दिनों आई बाढ़ के कारण पुराने स्थान नये अनेक भागों में विभक्त हो गये दूरी का अन्तर भी बहुत हुआ।

बुधनी से ब्रह्माणघाट

२९-३०—तींदरी नदी से २ मील आगे **महुघाट** है। जंगल के मार्ग से चलते हुये इस महुघाट से ६॥ मील आगे **बुधनी घाट** है। स्थान बहुत ही सुन्दर है।

बुधनी साधारणतया अच्छा ग्राम है। नर्मदा के उस पार दक्षिण तट पर हुसङ्गाबाद है। यहाँ मध्यरेलवे का स्टेशन है और नर्मदाजी पर रेलवे का पक्का पुल है। पुल के समीप ही नर्मदा जी बड़े-बड़े पत्थरों में से होकर प्रवाहित हुई हैं। उनका कल-कल शब्द अत्यन्त ही कर्ण प्रिय लगता है। बुधनी घाट के सन्निकट ही स्टेशन तथा डाकघर है सुन्दर पक्के घाट तथा मन्दिर हैं। यद्यपि जीर्ण शीर्ण हो गए हैं।

३१—बुधनी घाट से १॥ मील आगे **गदरियाँ संगम है** वहाँ गदरियाँ नदी आकर नर्मदा जी से मिली है।

३२—गदरियाँ संगम से एक मील आगे **गुलजारी संगम है।** यहाँ सुन्दर पक्का घाट है। श्रीरामचन्द्रजी का मन्दिर है। इसके सामने दक्षिणतट पर होशंगाबाद घाट है।

३३—गुलजारी संगम से ६ मील आगे जङ्गल के मार्ग से बांदराभान स्थान है। जिसे **बानर भालु तीर्थ** भी कहते हैं। इसके समीप ही महात्मा मृगनाथजी का आश्रम है। १००-१५० वर्ष पूर्व ये महात्मा थे। स्थान पर्वत पर है। यहाँ इन पर्वत श्रेणियों में अनेक प्राचीन देवी देवताओं के स्थान हैं।

३४—वानर भालु तीर्थ से २ मील आगे जानपुर नामक ग्राम है। इसके सन्निकट ही **चाँदनी संगम** है। यहाँ चाँदनी नदी आकर नर्मदाजी में मिली है।

३५-४१—चाँदनी संगम से २ मील आगे **चिचली घाट** है। चिचली घाट से १॥ मील आगे **मढ़ावन** है, यहाँ से ३ मील आगे **कुसुमेली संगम** है। यहाँ से भी ३ मील आगे **हतनोरा घाट** है। यहाँ से ४ मील आगे **खोड़िया घाट** है। यहाँ से ३ मील आगे **नाँदनेर** ग्राम के समीप ही **मनकामनेश्वर** शिव जी है, इनके समीप ही महाकालेश्वर भी हैं। यह प्राचीन स्थान है बहुत से मन्दिरों के खँडहर अभी तक पड़े हैं। ४१—यहाँ से ३ मील आगे **कुसुमखेड़ा** घाट है।

४२—इससे भी ६ मील आगे **भारकच** स्थान है, जिसे **भृगु क्षेत्र** भी कहते हैं यहाँ पर गरुड़जी ने रहकर तपस्या की थी। गरुड़जी को तपस्या करने की आवश्यकता क्यों हुई ? इस सम्बन्ध की वसिष्ठ संहिता में कथा है। श्रीरामचन्द्रजी के पूछने पर वसिष्ठजी ने कहा—राघव ! प्राचीन काल में भृगु वंशोद्भव महर्षि सौभरिजी वृन्दावन के समीप (सुनरख स्थान में) यमुना जी के जल में बैठकर तपस्या किया करते थे। जल में बैठकर तपस्या करने से उनके चारों ओर मछलियाँ स्वच्छन्द किलोलें किया करती थीं। भगवान् विष्णु के वाहन गरुड़जी वहाँ आये और महर्षि के सम्मुख ही वहाँ से पकड़कर मछली

खाने लगे। मछलियाँ बड़ी दुखी हुईं। तब सौभरि ऋषि ने गरुड़जी को शाप दिया—"यदि गरुड़ फिर कभी इस यमुनाजी के कुण्ड में घुसकर मछलियों को खायेंगे तो उसी क्षण प्राणों से हाथ धो बैठेंगे, मैं यह सत्य-सत्य कहता हूँ। यहाँ जो कोई भी हत्या करेगा वह मृत्यु को प्राप्त होगा। तब से गरुड़जी ने वहाँ आना बन्द कर दिया। श्रीमद्भागवत, विष्णु पुराणादि में तो इतना ही वर्णन है कि सौभरि ऋषि के शाप के भय से गरुड़जी फिर वहाँ हिंसा करने नहीं आये। इस बात को कालिय अहि जानता था, अतः गरुड़जी के भय से कालिय अहि सौभरि ऋषि के उस कुण्ड में आकर रहने लगा : तभी से वह कुण्ड कालिय ह्रद या अहिवास के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

किन्तु वसिष्ठ संहिता में इससे आगे भी वर्णन है। उसमें कहा है, सौभरि ऋषि के शाप देने पर भी गरुड़जी नहीं माने और वे फिर भी मछली पकड़कर ज्यों ही खाने को उद्यत हुए कि उनकी वहीं मृत्यु हो गई।

अपने स्थान पर भगवान् विष्णु के वाहन की मृत्यु देखकर महर्षि सौभरि बड़े चिन्तित हुए वे असमञ्जस में पड़ गये अब क्या किया जाय ? तब उन्होंने संजीवनी मन्त्र द्वारा मृतक गरुड़जीको जीवित कर दिया। गरुड़जी जीवित तो हो गये, किन्तु उनमें पहिले जैसा तेज प्रकट नहीं हुआ। तब सौभरि ऋषि ने उन्हें हरिहर मन्त्र देकर रेवा तीर, यहाँ भृगु क्षेत्र में तप करने की आज्ञा दी। गरुड़जी ने वैसा ही किया और उनको सिद्धि प्राप्त हुई।

सौभरि ऋषि ने मछलियों को विहार करते देखा तो उनकी इच्छा विवाह करने की हुई। उन्होंने अयोध्या के महाराजा मान्धाता की ५० कन्याओं से विवाह किया। प्रत्येक में १००-१०० पुत्र उत्पन्न किये और अन्त में वैराग्य होने पर पत्नियों सहित घोर तपस्या की तब मुक्त हो गये।

यह भारकच्छ तीर्थ भृगुक्षेत्र क्यों कहलाया इसकी भी कथा है। प्राचीन कल्प में असुरों के राजा बलि ने स्वर्ग पर चढ़ाई की। इन्द्र सहित समस्त देवताओं को जीतकर वह स्वर्ग का राजा बन गया। देवता स्थान भ्रष्ट होकर मारे-मारे घूमने लगे। असुरों की विजय क्यों हो गई ? इसलिये कि भृगु मुनि ने बलि की विजय के लिये इस स्थान पर गायत्री का पुरश्चरण किया था। इसी के कारण इन्द्र को पराजित करके महाराज बलि त्रिलोकी के राजा बन गये। भृगु मुनि की तपस्थली होने के कारण ही यह भृगुक्षेत्र तीर्थ कहलाया। यहाँ समस्त शुभ कर्मों की सिद्धि होती है। गायत्री पुरश्चरण का विशेष माहात्म्य है।

४३-४५—भारकच्छ भृगुक्षेत्र से ३ मील आगे **गोराघाट** है। ३६-गोराघाट से ६ मील आगे चलकर **मोतलसिर** स्थान है। यहाँ नारदी नदी आकर नर्मदाजी में मिली है। **नारदी संगम** के समीप नारदेश्वर मन्दिर था। अब वह नहीं रहा। नारदी गङ्गाको नारदजी ने तप करके प्रकट किया था।

४६—नारदी गङ्गा संगम से ५ मील आगे **बगलबाड़ा घाट** है। यहाँ वरुणा नदी आकर नर्मदाजी में मिली है। संगम पर वारुणेश्वर शिवजी का जीर्ण-शीर्ण प्रतिमा विहीन मन्दिर पड़ा है! संस्कृत पाठशाला है स्थान सुन्दर है।

४७—वरुणा संगम से २ मील आगे **आकाश द्वीप** तीर्थ है। यहाँ तेंदोनी नदी आकर नर्मदाजी में मिली हैं। पास में **सतरावन घाट** है। वनवास के समय में कार्तिक मास में पांडवों ने आकाश दीप जलाये थे और यज्ञ किया था। इसकी भस्मी अब तक निकलती है। यहां कार्तिक मास में आकाश द्वीप जलाने का विशेष माहात्म्य है।

४८—आकाश द्वीप तीर्थ से ३ मील आगे **मोआर** स्थान है। यहाँ से ४ मील आगे ४९—**मांगरोल** स्थान है। मांगरोल से ५ मील आगे ५०—**केतुधान घाट** है। केतुधान घाट के समीप ही खांड नदी का संगम है। यहाँ केतुधान घाट पर केतु ने तपस्या की थी। इसीलिये उसे नवग्रहों में स्थान प्राप्त हुआ। यहाँ श्रीरामचन्द्रजी का सुन्दर मन्दिर है। जहाँ परिक्रमावासियों के ठहरने की व्यवस्था है।

५१—खांड संगम से ३॥ मील आगे **उड़िया घाट** है। उसके ४ मील आगे ५२—**बोरास घाट** है। यहाँ पर कई मन्दिर हैं। यहाँ से ३ मील आगे ५३—**बांसखेड़ा घाट** है। इससे ६ मील आगे ५४—**केलकच घाट** है। यहाँ से भी २ मील आगे ५५—**अनघोरा घाट** है। यहीं पर **जनकेश्वर तीर्थ** है। महाराज विदेह जनक ने यहाँ अनेक यज्ञ किये थे।

५६—जनकेश्वर तीर्थ से ५ मील आगे शुक्ल घाट है जहाँ **शुक्लेश्वर तीर्थ** है। यहाँ के स्नान का अनन्त फल है। यहाँ सभी देवों ने, प्रह्लादजी ने तथा ब्रह्माजी ने तप किया। ब्रह्माजी ने ही यहाँ शुक्लेश्वर तीर्थ की स्थापना की। यहाँ के शिवलिंग स्वयंभू हैं। यहाँ सूर्य-चन्द्र ग्रहण के स्नान का विशेष माहात्म्य है। यहाँ दान, धर्म, ब्रह्मभोज तथा कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रतों का अनन्त गुणा फल है। (रे. खं. ४७ अ.)

५७—शुक्लघाट से १ मील आगे **रिछावर घाट** है। वहां से ४ मील आगे ५८—**सिनोरी संगम** है यहां से ५ मील आगे ५९—**करोंदी घाट** है करोंदी

घाट से ४ मील आगे ६०—**बेलथारी घाट** है। इसे बलि स्थली तीर्थ भी कहते हैं। महाराज बलि ने यहां अनेक यज्ञ किये थे। यहां से ६ मील आगे ६१—**अंडिया घाट** है। इससे ५ मील आगे ६२—**रामघाट** है। यहां श्रीरामचन्द्रजी ने तीर्थ यात्रा के समय कुछ काल निवास किया था। मन्दिर भी है।

६३—रामघाट से २ मील आगे ही **ब्रह्माण्ड घाट** है। जिसे ब्रह्माणी घाट भी कहते हैं। इसकी कथा इस प्रकार है—श्रीभगवान् विष्णु के नाभि कमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजी ने अपने आप चतुर्दश भुवनों की उत्पत्ति की। फिर वे नारदादि को साथ लेकर सब भुवनों को देखने चले। देखते-देखते जब वे पृथ्वी पर आये तो वहां क्षीरसागर में शेषशायी भगवान् विष्णु के दर्शन हुए। दोनों में विवाद हो गया। हम बड़े, हम बड़े। उसी समय उन दोनों के बीच में एक दिव्य ज्योतिर्लिङ्ग उत्पन्न हुआ। तब निश्चय हुआ कि जो इस ज्योतिर्लिङ्ग के आदि अन्त का पता लगा ले वही बड़ा। इस निश्चय के अनुसार ब्रह्माजी ऊपर की ओर और विष्णु नीचे की ओर गये। किसी को भी आदि अन्त का पता न चला तब दोनों ने ज्योतिर्लिङ्ग रूपी शङ्कर की स्तुति की। तब भगवान् शङ्कर ने कहा—मैंने ही तुम दोनों के वाद शमन हेतु ज्योतिर्लिङ्ग रूप में प्रकट होकर दोनों का कल्याण किया। त्रिदेवों का मैं ही जनक हूँ आप लोग प्रेम से हिल-मिलकर सृष्टि का कार्य चलाओ। यह सर्व प्रथम ज्योतिर्लिङ्ग की उत्पत्ति की कथा है।

कुछ काल के पश्चात् ब्रह्माजी को बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि मैंने अपने पिता विष्णु भगवान् से व्यर्थ ही विवाद किया। इसके प्रायश्चित्त स्वरूप मुझे तपस्या करनी चाहिये। यह सोचकर सृष्टि के कार्य को विश्वकर्मा, गणेशजी, स्कन्दजी तथा रुद्रजी को सौंपकर यहां ब्रह्माण्ड घाट में ब्रह्मेश्वर शिवजी की स्थापना करके तपस्या करने लगे। किन्तु उन चारों से सृष्टि का कार्य यथावत् सम्पन्न नहीं हुआ, तब विष्णु भगवान् ने आकर ब्रह्माजी से कहा—मैंने तुम्हारे सब अपराधों को क्षमा कर दिया, अब तुम पूर्व की भांति सृष्टि कार्य करो।" भगवान् की आज्ञा से ब्रह्माजी पुनः सृष्टि कार्य करने लगे। यह ब्रह्माणी अथवा ब्रह्माण्ड तीर्थ उन्हीं के नाम से विख्यात हुआ।

यहां नर्मदाजी के बीच में एक द्वीप है। उसमें भीम कुण्ड, अर्जुन कुण्ड, ब्रह्मकुण्ड तथा सूर्यकुण्ड आदि सप्त कुण्ड हैं। इनके सम्बन्ध में हम दक्षिण घाट के परिक्रमा में बता चुके हैं। ये कुण्ड नर्मदा के बीच में होने से परिक्रमा वाले यात्री वहाँ जाते नहीं हैं क्योंकि वे नर्मदा को पार नहीं कर सकते।

ब्रह्माण घाट प्राचीन तीर्थ है, यहां ब्रह्माजी ने चिरकाल तक तप किया था। उन्हीं के नाम से यह तीर्थ प्रसिद्ध हुआ। बहुत दिनों तक इस पर पेश-

वाओं का राज्य रहा। इतने सुन्दर सुदृढ़ पक्के घाट पेशवाओं के ही वनवाये हुए हैं। इन्दौर की अहिल्या बाई ने भी यहां सेवा की थी। जब धर्मात्मा राजा जमीदार थे तब इस तीर्थ की बड़ी श्रीवृद्धि रही होगी। अब इस धर्म निरपेक्ष शासन ने हिन्दु धर्म का जितना नाश किया है उतना नाश न मुसलमानी शासन में हुआ, न अँगरेजों के शासन में। जिन मन्दिरों की पूजा उत्सवादि के लिये १०-१०, २०-२० गाँव लगे थे। वे सब-के-सब सरकार ने ले लिये। अब मंदिरों में भोग लगाने तक का प्रबन्ध नहीं। इन अर्चावतारों का भी भाग्य होता हैं, कभी तो इनका इतना वैभव हो जाता है कि महाराजों के समान अर्चा पूजा होती है। कभी ऐसा हो जाता है कि नित्य के भोग के भी लाले पड़ जाते हैं। ब्रह्माण्ड घाट के बहुत से प्राचीन मन्दिरों की भी ऐसी ही दुर्दशा हो रही है। बाढ़ में कुछ घाट टूट गये थे। वे घाट बने किन्तु पहिले जैसे अब कैसे बन सकते हैं। यहां पक्के घाटों पर खड़े होकर नर्मदाजी का दृश्य देखिये कितना चित्ताभिराम मनमोहक दृश्य है। यहां के दृश्य को देखकर काशी के घाटों की स्मृति हो आती है।

६४—ब्रह्माण्ड घाट से ३ मील आगे **सगुनघाट** है। वहाँ से ३॥ मील आगे ६५—**धूआँधार घाट** है। यहाँ से ६ मील आगे ६६—**रामपुरा घाट** है। यहाँ से २ मील आगे ६७—**केरपाणि घाट** है। समीप में ही ६८—पिठेराघाट है। यहाँ से ८ मील आगे ६९-**हरणी संगम** है। यहां से ४ मील आगे ७०-**ब्रह्म कुण्ड** है। यहाँ से ४ मील आगे ७१—**झलौनघाट** है।

७२—झलौन घाट से १॥ मील आगे **सुनाचर घाट** है। यहाँ पर सहस्रा-वर्त तीर्थ है। यहाँ पितरों का उद्धार होता है! प्राचीन तीर्थ है यहां पर जप तप शुभ कर्म करने का विशेष माहात्म्य है। (रे० सं० ४४ अ०)

७३—सुनाचर घाट से १ मील आगे **सर्राघाट** है। यहीं **सौगन्धिकावन तीर्थ** है। यहाँ प्राचीनकाल में १०० ब्रह्मचारियों ने तर्पण करके अपने पितरों का उद्धार किया था। किसी सिद्ध महात्मा ने अपने तप के प्रभाव से यहां गङ्गा और यमुना को बुला लिया था। यमुनाजी यहां सहस्रधाराओं से प्रकट हुई। यहाँ स्नान करने का प्रयागराज त्रिवेणी स्नान के समान माहात्म्य बताया है। इस वन के वृक्षों की छाया पड़ने का अनन्त फल है यहां सभी शुभ कर्मों का विशेष माहात्म्य कहा है।

७४—सर्राघाट से ४ मील आगे गोरा ग्राम में **ब्रह्मोद तीर्थ** है। यहां प्राचीन काल में सप्तर्षियों ने तपस्या की थी। यह विशेषकर पितरों का तीर्थ है। यहां विधि-विधानपूर्वक श्राद्ध कर्म करने वालों के पितरों का ब्रह्मलोक में

निवास होता है। यहाँ उदुम्बर शिवजी हैं, उनकी पूजा करने से आत्मज्ञान की प्राप्ति बतायी गयी है (रे० खं० अ० ४४)

७५—गोराघाट से ४ मील आगे **बेलपठार घाट** है यह महाराज बलि की यज्ञस्थली है। यहाँ महाराज बलि ने यज्ञ करके ब्राह्मणों को अनन्त दान दिये थे।

७६—बेलपठार घाट से २ मील आगे **मालकच्छ घाट** है। यहां शिवजी का मनोहर मन्दिर है।

७७—मालकच्छ घाट से २ मील आगे **जलेरी घाट** है। यहां से २ मील आगे ७८—**सिद्धाघाट** है यहाँ से भी २ मील आगे ७९-**रामघाट पिपरिया** है।

८०—रामघाट पिपरिया घाट से ३ मील ही आगे **भेड़ाघाट** है।

अनुपम दिव्य अलौकिक स्थान भेड़ाघाट

भेड़ाघाट के सौन्दर्य को देखकर सभी का मन मुग्ध हो जाता है। यहां सरित प्रवरा भगवती नर्मदा संगमरमर के पहाड़ों को काटती हुई बड़े वेग से प्रवाहित हुई हैं। इन इतने संगमरमर के सुदृढ़ पहाड़ों को माता ने कितने युगों में काटते-काटते वर्तमान मार्ग बनाया होगा ? कभी माता पहाड़ की चोटी पर बहती हों उसके चिन्ह अभी स्पष्ट प्रतीत होते हैं। पञ्चवटी से नर्मदा के इस अनुपम दृश्य को देखने नौका द्वारा सहस्रों देशी-विदेशी नर-नारी नित्यप्रति आते हैं। ऐसा दृश्य संसार भर में स्याद ही कहीं हो। इसे देखने इंग्लैण्ड रूस, जर्मनी, स्वीजरलैण्ड आदि विदेशों से बहुत से विदेशी नित्य आते रहते हैं। नौकाओं का प्रबन्ध मध्य प्रदेशी सरकार की ओर से है। नौका में पुलिस के एक दो सिपाही साथ जाते हैं। नौका चलते ही कहीं काले संगमरमर के तट हैं, कहीं लाल, कहीं हरे, कहीं बगुला के पंख के सदृश सफेद संगमरमर के पहाड़ हैं। सैकड़ों फुट ऊँचे किनारे हैं। ऐसा लगता है मानों नर्मदा के दोनों ओर किले की सुदृढ़ चिकनी सीधी दीवारें खड़ी हों। आगे चलकर भूल-भूलैया आती है, एक विस्तृत-सा तालाब बन गया है, वहां यात्री यह नहीं बता सकता नर्मदा किधर से आ रही हैं। संगमरमर के चट्टानों में सूर्य, चन्द्रमा, हाथी, के पैर, हनुमानजी आदि के जल के प्रवाह के कारण प्राकृत मूर्तियां बन गयी हैं। आगे बननी हैं। प्रवाह के मध्य में संगमरमर की एक बहुत बड़ी चट्टान है। उसमें शिवलिङ्ग स्थापित हैं। कहते हैं इन्दौर की अहिल्या बाई ने इसे स्थापित किया था। यहां पर एक पुराना बूढ़ा मगर रहता था। शिवजी के पुजारी नित्य प्रति एक मोटी रोटी उसे दे आता था। पुजारी का कहना है कि पुकारने पर झट निकल आता था साथ-साथ हम तैरते थे। मेरे हाथ से रोटी

खा लेता था। उसने आज तक कभी किसी को हानि नहीं पहुँचाई। सुना है अब उसका देहान्त हो गया। उसकी खाल किसी अधिकारी के पास सुरक्षित है। नौकायें बन्दर कूदनी चट्टानों तक जाती हैं, आगे धुंआधार के ऊँचे चट्टान हैं। इसके आगे नौकायें नहीं जाती। उस दृश्य की अद्‌भुत छटा तो देखने से ही जानी जा सकती है। लेखनी द्वारा उसका वर्णन असम्भव है।

भेड़ा घाट छोटा-सा ग्राम है। १००-१५० की बस्ती होगी। वह भी अभी थोड़े दिनों से बसा है। उसमें सफेद पत्थरों की भांति-भांति की मूर्तियां बेचने वाले ही रहते हैं। छोटा-सा बाजार है। डाकघर, प्रारम्भिक हिन्दी पाठशाला संस्कृत पाठशाला भी है। पुलिस की चौकी तारघर आदि आधुनिक सभी सामग्री उपलब्ध है। एक छोटा सा अजायब घर भी है, जिसमें जीवित मृतक जनावर रखे गये हैं। बहुत से ऐसे शीशा हैं जिसमें अपनी विचित्र प्रकार की आकृतियां दिखाई देती हैं, यात्री उन आकृतियों को देखर हँसी के मारे लोट-पोट हो जाते हैं।

अनेक शिवजी के मन्दिर हैं दिगन्बर जैनियों का विशाल मन्दिर और बहुत बड़ी धर्मशाला है। तीन डाक बंगले हैं, वे नर्मदा तट पर बहुत ही भव्य बने हैं। आधुनिक सभी उपकरण उसमें उपलब्ध हैं।

यहां से लगभग एक मील की दूरी पर धुँआधार है। वहां नर्मदा सैकड़ों फुट ऊपर से नीचे गिरी हैं। ऊँचे से धारा गिरने से जल के फैन दूध की भांति शुभ्र दीखते हैं। गर्मियों में तो धारा कम हो जाती है। वर्षा में तो वास्तव में धुंआधार ही बन जाता है। सफेद पत्थर की मूर्तियों की सैकड़ों फूस की झोपड़ियों में दुकानें है। देश-विदेशों के विभिन्न प्रान्तों के सहस्रों यात्री इस दृश्य को देखने नित्य प्रति आते हैं। रात्रि की चांदनी में संगमरमर की शिलायें दूध की फैन की भांति चमकतीं हैं। शरद पूर्णिमा की रात्रि में अत्यधिक दर्शनार्थी आते हैं। बीच में ही ६४ योगिनियों का मन्दिर है। ६४ योगिनियों की कैसी कलात्मक मूर्तियां थीं। आततायी दस्यु धर्मी मुसलमान धर्मान्धों द्वारा सभी मूर्तियां तोड़ दी गयी हैं। उन्हें देखकर हृदय में एक प्रकार की टीस उत्पन्न होती है। नर्मदा किनारे के प्रायः बहुत प्राचीन मन्दिर इन धर्म द्वेषी मूर्तिभञ्जक यवनों द्वारा खण्डित किये गये हैं।

यहां एक तालाब-सा है, जिसमें से नर्मदेश्वर शिवजी निकलते हैं। सम्पूर्ण भारत वर्ष में तथा विदेशों में यहां से भी मन्दिरों में स्थापित करने के लिये शिवजी जाते हैं। नर्मदा का प्रत्येक कंकड़ शंकर है। नर्मदा जी शिवजी की पुत्री हैं। शिवजी जब प्रसन्नता के साथ ताण्डव नृत्य कर रहे थे तो उनके

पसीना से माता नर्मदा जी की उत्पत्ति हुई। उन्हें विन्ध्य के पुत्र मेकल ने धारण किया इसलिये ये मेकल सुता भी कही जाती हैं। पुराणों में इनकी महिमा के रेवाखण्ड ही हैं। उन्ही के आधार पर पृथक् नर्मदा पुराण भी छप गये हैं।

भेड़ाघाट–अत्यन्त ही मनोहर तथा सुखप्रद प्रतीत होता है। भेड़ाघाट से नर्मदा किनारे-किनारे पहले गोपालपुर पड़ता है। भेड़ाघाट में भृगु ऋषि ने तपस्या की थी, इससे भृगु का अपभ्रंश भेड़ा हो गया। किन्हीं का कहना है यहां एक छोटो नदी वामन गंगा का नर्मदा के साथ भेड़ा (संगम) हुआ है, इसो से इसका नाम भेड़ाघाट पड़ा।

भेड़ाघाट से मण्डला

८१—भेड़ाघाट से किनारे किनारे चले तो तीन मील पर गोपालपुर घाट मिलेगा। वह रमणीक स्थल है। वहां से लगभग तीन मील **तेवर नाम** का एक साधारण-सा ग्राम है। प्राचीन काल में इसका नाम "त्रिपुरी" था। इसका नाम त्रिपुरी क्यों पड़ा इस सम्बन्ध की श्रीमद्भागवत में तथा अन्यान्य पुराणों में विस्तार से कथा है। वसिष्ठ संहिता में वसिष्ठ ने श्रीरामचन्द्रजी को इसको जो कथा सुनाई उसे ही हम यहां संक्षेप में कहेंगे—एक बार देवासुर संग्राम में देवताओं से असुर हार गये। इससे वे बड़े चिन्तित हुए। इस पर असुरों के शिल्पी मयासुर ने लोहे, चांदी और सुवर्ण के तीन पुर बनाये, वे तीनों पुर अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित थे। वे तीनों आकाश में घूमते रहते थे। किसी एक पर्व पर मिलते थे, नहीं तो अदृश्य रूप से घूमते रहते। वे जो अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करते उससे देवताओं को तो क्षति पहुँचती किन्तु अदृश्य रहने से तथा घूमते रहने से उन पर कोई प्रहार नहीं कर सकता था। सब देवताओं ने मिल-कर शिवजी से प्रार्थना की। शिवजी उन दैत्यों से लड़ने गये। शिवजी अपने बाणों से असुरों को मारकर गिरा तो देते थे, किन्तु मय दानव ने अमृत का कुण्ड बना रखा था। मयासुर मृतक असुरों को ले जाता और कुण्ड में डाल-कर जीवित कर देता। फिर शिवजी से लड़ने आ जाते। शिवजी सोचते—अभी तो यह मर गया था फिर कैसे लड़ने आ गया। चिरकाल तक युद्ध होता रहा। शिवजी उन्हें परास्त न कर सके। हारकर वे कैलाश पर चले गये।

अब देवता बड़े घबड़ाये। वे ब्रह्माजी की शरण गये। ब्रह्माजी ने कहा—"भाई! मेरे वश की बात नहीं है। चलो हम सब मिलकर शंकरजी की शरण में चलें।" जब सब शंकरजी के समीप गये तो शंकरजी ने कहा—देखो भाई! वह मयासुर बड़ा मायावी है, यह मेरे वश की बात नहीं है। वह मायावी माया

से ही जीता जा सकता है। भगवान् विष्णु मायापति हैं, वे ही अपनी माया से उसे जीत सकते हैं। चलो सब मिलकर उन मायेश्वर की शरण में चलें।

जब सब अज, शंकर तथा देवगण विष्णु की शरण गये तो भगवान् हँसे और बोले—मायावी तो माया से ही जीता जाएगा। जब तक उनके पास अमृत कुण्ड है, तब तक उन्हें कोई जीत नहीं सकता। ब्रह्माजी! तुम तो बनो बछड़ा, मैं बनता हूँ गौ तब काम चलेगा।"

ब्रह्माजी ने कहा—महाराज! मैं तो आपका बछड़ा हूँ ही, चलिये! अब भगवान् सुन्दर-सी दुबली-पतली गौ बन गये। ब्रह्माजी बछड़ा बनकर उनके पीछे-पीछे चले। त्रिपुर के नगर में घुस गये और अमृत के कुण्ड में से अमृत पीने लगे। कुछ ने कहा भी—देखो, यह गौ अमृत पी रही है।"

सबने कहा—प्यासी गौ को पीने से हटाना न चाहिए। कितना पीवेगी यह गौ? साधारण गौ तो थी नहीं। सब-के-सब अमृत को पी गई और तुरन्त चली आई। अब शिवजी ने भगवान् विष्णु की सहायता से दिव्य रथ पर चढ़कर तीनों पुरों का नाश कर दिया। तभी से उनका नाम "त्रिपुरारि' प्रसिद्ध हो गया। इसी स्थान से शिवजी ने तीनों पुरों का नाश किया था, अतः इस स्थान का नाम 'त्रिपुरी' प्रसिद्ध हुआ। त्रिपुरी का ही अपभ्रंश 'तेवर' हो गया। जब मयासुर को आगे करके सब असुर आशुतोष शंकरजी की शरण गये, तब शंकरजी ने मयासुर को पंचाक्षर मन्त्र का उपदेश देकर नर्मदा किनारे तप करने की आज्ञा दी तब उसने **तिलेश्वर** तथा **भैरवेश्वर** तीर्थ में तप करके सिद्धि प्राप्त की। गोपालपुर यहाँ से तीन मील है।

पहिले यहाँ कलचुरी-वंश का राज्य था। इसी वंश में ग्यारहवीं शताब्दी में कर्ण देव नाम के एक बहुत ही सुप्रसिद्ध महाराजा हुए। उन्होंने अपने बाहु-बल से भारत का अधिकांश भाग अपने अधीन किया था। ये महाराज बड़े धर्मात्मा थे। इन्होंने बहुत से मन्दिर, वापी, कूप, तड़ाग बनवाये। इनकी महारानी अदहना देवी ने भेड़ाघाट और धूँआधार के बीच गौरीशंकरजी का मन्दिर बनवाया था, जिसमें चौंसठ योगिनियों की स्थापना की। योगिनियों की मूर्तियाँ अत्यन्त कलात्मक भव्य थीं जिन्हें आततायी दस्युधर्मी यवनों ने खण्डित कर दिया है।

८२. गोपालपुर से लगभग एक मील पर **लमेटा घाट है**। पिप्पलाद मुनि ने यहीं तपस्या की थी, यहाँ उनके स्थापित **पिप्पलेश्वर** शिव हैं। यहाँ पीपल के वृक्षों के नीचे से सरस्वती नदी निकलकर नर्मदाजी में मिली हैं। यहीं शनि-

देव का मन्दिर है यहाँ नर्मदा सरस्वती का संगम है। यहां देवराज इन्द्र ने तपस्या की थी, उनके द्वारा स्थापित **इन्द्रेश्वर** शिवजी का मन्दिर है। यहाँ पत्थरों पर हाथी के पैर जैसे चिन्ह बने हैं। कहते हैं ये इन्द्र के हाथी ऐरावत के चिह्न हैं। जबलपुर से जो तिलवारा घाट को सड़क गई, उसमें से एक शाखा लमेटा घाट को भी गई है। पक्के घाट हैं, कई मन्दिर हैं।

८३—यहाँ से एक मील आगे **त्रिशूल घाट** है। शिवजी ने अपने त्रिशूल का प्रहार करके इस तीर्थ का निर्माण किया है। यहाँ नर्मदाजी त्रिशूल के सदृश प्रवाहित होती हैं। व्यतीपात, संक्रान्ति और सूर्य ग्रहण के समय यहाँ के स्नान का बड़ा माहात्म्य है।

८४—त्रिशूल घाट से एक मील आगे **रामनगरा मुकुट क्षेत्र** है। कहते हैं यहाँ महाराज हरिश्चन्द्रजी ने तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की थी। रेवा खण्ड में इसकी कथा है कि राजा हरिश्चन्द्र ने कुरुक्षेत्र में सूर्य ग्रहण के समय दस सहस्र सुवर्णालंकार युक्त गौओं का दान दिया था तथा ब्राह्मणों को १०८ समृद्धशाली ग्रामों का दान दिया था। इन पुण्यों के कारण उन्हें अन्तरिक्ष पुरी प्राप्त हुई। उसी समय शशोक नाम के राजा ने अमरकंटक में केवल एक सहस्र गौओं का दान किमा। इसके फलस्वरूप उन्हें मुक्ति प्राप्त हुई।

इस पर महाराज हरिश्चन्द्र ने ब्रह्माजी से पूछा-'महाराज! मेरे इतने दान करने का फल केवल अन्तरिक्षपुरी प्राप्त ही हुआ और शशोक ने केवल एक सहस्र गौ दान से ही मुक्ति कैसे प्राप्त कर ली। इस विषमता का कारण बतावें?"

तब ब्रह्माजी ने कहा—देखो भाई! नर्मदा के अमरकंटक में किए हुए पुण्य का अन्य क्षेत्रों से दस सहस्र गुणा फल है। अतः तुम नर्मदा किनारे जाकर तपस्या करो। ब्रह्माजी की आज्ञा से हरिश्चन्द्रजी ने यहाँ तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की। यहाँ पर एक सूअर ने स्नान करके मुक्ति प्राप्त की। इसीलिए इसका नाम मुक्ति क्षेत्र (मुकुट क्षेत्र) हुआ।

८५—रामनगरा मुकुट क्षेत्र से लगभग १॥ मील **तिलवाड़ा घाट** है। यहां पर तिलभांडेश्वर शिवजी का मन्दिर है। वसिष्ठ संहिता में इसकी कथा इस प्रकार है—"एक बार भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, दुर्वासा, वामदेव, वसिष्ठ, विश्वामित्र तथा जमदग्नि आदि महर्षि गण नर्मदा परिक्रमा करते हुए इस तीर्थ में आये। उस दिन मकर संक्रान्ति का दिन था। मकर संक्रान्त्रि के अवसर पर दिए दान का अनन्त फल होता है नर्मदा किनारे पर विशेष रूप से। किन्तु इन

महर्षियों के पास तिल का अभाव था। इन्होंने सोचा—नर्मदा किनारे मकर संक्रान्ति पर तिल दान का विशेष महात्म्य है, हमारे पास तिल नहीं हैं, क्या किया जाय।" यह सोचते-सोचते वे सब सो गये। स्वप्नावस्था में शंकरजी ने उनसे कहा—ऋषियों! यहां पर वाणासुर ने तिलभाण्डेश्वर शिवजी की स्थापना की थी, वह शिवलिङ्ग नर्मदाजी के जल में पड़ा है। उसके सदृश अन्य शिवलिङ्ग नहीं है। उस पर तिल का चिन्ह है, उसे जल से निकालकर उसकी पूजा करो, तुम्हें तिल दान का फल प्राप्त हो जायगा। तब ऋषियों ने ऐसा ही किया। यहाँ मकर संक्रान्ति पर मेला होता है, यहाँ पर तिल दान का बड़ा माहात्म्य है।

यहां एक बार अखिल भारतीय राजनैतिक सभा (कांग्रेस) का अधिवेशन हुआ था, जो 'त्रिपुरी कांग्रेस' के नाम से प्रसिद्ध है। यहां पर एक गांधी स्मारक नाम का भवन भी है। यहीं पर नर्मदेश्वर जी का एक भव्य शिवालय है। झरिया के स्वर्गीय श्री वीरमभाई घेला थे उन्होंने एक वर्ष का बड़ा यज्ञ कराया था, जिसमें नित्य सहस्त्रों मृत्तिका के शिवजी बनाकर पार्थिव पूजा होती थी। वहां उन्होंने मन्दिर, गोशाला आदि बनाकर एक धार्मिक न्यास बना दिया है। स्थान बड़ा रमणीक है।

यहां से लगभग दो मील की दूरी पर मदन महल है। बारहवीं शताब्दी में यहां गढ़ा के राजा मदनसिंह ने मदन महल नाम का भव्य महल एक चट्टान पर बनवाया था जो दर्शनीय है, आज कल जीर्ण हो गया है, सुनते हैं यहां बहुत सम्पत्ति गड़ी है एक दोहा प्रसिद्ध है—मदन महल की छांह में, दो टोंगन के बीच। माया गड़ी नौ लाख की, दो सोने की ईंट। उससे कुछ दूर गुप्तेश्वर महादेव का प्रसिद्ध मन्दिर है। गुप्तेश्वर महादेव से २ मील तिलवाराघाट से जंगल के मार्ग से साढ़े तीन मील प्रसिद्ध ८५—**ग्वारीघाट** है। रेलवे स्टेशन भी है। जबलपुर की नगर बस सेवा भी चालू रहती है।

यहां पर अनेकों मन्दिर तथा पटे हुए घाटों की शोभा अपूर्व है। नर्मदा माई का जल प्रवाह मनोहर है। दर्शनीय तीर्थ है। बाजार है। धर्मशालाएँ हैं। अन्न क्षेत्र है, सन्तों के निवास योग्य समीप में **जलहरीघाट** जहां अनेकों प्राचीन नवीन भव्य मन्दिर तथा स्थान आए दिनों स्थापित होते जा रहे हैं। चमत्कारी दिव्य साधना भूमि है यह।

८६—इसके आगे **गौर सङ्गम** है, यहां गौर नदी आकर नर्मदा जी में मिलती हैं, नर्मदा जी पर पक्के घाट हैं।

८७—गौर संगम से आगे लगभग ५ मील पर **नाँदिया घाट** है, इसके सामने ही नर्मदाजी पर **खिरैनी घाट** है।

८८—नांदिया घाट से आगे पहाड़ी मार्ग है, घोर जंगल है वीहड़ वन में होकर नर्मदा किनारे-किनारे जाना होता है। ७ मील के लगभग चलकर **नन्दिकेश्वर तीर्थ** आता है। यह स्थान बहुत रमणीक तथा ठण्डा है। वसिष्ठ संहिता में इस तीर्थ की कथा इस प्रकार है—

इस तीर्थ की महिमा तथा परम पावनता श्रवण करके ब्रह्माजी के पुत्र धर्म ने यहाँ दश सहस्र वर्ष निवास करके घोर तपस्या की। इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर आशुतोष भगवान् भूतपति शिवजी अपने गणों के सहित इनके सम्मुख प्रकट हुए। धर्मराज ने शिवजी के पादपद्मों में साष्टाङ्ग प्रणाम करके उनकी विधिवत पूजा की तथा दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर प्रेम में विभोर होकर स्तुति की। इनकी पूजा स्तुति से प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। तब धर्म ने कहा—"प्रभो! मैं सदा आपकी सेवा में ही संलग्न रहूँ ऐसा वर दीजिये।"

यह सुनकर शिवजी प्रसन्न हुए और बोले—अब तक हमारा वाहन कुम्भोदर नादिया था। आज से तुम हमारे नन्दीगण हुए। यह सुनकर समस्त देवताओं ने शिवजी का जय-जयकार किया। तब शिवजी ने कहा इस तीर्थ में सदैव हमारो सन्निधि रहेगी और यह तीर्थ **नन्दिकेश्वर नाम से** ख्यात होगा। यहाँ पर शिवरात्रि के दिन शिवजी का मेला होता है।

८९—नन्दिकेश्वर तीर्थ के आगे घने वीहड़ वनों में होकर नर्मदा किनारे-किनारे लगभग पाँच मील चलकर **छोलिया घाट** आता है। स्थान रमणीक है, शिवजी के दो मन्दिर हैं। यह स्थान भेड़ाघाट से नर्मदा किनारे-किनारे चलने से लगभग ३१ मील पड़ता है। ब्रह्मकुण्ड जो नर्मदा किनारे है वहीं से जबलपुर जिला लग जाता है। ब्रह्मकुण्ड भेड़ाघाट नर्मदा किनारे से लगभग २८ मील है। इस प्रकार इस से लगभग ६० मील नर्मदा जी जबलपुर जिले में प्रवाहित हुई हैं। अब आगे मंडला जिला आ जायगा।

९०—छोलियाघाट से आगे चलकर झाड़ी के मार्ग से लगभग ७।८ मील **ठाटीघाट** है, सुनते हैं यह स्थान हठ्योग करने के लिए बहुत ही उत्तम माना गया है। यहाँ दो शिवजी के मन्दिर हैं।

९१—ठाटी घाट से लगभग ८।९ मील की दूरी पर **पद्मीघाट** है। यहाँ बाइली नदी आकर नर्मदा जी में मिलती है। वाइली नदी का संगम है। यहाँ से पक्की सड़क मिलती है नर्मदा जी के दर्शन दूर से होते हैं।

९२—पद्मीघाट से लगभग चार मील की दूरीपर महोदर नदी आकर नर्मदा जी में मिलती हैं। यह **महोदर संगम** घाट रमणीक स्थान है। यहाँ की जलवायु [illegible] रहने योग्य है।

९३—महोदर संगम से लगभग तीन मील पर पक्की सड़क-सड़क चलने पर **चिरई डोंगरी** घाट मिलता है।

९४—चिरई घाट से लगभग ५।६ मील की दूरी पर **फूल सागर घाट** है यह स्थान भी पक्की सड़क के समीप ही है।

९५—फूल सागर से लगभग ५।६ मील दूर **सहस्त्रधारा तीर्थ** है। स्थान बहुत ही रमणीक तथा दर्शनीय है' यहाँ नर्मदा जी विन्ध्य पर्वत को फोड़कर कई धाराओं में बही हैं। सुनते हैं राजा सहस्त्रबाहु ने अपनी सहस्त्रों भुजाओं से नर्मदा जी का प्रवाह रोक लिया था। इससे तटपर शंकर जी की पूजा करते हुए रावण की पूजा सामग्री बह गयी थी। जब रावण सहस्त्रवाहु से लड़ने आया तब सहस्त्रबाहु उसे अपनी कांख में दबाकर ले गया। महर्षि पुलस्त जी ने आकर उसे छुड़ाया।

९६—यहाँ से दो तीन मील की दूरी पर ही **मँडला नगर** है कोई जिसे प्राचीन माहिष्मती नगरी भी कहते हैं। यहाँ पर एक प्राचीन किला है। देव गाँव से नर्मदा जी के किनारे-किनारे पक्की सड़क मंडला तक आई है। मंडला मध्य प्रदेश का प्रसिद्ध जिला है। यहाँ से जबलपुर को पक्की सड़क गयी है। तथा नर्मदा जी के घाट भी हैं। जबलपुर के पास जो गढ़ मंडला स्थान है, बह अनेकों वर्षो तक गौंड़ राजाओं की राजधानी रही थी यहीं के गौंड़ राजा मदन सिंह ने ऐतिहासिक प्रसिद्ध मदन महल बनवाया था। जिसका जीर्णोद्धार राजा संग्राम सिंह ने कराया था। सुप्रसिद्ध महारानी दुर्गावती यहीं की रानी थीं। वंश के राजा नरेन्द्रसिंह ने गढ़मंडला से अपनी राजधानी हटाकर यहाँ अपनी राजधानी बनायी। उसी राजा ने सन् १६८० में किला बनवाया कहीं-कहीं पुरानी दीवालें खड़ी हैं। किले के भीतर टूटा-फूटा राजेश्वरी देवी का मन्दिर है, किले के भीतर और भी बहुत-सी मूर्तियाँ हैं, इनमें से राजा सहस्त्रबाहु की भी मूर्ति है। सुनते हैं यहाँ भगवान् वेदव्यास जी का भी एक आश्रम था। नर्मदा जी के दक्षिण तट पर पहिले यह आश्रम था। एक समय की बात है व्यासजी के आश्रम पर महर्षि पराशर, मनु, अत्रि, याज्ञवल्क्य, अङ्गिरा तथा और भी बहुत से महर्षि पधारे। व्यासजी ने विधिवत् उनका स्वागत सत्कार तथा पूजन करना चाहा। तब पराशर महर्षि ने कहा—व्यासजी! नर्मदा के दक्षिण तट पर ऋषिगण आप की पूजा ग्रहण करना नहीं चाहते। इस पर व्यासजी ने भगवती नर्मदा जी से प्रार्थना की। व्यास जी की प्रार्थना स्वीकार करके उन्होंने अपना प्रवाह बदल दिया। वे कुछ दूर दक्षिण की ओर बहकर फिर उत्तर की ओर बहने लगीं। इससे उनका आश्रम उत्तर की ओर हो गया। तब सब ऋषियों ने उनकी पूजा ग्रहण की। मण्डला के तीनों ओर नर्मदा जी

हैं। भगवान् व्यास के स्थापित व्यास नारायण के नाम शिवजी अभी तक विद्यमान हैं। मंडला में और कई मन्दिर हैं। कालीदेवी जी का मन्दिर प्रसिद्ध है। नर्मदा जी पर पक्का पुल भी है।

भगवान् दत्तात्रेय के आशीर्वाद से कहाराज कार्तवीर्य अर्जुन ने यहीं सहस्र वाहुएँ प्राप्त कीं। जिन्हें भगवान् परशुराम जी ने छेदन किया। श्रीमद्भागवतादि पुराणों में यह सहस्रबाहु अर्जुन की राजधानी माहिष्मती पुरी इसी मंडला को मानते हैं। मंडला से देवगाँव और डिंडोरी होती हुई एक सड़क अमरकंटक तक गयी है।

मण्डला—'मण्डलेश्वर तीर्थ' भी कहा जाता है। इस तीर्थ की कथा वशिष्ठ संहिता अध्याय १०–११ में है। यहाँ सहस्रवाहु ने गुरूदत्त को तप से प्रसन्न किया, हजार भुजा माँगली, उनके आशीर्वाद से योगी बनकर रहा है। इससे धर्म की रक्षा करने लगा 'कार्तवीर्यार्जुनो नाम....' यह मन्त्र प्रमाणितकर रहा है। इसकी सत्ता सम्राट पद को वरण करने लगी। वशिष्ठजी ने श्रीरामको इसका पूर्व चरित्र भी कहा।

वृक दैत्य का विष्णु भगवान् ने जव बधकिया तब शकुनी ने घोर तप किया देवता घवराये परमात्मा की स्तुति की और बोले—अहो! नर्मदा तट पर एक हजार दैत्य तप करने बैठे हैं, आप हमारी रक्षाकरें। बिष्णु ने अभय दानदेकर गरुड़ वाहन हुए सोलह पाशों को हाथ में लिए दैत्यों का बध कर डाला उन्होंने राजाओं के घर फिर जन्म लिया, वे सहस्रार्जुन की हजार भुजा हो गई। परशुराम जी ने उनका छेदन किया।

बनजर और सरस्वती का संगम नर्मदाजी में प्रयागराज की त्रिवेणी जैसा समझकर सहस्रार्जुन ने यहाँ तप भी किया शिवजी को भी प्रसन्न किया। दत्तात्रेय भी वहाँ आए। इच्छित वर दिए उन्ही की आज्ञा से राजाने यहाँ मण्डलेश्वर की स्थापना की। शिवजी प्रगटे, स्तुति हुई, वरदान भी उसे दिया यह तीर्थ सिद्ध पीठ हो जायगा इत्यादि।

यहाँ तथा महेश्वर में अनेक बातों का सादृश्य होने से माहिष्मती क्षेत्र विवाद ग्रस्त हो रहा है, विद्वानों की शोध भी हो रही है जो भी हो—मण्डला सुन्दर स्थान है, दृश्य मनोहर आम्र वृक्षोंकी सघनता से दर्शनीय हो रहा है।

९७—मंडला से लगभग १० मील दूर **रामनगर घाट** है

९८—रामनगर घाट लगभग ११ मील पर **लिंगाघाट** है, यहाँ से थोड़ी दूर पर ही पक्की सड़क है। लिंगाघाट से रामनगर तक पक्की सड़क नर्मदा जी किनारे-किनारे ही है।

[illegible]—लिंगाघाट से ६ मील दूरी पर **बिलगड़ा ग्राम** है, यह पहाड़ी ग्राम है [illegible] की बस्ती है, मार्ग जंगल और पहाड़ का है।

१०८—बिलगड़ा से दो मील चलकर **दुपट्टाघाट** आता है। यहाँ दुपट्टानदी आकर नर्मदाजी में मिली है दुपट्टा नर्मदा का संगम है, स्थान रमणीक है, पर्वत का मार्ग है।

१०१—दुपट्टा से चार मील दूर चकढेई है।

१०२—चकढेई से ४ मील **खापा** है।

१०३—खापा से ३ मील **सिवनी** गाँव है।

१०४—सिवनी से ६ मील **फुटरई ग्राम** है यहाँ पर सनगी नदी आकर नर्मदाजी में मिलती है।

१०५—सनगी संगम से चार मील दूर पर सारङ्गपुर गाँव है।

१०६—सारङ्गपुर ९ मील **पटपरा** गाँव है।

१०७—पटपरा से ५ मील **कन्हैया घाट** है। यहाँ कन्हेया नदी आकर नर्मदाजी में मिलती है।

१०८—कन्हैया सङ्गम से ५ मील **घुसिया** है।

१०९—घुसिया से ६ मील शाहपुर है। यहाँ से नर्मदाजी ५-६ मील पड़ती है। पक्की सड़क पर यह गाँव है।

११०—शाहपुर से ६ मील **जोगीपुरटिकड़िया** ग्राम है, यह ग्राम नर्मदाजी के किनारे पर है, ग्राम बड़ा है, शिवजी और राम-चन्द्रजी के मन्दिर हैं, एक धर्मशाला भी है। यह ग्राम नर्मदाजी के किनारे पर है जबलपुर वाली पक्की सड़क के किनारे पर यह ग्राम है।

१११—जोगी टिकरिया से दो मील **देवरा ग्राम** है, यहाँ कटोरी नदी आकार श्री नर्मदाजी में मिलती है।

११२—कटोरी सङ्गम से चार मील दूर **लुटगाँव** है। यहाँ कपिलजी ने तपस्या की थी। छोटी-सी कपिल धारा भी है। **लछमन मंडवा** तीर्थ तथा **रामकुण्ड** आदि तीर्थ हैं। सुनते हैं श्रीरामचन्द्रजी ने दिग्वजय के समय इसकी स्थापना की थी यह स्थान यहाँ का प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ से कण्डा कापा **ककड़िया** ८ मील है।

११३—कंडाकापा (ककडिया) से चार मील **कुल्हार-संगम**है यहाँ कुल्हार नदी श्री नर्मदा जी में आकर मिली हैं पहाड़ी ऊबड़-खाबड़ मार्ग है। नर्मदा जी अमर कंटक से रेवासागर संगम तक प्रायः पहाड़ों में ही होकर बही हैं।

११४—कुल्हार संगम से दो मील आगे **टेढ़ी नदी संगम** है। यहाँ टेढ़ी नदी श्री नर्मदा जी में आकर मिली हैं।

११५—टेढ़ी संगम से ६।७ मील दूर **कंचनपुर** है। यहाँ एक छोटी-सी कोई **दान** नदी श्री नर्मदा जी में आकर मिली हैं।

११६—कञ्चनपुर से ७।८ मील दूर देवरी है। यहाँ **देवरी** नदी आकर श्री नर्मदा जी में मिली हैं।

११७—देवरी संगम से दो मील पर दम्हेड़ी हैं।

११८—दम्हेड़ी से दो मील **भीमकुंडी** है। यहाँ श्री वाणगंगा श्रो नर्मदा जी में मिली हैं। यहाँ एकही पत्थर को काटकर नर्मदा जी में मिली है। कहते हैं भीमसेन ने गदा मार कर नर्मदा जी के मध्य में कुंड बहाया है। यही भीमसेन ने नर्मदा जी को पार किया था। नर्मदा के दोनों ओर उनके चरणचिह्न हैं उन्होंने ही कुंडों का रूप धारण कर लिया है।

१२०—भीमकुंडी घाट से ८ मील दूरी पर **हराई टोला** स्थान है। यह स्थान झाड़ियों के बीच में होकर है। रास्ता विकट है।

१२१—हराई टोला से लगभग ७ मील **दमगड़ घाट** है। यहाँ बराती नाम की छोटी-सी नदी नर्मदा जी में आकर मिली है।

१२२—दमगढ़ से लगभग ३ मील **कपिलधारा** स्थान है। यहाँ नर्मदा जी पहाड़ से लगभग ६० फुट नीचे गिरतो हैं, बड़ा ही सुन्दर नयनाभिराम प्रपात है। यहाँ पर कपिल मुनि ने पूर्वकाल में तपस्या की थी। ऐसी किंवदन्ती है कि कपिल मुनि ने यहाँ नर्मदा जी की धारा को रोकने का प्रयत्न किया था। नर्मदा जी के किनारे पर उनके चरणचिह्न अभी तक दृष्टिगोचर होते हैं। अमरकंटक यहाँ से लगभग ४ मील है मार्ग संकीर्ण है। यहाँ का दृश्य अत्यन्त ही मनोहर है, चारों ओर हरे-भरे वृक्ष दिखायी देते हैं। इसके समीप ही आलमोनियम का कारखाना है। बड़े-बड़े पहाड़ों के टुकड़े दैत्याकार मशीनों के द्वारा तोड़कर लाये जाते हैं।

कपिलधारा बहुत ही पुण्यप्रद तीर्थ है पुराणों में इसके सम्बन्ध की बहुत-सी कथायें हैं। यहाँ से तीन मील दूर दक्षिण में कपिल गुफा है, वहाँ **नीलगंगा** का संगम है। यहाँ से एक मील गायत्री सावित्री (कपिला पिप्पला) का संगम है। इस स्थान को कोटितीर्थ अमर कंटक भी कहते हैं। कपिलगंगा की उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है, शिवजी का विवाह दक्ष की पुत्री दाक्षायणी सतीजी के साथ हुआ। एक बार शंकरजी सतीजो के साथ जल क्रीड़ा कर रहे थे। क्रीड़ा के समय उनका वस्त्र हरण कर लिया, तब दासियों ने उन्हें तुरन्त उसी वस्त्र को निचोड़ कर उन्हें पहिना दिया। उनके निचोड़े हुए वस्त्र के रंग की गंगा प्रकट हुईं। वे ही कपिल गंगा के नाम से ख्यात हुईं।

कपिला का एक दूसरा नाम विशल्या भी है। कपिला का विशल्या नाम कैसे पडा इस सम्बन्ध की भी रेवाखण्ड में एक कथा है—ब्रह्माजी के पुत्र अग्निदेव हुए। उनका विवाह दक्ष की पुत्री स्वाहा के साथ हुआ। स्वाहा से

अग्निदेव के तीन पुत्र हुये—(१) आहवनीय, (२) दक्षिणाग्नि और (३) गार्हपत्याग्नि। समस्त द्विजातियों ने इन तीनों अग्नियों को ग्रहण किया। गार्हपत्याग्नि के दो पुत्र हुए। एक का नाम शंकुनाश और दूसरे का शधाक हुआ। शधाक ने नर्मदा जी के तीर पर दस सहस्त्र वर्षों तक घोर तप किया। उसके तप से प्रसन्न होकर भगवान् भूतनाथ श्री शंकर जो उसके सम्मुख प्रकट हुए और वरदान माँगने को कहा—

तब शधाक ने हाथ जोड़कर विनीत भाव से कहा—प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो गङ्गादि सोलह सखियों सहित नर्मदाजी मेरी पत्नी बने और उनके सन्तानें हों।"

शिवजी ने तथास्तु कहा और कह दिया इनके गर्भ से जो सन्तानें होंगी, वे सब-की-सब अग्नि कहलायेंगी। और उन सब नदियों के पुत्र धीष्णा कहलायेंगे। उन सोलह नदियों से जो पुत्र हुए वे सब धीष्ण कहलाये। नर्मदा जी का पुत्र उन सब पुत्रों से परम पराक्रमी तथा बलवान् था अतः उसका नाम धीष्णेन्द्र हुआ। उसी ने देवताओं को साथ लेकर मयसार दैत्य तथा तारकासुर का वध किया। असुरों से युद्ध करने के कारण उसके सम्पूर्ण शरीर में शल्य-घाव हो गये थे। इन्द्रादि देवों ने उसकी रणचातुरी की प्रशंसा की, विधिवत् उसकी पूजा स्तुति की। देवताओं द्वारा सत्कृत होकर धीष्णेन्द्र अपनी माता नर्मदा जी के दर्शनों के निमित्त आया। माता ने देखा मेरे पुत्र के शरीर में स्थान-स्थान पर शल्य-घाव हो रहे हैं और वह युद्ध व्यथा के कारण व्यथित हो रहा है तो माँ नर्मदा ने पुत्र के सहित कपिला गंगा में स्नान किया। कपिला में स्नान करते ही उसकी युद्ध व्यथा मिट गयी तथा उसका शरीर शल्य रहित हो गया। इसीलिये कपिला का नाम विशल्या विख्यात हुआ।

१२३—इस स्थान में **कपिल पिप्पला संगम** है। यहाँ करोड़ों देवताओं ने तथा ऋषियों ने तपस्या की है, ऋषि मुनि तथा देवताओं के स्थान ही तीर्थ बन जाते हैं। इसीलिए इस स्थान को कोटितीर्थ भी कहते हैं। कपिला संगम कोटितीर्थ का बहुत बड़ा माहात्म्य है, यहाँ स्नान करने से पातक, उपपातक तथा महापातक भी नष्ट हो जाते हैं। इस सम्बन्ध की एक कथा है।

आदि कल्प में अयोध्या के सूर्यवंशी एक धुन्धुमार नामक बड़े प्रतापी सम्राट् थे। उनके अनेक पुत्र थे, वे भी बड़े शूरवीर, वैभवसम्पन्न तथा युद्ध विद्या में पारंगत थे। एक समय महाराज धुन्धुमार मृगया करते-करते नर्मदा किनारे यहाँ नर्मदा कपिला संगम के समीप कोटितीर्थ में पहुँचे। वहां अनेक ऋषि मुनि तपस्या में संलग्न थे। महाराज ने एक श्वेत वाराह को देखा, वह बड़ा बलवान् हृष्ट-पुष्ट तथा वेग से भागने वाला था। राजा ने उसके पीछे

अपना घोड़ा दौड़ाया वह राजा के हाथ न आकर भागकर कोटितीर्थ आ गया और वहां आकर मर गया। राजा ने बड़े आश्चर्य के साथ देखा कि वह सूकर मरकर गन्धर्व हो गया और दिव्य विमान पर चढ़कर गन्धर्व लोक को जाने लगा। तब राजा ने उससे पूछा—"महानुभाव !अ ापने किस कारण यह सूकर योनि पाई ? और किस कारण आप देवत्व को प्राप्त हो गये ?"

तब उसने बताया—"राजन् ! मैं पहिले अंगद नाम का गन्धर्व था। गान विद्या में, मैं अत्यन्त निपुण था। एक दिन ब्रह्माजी की सभा में मैं गाने के लिये गया। वहां मुझसे कुछ अविनय हो गयी। तभी ब्रह्माजी ने मुझे शाप दे दिया–जा तू शूकर हो जा।" इसलिये मुझे सूकर योनि में आना पड़ा। दैववशात् मैं कोटितीर्थ में आ गया और आपके कारण यहां मेरी मृत्यु हो गई। इस तीर्थ के प्रभाव से मैं शाप से विनिर्मुक्त हो गया। आपने मेरा बड़ा उपकार किया॥" यह कहकर वह राजा का अभिनन्दन करके गन्धर्व लोक को चला गया।

महाराज धुन्धुमार ने देखा, जिस घोड़े पर वे चढ़े हुए थे, वह भी कोटितीर्थ में स्नान करते ही मृत्यु को प्राप्त हो गया। और देखते देखते वह दिव्य तेजस्वी ब्राह्मण बन गया।

महाराज ने पूछा—"आपको किस कारण घोड़े की योनि प्राप्त हुई ?"

उसने कहा—राजन ! पूर्वजन्म में मैं गालव नाम का ब्रह्मर्षि था। कुरुक्षेत्र में रहकर तपस्या किया करता था। उसी समय द्रुमसेन नाम के एक राजा कुरुक्षेत्र में आये। वे अश्वदान करना चाहते थे। वहां के ब्राह्मणों ने कहा अश्व दान लेना महान् प्रतिग्रह है, इससे किसी ने भी अश्व का दान लेना स्वीकार नहीं किया। घोड़ा बड़ा सुन्दर था। उसे देखकर मुझे लालच आ गया। लोभवश मैंने राजा से शास्त्रीय विधि से अश्व का दान ग्रहण कर लिया। इसी कारण मुझे अश्वयोनि में जन्म लेना पड़ा। आपकी कृपा से मुझे यहां आकर कपिला संगम में स्नान का सुयोग प्राप्त हो गया। इससे मेरे समस्त पाप नष्ट हो गये अब मैं ब्रह्मलोक का अधिकारी हो गया।" यह कहकर वह ब्राह्मण देखते-देखते ही दिव्य विमान पर चढ़कर ब्रह्मलोक को चला गया।

महाराज धुन्धुमार ने सोचा—यह अश्व ब्राह्मण था। मैंने इसे कितना क्लेश दिया। अनजान में ही ऐसा हुआ फिर भी पाप तो मुझे लगा ही। मैं अग्नि में जलकर इस पाप का प्रायश्चित करूँगा।" यह सोचकर राजा ज्योंही अग्नि में जलने को उद्यत हुए त्योंही कपिला देवी ने प्रत्यक्ष प्रकट होकर राजा को ऐसा करने से रोका।

राजा समीप ही एक लाख ब्रह्मचारियों के साथ ब्रह्मचिन्तन करते हुए मार्कण्डेय मुनि के समीप गये और अपना सब वृत्तान्त कहा––महामुनि ने अपने लक्ष शिष्यों सहित राजा को कपिला संगम का स्नान कराया। इससे राजा का अन्तःकरण शुद्ध हो गया। महाराज सर्वथा क्षीणपाप बन गये। इस प्रकार कपिला संगम और कोटितीर्थ का माहात्म्य कहा।

नर्मदाजी का उद्गम स्थान अतिरम्य तीर्थ

अमरकण्टक

१२३—कपिल धारा से चार मील पर **अमरकंटक** कोटितीर्थ है। यहीं से नर्मदा जी निकली हैं। परिक्रमा वाले प्रायः अमरकंटक से परिक्रमा उठाते हैं। वैसे तो परिक्रमा कहीं से भी उठाओ, वहीं आकर समाप्त करनी पड़ती है।

श्री नर्मदा जी मध्यप्रदेश के शहडोल जिले के अमरकण्टक ग्राम के एक कुंड से निकली है। यह कुंड मैकल पर्वत पर है, इसलिए नर्मदा जी को मैकलसुता भी कहते हैं। मैकल-पर्वत विन्ध्याचल और सतपुड़ा की श्रेणियों के बीच में है इस पर्वत पर प्राचीनकाल में मैकल, व्यास, भृगु, कपिल आदि ऋषियों ने तपस्या की थी। भगवान् शंकर का भी यह तपस्यास्थान था। अमरकंटक ग्राम समुद्र की सतह से ३५०० फुट ऊँचा है। श्री नर्मदा जी का उद्गमस्थान होने के कारण अमरकंटक हिंदुओं का एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है।

अमरकंटक जाने के लिए मध्य रेलवे की कटनी-बिलासपुर शाखा के पेंडरा-रोड नामक स्टेशन पर उतरना पड़ता है। इस स्टेशन के पास गौरेला नामक एक ग्राम है। ग्राम में कई धर्मशालायें हैं; पाठशाला, डाकघर और तारघर भी है। इस ग्राम से एक मार्ग कबीर चौतरा होकर जाता है।

दूसरा मार्ग आमानाला होता हुआ अमरकंटक गया है। इस मार्गद्वारा अमरकंटक केवल १६ मील पड़ता है, अमरकंटक जानेवाले यात्री इसी मार्ग से जाते हैं। आमानाला से अमरकंटक तक मोटरें जाती हैं। गौरेला ग्राम से ६ मील पर पकरिया नाम का एक छोटा सा ग्राम है। यहाँ से ही पहाड़ की चढ़ाई आरम्भ होती है। पकरिया ग्राम में धर्मशाला और तालाब है! यहाँ से आमा-नाला तक पहाड़ी रास्ता बहुत टेढ़ा-मेढ़ा है। एक ओर बिशाल पहाड़ ऊँचा मस्तक उठाये खड़ा है तो दूसरी ओर सैकड़ों फुट नीचे सघन जंगल है। आमा-नाला पहुँचने पर वृक्षों की सघन छाया और नाले का स्वच्छ और ठण्डा जल पीकर यात्री कुछ समय तक विश्राम करते हैं। यहाँ का प्राकृतिक दृश्य बहुत ही सुन्दर है। यहाँ पर कोई बस्ती नहीं है। कहीं कहीं एक दो साधु कुटी बना कर निवास करते हैं।

अमरकंटक पहुँचने के और भी दो तीन मार्ग हैं। कुछ लोग सहडोल-स्टेशन मोटर द्वारा अमरकंटक जाते हैं। कटनी-बिलासपुर-शाखा पर सहडोल जिले का एक स्टेशन है। यहां से [अमरकंटक २५ मील है। श्री नर्मदाजी के किनारे मंडला एक प्रसिद्ध शहर है। यह मध्य रेलवे का एक स्टेशन भी है। मण्डला से

देवगाँव और डिंडोरी होते हुए एक पक्की सड़क अमरकंटक तक गई है। कुछ लोग इस सड़क से भी अमरकंटक को जाते हैं। कुछ लोग बस द्वारा जबलपुर से सीधे अमरकण्टक को जाते हैं। यहां से एक सड़क शाहापुर और डिंडोरी होते हुए अमरकण्टक तक गई है।

बीच में अमरनाला या आमानाला है। अमरकण्टक प्रथम एक छोटी-सी बस्ती रहा- अब तो एक अच्छा सर्वसाधन सम्पन्न नगर बन गया है। आधुनिक सभी सुख-सुविधाएँ वहां प्राप्त हैं। बीसों आश्रम बन गये हैं। अच्छी-अच्छी धर्मशालाएँ, विश्रामगृह तथा विद्यालय खुल गये। बहुत अच्छा बाजार हो गया है। सहस्रों की बस्ती हो गई।

यातायात की समस्त सुविधायें हो गयीं। शीतल जलवायु होने के कारण गर्मियों में लोग आकर रहने भी लगे। राजकीय भी बहुत से विभाग खुल गये। अब अमरकण्टक छोटा-सा ग्राम नहीं रहा। वह नगर वन गया है। सुनते हैं पहिले यहाँ बांसों का बन था। अब भी आस-पास बाँसों के बन हैं। नर्मदाजी किसी बाँस के पिण्डे से निकली थीं। अब तो वहाँ एक बड़ा भारी कुण्ड बना है, जिसके ११ कोने हैं और २६० हाथ की परिधि में है। कुण्ड के चारों ओर परिधि बनी है जिसमें नर्मदाजी, अमरनाथजी, नर्मदेश्वर तथा अमरकण्टकेश्वर के मन्दिर बने हैं। इन मन्दिर के अतिरिक्त भी छोटे-बड़े बहुत से मन्दिर और भी हैं। जिनमें गौरीशङ्कर, गोरखनाथ, महादेवजी पार्वतीजी, बालासुन्दरी, घंटेश्वर, रामचन्द्रजी, गौरीशङ्कर, मुरलीमनोहर, एकादशी, रोहिणीदेवी, चतुर्भुजजी आदि के मन्दिर हैं। इस कुण्ड को ही कोटि तीर्थ भी कहते हैं। एक गोमुख है, जिसमें से जल निकलकर कुण्ड में गिरता रहता है। इसी को नर्मदाजी का उद्गम स्थान मानते हैं। पहिले तो जल बहुत गिरता रहता था। अब आलमोनियम के लिए पहाड़ को चट्टान तोड़ने से वृक्षों की कटाई से जल बहुत कम हो गया है। इसी प्रकार बृक्ष कटते रहे और पहाड़ की चट्टानें टूटती रहीं तों सम्भव है जल निकलना बन्द ही हो जाय। इसी कुण्ड में यात्री लोग स्नान करते हैं, इससे जल बहुत ही मैला हो जाता है। पहिले न तो कुण्ड था न मन्दिरों की परिधि ही थी। नागपुर के भोंसला राजा ने यह कुण्ड बनवाया था और रोवां के महाराज ने परिधि बनवा दी। इन्दौर की अहल्याबाई ने भी मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। और भी मन्दिर आदि का निर्माण कराया।

अमरकण्टक के आस-पास बहुत से तीर्थ स्थान है, यहाँ से कई नदियाँ निकलती हैं। और सब तो स्त्रीलिङ्ग नदियां हैं, केवल केवल सोंण (सोन) और [illegible]ो पुलिङ्ग नद हैं। सौंण, नर्मदा, करगंगा, गायत्री, सावित्री ये सब जो

अमरकण्टक की पंचकोशी परिक्रमा करते हैं पहिले पश्चिम दिशा में कपिलधारा जाते हैं यहाँ नर्मदाजी लगभग ८० फुट नीचे पहाड़ से गिरती है। चारों ओर परम नयनाभिराम दृश्य है। हरे-भरे वृक्षों से घिरा होने से अत्यन्त ही सुन्दर प्रतीत होता है। नीचे लोग नर्मदाजी के आर-पार चले जाते हैं, जल अधिक नहीं है।

अमरकण्टक से उत्तर की ओर बराती नाला है। घने जंगलों में होकर यह दर्शनीय स्थान है उत्तर दिशा में ही **ज्वालेश्वर तीर्थ** है। प्राचीन काल में यहाँ बहुत से देवता आकर तपस्या करते थे। उन्हें बलि तथा बाणासुर आदि असुर-गण कष्ट दिया करते थे। उनकी तपस्या में विघ्न डालते थे। इस पर सब देवताओं ने मिलकर असुरों से युद्ध किया इस युद्ध में देवताओं की पराजय हुई। असुरगण जीत गये। अपनी पराजय से दुखित हुए देव ब्रह्माजी की शरण में गये। ब्रह्माजी सभी देवताओं को लेकर शङ्करजी के समीप गये और अपनी पराजय का वृतान्त सुनाया। शिवजी ने पहिले तो नारदजी द्वारा बाणासुर को ज्ञान का उपदेश कराया। किन्तु शिवजी के उपदेश की उपेक्षा की। इस पर शिवजी ने विश्वरूप धारण करके बाणासुर के तीनों पुरों को भस्म कर दिया। इस पर बाणासुर दीन होकर शिवजी की शरण आया। तब शिवजी ने अग्नि से उसकी रक्षा की और उसे अभय प्रदान किया। बाणासुर के जो तीन पुर जले थे, उनमें से एक पुर जलता हुआ यहाँ आकर गिरा था। उसी से ज्वाला नदी उत्पन्न हो गयी। इसीलिये यहाँ के शिवजी ज्वालेश्वर कहलाये। यहाँ पर ज्वाला नदी नर्मदाजी में मिलती हैं। ज्वाला सङ्गम क्षेत्र में भगवान् गौरीशङ्कर सदा सर्वदा विराजमान रहते हैं। यह परम पुण्यप्रद तीर्थ है, यहाँ गायत्री मन्त्र के जप का बहुत माहात्म्य है। यहाँ से पांच मील लौटकर मार्ग में अक्षयवटों का दर्शन करते हुए माई के बगीचे आते हैं।

अमरकंकट में कुछ प्राचीन मन्दिर ऐसे हैं जिनकी मूर्तियाँ प्राचीन हैं जिनका दर्शन यात्री लोग आज-कल प्रायः नहीं करते इस प्रकार के मन्दिरों में एक पुराना मन्दिर है जो त्रिपुरी के कलचुरी घराने के सुप्रसिद्ध राजा कर्णदेव-द्वारा बारहवीं शताब्दी में बनवाया गया था दूसरा मन्दिर केशव नारायण जी का है। उसे नागपुर के भोंसला-राजा ने अठारहवीं शताब्दी में बनवाया था। इस मन्दिर के पास मत्स्येन्द्रनाथ का पुराना मन्दिर है।

अमरकंटक में प्रतिवर्ष महा शिवरात्री के समय मेला लगता है। अमर-कंटक का जंगल जड़ी बूटियों का भण्डार और कई प्रकार के फलफूलों का उत्पत्ति स्थान है। अमरकण्टक के आस-पास ब्राह्मी बूटी मिलती है। आम और केले के कई बगीचा हैं। गुलाबकावली के पेड़ भी यहाँ के ही जंगल में

मिलते हैं। इसका पत्ता बाँस के पत्ते से कुछ मिलता जुलता होता है, उसका पेड़ प्रायः दलदल स्थान में उगता है गुलाबकावली के फूलों से आँखके रोगों को फायदा होता है।

१२३. **मार्कण्डेय आश्रम**—अमरकण्टक से करीब आधा मील दूरी आग्नेय दिशा में श्री मार्कण्डेय आश्रम है। यहाँ पर मार्कण्डेय ऋषि ने निवास कर तपस्या की थी। इसी आश्रम में आजकल एक बड़े वृक्ष की सघन छाया में चबूतरे पर कई देवताओं की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं, जिनमें श्री हनुमान जी की मूर्ति दर्शनीय है। यहां से अमरकण्टक की बस्ती और अमरकण्टक के पहाड़ का दृश्य बहुत सुन्दर दिखायी देता है।

१२५-**माई की बगिया**—अमरकंटक से करीब एक मील की दूरी पर पूर्व में एक बगीचा है, जिसे [नर्मदा] माई की बगिया कहते हैं। यहाँ पर आम केले आदि फलों के और गुलबकावली, कसरैया, गुलाब आदि फूलों के वृक्ष लगे हुए हैं। मार्ग जंगल का अच्छा है। सड़क है यहाँ से एक नाला निकलता है कुण्ड है इस नाले का जल पूर्व की तरफ गिरता है। बगिया का प्राकृतिक दृश्य बहुत मनोहर है। साधुओं के सुन्दर स्थान हैं।

१२५-**सोनभद्र का उद्गम स्थान**—अमरकंटक से करीब एक मील की दूरी पर आग्नेय दिशा में सोनभद्र नदी का उद्गम स्थान है—जंगल का मार्ग है। एक बड़े वृक्ष की सघन छाया में एक साधु ने अपनी कुटी बना ली। औंर भी स्थान बन गये। यहाँ एक छोटा सा कुण्ड भी है। कुण्ड से सोनभद्र की धारा पूर्व को पर्वत से नीचे गिरती है। सोनभद्र के उद्गम स्थान का दृश्य मनोहर है। वह पहाड़ जहाँ से यह नदी निकली है, आस-पास की सतह से करीब ५०० फुट ऊँचा है। वहाँ पूर्वाभिमुख खड़े होने से छत्तीस गढ़ का प्रान्त २०-२५ मील तक सुन्दर दिखाई देता है। नीचे मैदान में फूलों की बाड़ियाँ एवं लोगों के मकान उन जंगली श्रमजीवियों के हैं। जो जंगल की पैदावार से अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इनका आवागमन ग्राम में हुआ करता है। ये लोग अपनी पीठ पर बोझा लाद कर बेखटके चढ़ा-उतरा करते हैं। यहाँ की रमणीयता देखकर यात्री गण अत्यन्त प्रसन्न होते है। मनोमुग्धकारी वैभव है।

१२६-**भृगु कमंडल**—सोनभद्र के उद्गम स्थान से दक्षिण-दिशा में भृगु-कमंडल नामक स्थान है। यह श्री भृगु ऋषिका स्थान है कहते है, उनके कमंडलु से एक छोटी नदी निकली है। इस नदी का नाम करागंगा है। इसका संगम श्री नर्मदा जी में हुआ है। श्री नर्मदा जी का परिक्रमा में दक्षिण की ओर यह नदी मिलती है।

अमरकंटक से कपिल धारा तक आनेका मार्ग है। कपिल धारा के पास श्री नर्मदा जी की चौड़ाई १२-१३ हाथ की हो गई है। इसका दृश्य कुतूहलवर्धक, नेत्रानंददायक एवं आश्चर्यान्वित करने वाला है। इस स्थान पर पहुचते ही मन सुध-बुध खो बैठता है और बरबस भजन की ओर लग जाता है। तपस्या द्वारा तनको कसने, ईश्वर की भक्ति करने तथा संसार की असारता पर हँसने का यह एक निराला स्थान है। यहाँ के हरे-हरे ऊँचे-ऊँचे वृक्ष एवं बड़े-बड़े पहाड़ खड़े-खड़े संसार की असारता का ध्यान दिला रहे हैं। इसके पास नील गंगा का संगम, दैत्य सूदन और चक्रतीर्थ हैं। कपिलधारा के समीप १२७—दूधधारा है। वस्तुतः ये सभी तीर्थ १२२ से १२७ पर्यन्त अमरकण्ट के अन्तर्गत ही है।

: नर्मदा की उत्पत्ति कथा

नर्मदाजी की उत्पत्ति की भिन्न-भिन्न पुराणों में भिन्न-भिन्न कथायें हैं। कहीं तो बताया है, सृष्टि के आदि में शङ्करजी के ताण्डव नृत्य के समय शिवजी के स्वेद से नर्मदाजी उत्पन्न हुई। वे ब्रह्मलोक में रहने लगीं। तब तक पृथ्वी पर कोई नदी नहीं थी। देवताओं ने शिवजी से नर्मदा को पृथ्वी पर भेजने की प्रार्थना की। तब शिवजी ने कहा—नर्मदा के वेग को कौन धारण करेगा? इस पर विन्ध्य पर्वत के पुत्र मेकल ने उनके वेग को धारण करना स्वीकार किया। इसी से ये मेकलसुता भी कहलाती है। विन्ध्यपुत्र मेकल के त्रिकूटाचल, ऋक्ष्यपर्वत ये नाम भी हैं। नर्मदाजी का माहात्म्य तो प्रायः सभी पुराणों में आता है, किन्तु स्कन्दपुराण और वायुपुराण में तो रेवा खण्ड ही हैं। वायुपुराण की कथा है। शंकरजी और वायुदेव का सम्वाद है, उसे ही मार्कंण्डेय मुनि ने युधिष्ठिर को सुनाया है।

वनवास के काल में पांडव अमरकंटक में आये। वहाँ उन्हें मार्कंण्डेय महामुनि के दर्शन हुए। धर्मराज युधिष्ठिर ने उनसे भगवती नर्मदाजी की उत्पत्ति की कथा पूछी। इस पर महामुनि मार्कण्डेयजी ने धर्मराज को नर्मदाजी की उत्पत्ति इस प्रकार बताई।

आदि सत्ययुग में शिवजी समस्त प्राणियों से अदृश्य होकर दश सहस्र वर्षों तक ऋष्यपर्वत-विन्ध्याचल-पर तपस्या करते रहे। उसी समय शंकरजी के श्वेत रंग का स्वेद निकलने लगा। वह स्वेद पर्वत पर बहने लगा। उसी से एक परम सुन्दरी कन्या उत्पन्न हो गई। वह कन्या सुन्दरी होने के साथ परम साधन सम्पन्ना और तपस्विनी थी। उसने उसी पर्वत पर शंकरजी के सम्मुख ही एक पैर पर खड़े होकर घोर तप किया। उसके तप से प्रसन्न होकर

शंकरजी ने कहा—"बेटी ! तू जैसा चाहें, जितने चाहे वर माँग ले !"

तब नर्मदाजी ने कहा—प्रभो ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे इतने वर दीजिये।

१—पृथ्वी पर मैं अमर हो जाऊँ।

२—जो जीव मेरे में स्नान करें वे पापों से रहित हो जावें।

३—जैसे उत्तर में भागीरथी गङ्गा हैं वैसे ही दक्षिण में मैं हो जाऊँ।

४—समस्त तीर्थों के स्नान का फल मेरे जल में स्नान करने से हो जाया करे।

५—मेरे दर्शनादि से मुक्ति प्राप्त हो जाय।

६—आप सदा सर्वदा पार्वती सहित मेरे जल में निवास किया करें।

७—मेरे जल से जिस पाषाण का स्पर्श हो जाय, वह आपका रूप हो जाया करे—नर्मदेश्वर शिव।

जब नर्मदाजी ने इस प्रकार के वर माँगे, तब शिवजी ने तथास्तु कहकर ये सब वर दिये। इतना ही नहीं शंकरजी ने यह भी कहा—"तेरे उत्तर तट पर बसने वाले सुकृति मेरे लोक में और दक्षिण तट पर रहने वाले पितृलोक में जाया करेंगे। तुम विन्ध्यपर्वत पर जाकर निवास करो वहाँ जगत् का कल्याण किया करना।" तब नर्मदाजी गुप्त भाव से आकर विन्ध्यपर्वत पर प्रकट हुई जो कलिङ्ग देश में है। (पहिले अमरकंटक तक आन्ध्र प्रदेश की सीमा थी) नर्मदाजी के त्रिभुवन सुन्दर स्वरूप को देखकर सभी देवता उनसे विवाह करना चाहते थे, किन्तु कोई भी उनकी महिमा का पार न पा सका तब शिवजी ने उन्हें समुद्र को सौंप दिया। समस्त नदियों में नर्मदाजी की ही ऐसी महिमा है, जो इनके साथ इनके पिता का भी सर्वदा नाम लिया जाता है। सब लोग यही कहते हैं—"नर्मदे हर ! नर्मदे हर !!" नर्मदाजी के किनारे पहिले तो बहुत से त्यागी तपस्वी महात्मा रहते थे। अब भी कहीं-कहीं अच्छे साधु सन्त साधक मिल जाते हैं, अमरकंटक में बहुत से सन्तों के आश्रम हैं। बहुत से अमरकंटक से कुछ दूर भी रहते हैं।

दैनिक आरती पूजा प्रकरण

प्रदक्षिणा करने वाले साधक प्रतिदिन प्रातः स्मरणादि दैनिक कृत्य विधिवत् करते हैं वे नर्मदाजी को ही अपना इष्ट मानते हैं। उपयोगी ध्यान-पूजा आरती गायत्री स्तोत्रादि का यहाँ संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है। विशेष स्तुतियाँ तो 'नर्मदा कल्पवल्ली' जो सबके लिए सर्वथा ग्राह्य है जिसको प्रत्येक परि-क्रमावासी ग्रहण करते हैं, वहीं देखें।

प्रातः स्मरण-स्नानीय मंत्र

ॐ नमः पुण्यजले देवि नमः सागर-गामिनि ।
नमोऽस्तु पापनिर्मोचे नमो देवि वराङ्गने ॥ १ ॥
प्रातरुत्थाय यो नित्यं नर्मदाभाव-संयुतः ।
मन्त्रमेनं पठेत्तात संस्नान फलमश्नुते ॥ २ ॥
नमोऽस्तु ते ऋषिगण सिद्ध सेविते, विशेषत-स्त्रिपुर-हराद्विनिःसृते ।
नमोऽस्तु ते सुकृत भृतां सदा वरे, नमोऽस्तु ते सकल पवित्र पावनि ॥
त्वं नर्मदे पुण्यजला तवाम्भः शंकरोद्भवम् ।
स्नानं प्रकुर्वतो मेऽद्य पापं नाशय सर्वतः ॥४॥
इदं ब्रह्मा हरिरिदं, इदं देवो महेश्वरः ।
इदं ब्रह्मा निराकारं कैवल्यं नर्मदा जलम् ॥५॥
भगवति तवतीरे नीरमात्राशनोऽहं
विगत विषय तृष्णः शम्भुमाराधयामि ।
सकल-कलुषभंगे स्वर्ग-सोपान-संगे
तरलतर -- तरंगे नर्मदे संप्रसीद ॥६॥

ध्यान मन्त्र

आदौ ब्रह्माण्डखण्डे त्रिभुवन विवरे कल्पदा सा कुमारी
मध्याह्ने शुद्धरेवा वहति सुरनदी वेद कण्ठोग्रकण्ठेः ।
श्रीकण्ठे कन्यरूपा ललित शिव जटाशंकरी ब्रह्मशान्तिः
सा देवी वेदगंगा ऋषिकुलतरणी नर्मदा मां पुनातु ॥
ॐ नर्मदायै नमः प्रातर्न्नर्मदायै नमो निशि ।
नमस्ते नर्मदे देवि त्राहि मां भवसागरात् ॥२॥

मन्त्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः— नर्मदायै नमः

गायत्री—ॐ रुद्रदेहायै विद्महे मेकलकन्यकायै धीमहि । तन्नो रेवा प्रचोदयात् ॥

नर्मदा स्तोत्र प्रारम्भः

श्रीमार्कण्डेय उवाच । एतच्छ्रुत्वा वचो राजन् संहृष्टा ऋषयोऽभवन् ।
नर्मदा स्तोतुमारब्धाः कृताञ्जलि पुटा द्विजाः ॥१॥
नमोऽस्तु ते पुण्यजले नमो मकरगामिनि ।
नमस्ते पाप मोचिन्यै नमो देवि वरानने ॥२॥
नमोऽस्तु ते पुण्य जलाशये शुभे विशुद्धसत्वे सुरसिद्धसेविते ।
नमोऽस्तु ते तीर्थ गणैर्निषेविते नमोऽस्तु रुद्रांग समुद्भवे वरे ॥३॥

नमोऽस्तु ते देवि समुद्रगामिनी, नमोऽस्तु ते देविवर प्रदे शिवे।
नमोऽस्तु लोकद्वय सौख्यदायिनि ह्यनेक भूतौघ समाश्रितेऽनघे ॥
सरिद्वरे पापहरे विचित्रिते गन्धर्व यक्षोरग—सेवितांगे।
सनातनी प्राणिगणानुकम्पिनि मोक्षप्रदे देवि विधेहि शं नः ॥५॥
महा गजौघैर्महिषैर्वराहैः संसेविते देवि महोर्मिमाले।
नताः स्म सर्वे वरदे सुखप्रदे विमोचयास्मान् पशु पाश वन्धात् ॥
पापैरनेकैरशुभैर्विबद्धा भ्रमन्ति तावन्नकरकेषु मर्त्याः।
महानिलोद्भूततरंग भूतं यावत्तवाम्भो हि न संस्पृशन्ति ॥७॥
अनेक–दुखौघ– भयार्तितानां पापैरनेकैरभि वेष्टितानाम्।
गतिस्त्वमम्भोजसमान—वक्त्रे द्वन्द्वैरनेकैरपि संवृतानाम् ॥८॥
नद्यश्च पूता विमला भवन्ति त्वां देविसम्प्राप्य न संशयोऽत्र।
दुःखातुराणामभयं ददासि शिष्टैरनेकैरभि पूजितासि ॥९॥
स्पृष्टं करैश्चन्द्रमसोरवेश्च तदैव दद्यात्परमं पदं तु।
यत्रोपलाः पुण्यजलाप्लुतास्ते शिवत्वमायान्ति किमत्र चित्रम् ॥१०॥
भ्रमन्ति तावन्नरकेषु मर्त्या दुःखातुराः पापपरीत -- देहाः।
महानिलोद्भूततरंग भंगं यावत्तवाम्भो नहि संश्रयन्ति ॥११॥
म्लेच्छाः पुलिन्दास्त्वथ यातुधानाः पिवन्ति येऽम्भः स्तव देवि पुण्यम्।
मुक्ता भवन्तीह भयात्तु घोरा निःसंशयं तेऽपि किमत्र चित्रम् ॥१२॥
सरांसि नद्यः क्षयमभ्युपेता घोरं युगेऽस्मिन् हि कलौ प्रदूषिते।
त्वं भ्राजसे देवि जलौघपूर्णा दिवीव नक्षत्रपथे च गंगा ॥१३॥
तव प्रसादाद्वरदे वरिष्ठे कालं यथेमं परिपालयित्वा।
यामोऽथरुद्रं तव सुप्रसादाद् वयं तथा त्वं कुरु बै प्रसादम् ॥१४॥
गतिस्त्वमम्बेव पितेव पुत्रास्त्वं पाहि नो यावदिमं युगांतम्।
काले त्वनावृष्टि हतं सुघोरं यावत्तरामस्तव सुप्रसादात् ॥१५॥
पठन्ति ये स्तोत्रमिदं द्विजेन्द्राः श्रृण्वन्ति ये चापि नरा प्रशान्ताः।
ते यान्ति रुद्रं वृषसंयुतेन यानेन दिव्याम्बरभूषिताश्च ॥१६॥
ये स्तोत्रमेतत्सततं पठन्ति स्नात्वा तु तोये खलु नर्मदायाः।
अन्ते हि तेषां सरिदुत्तमेयं गतिं विशुद्धामचिराद् ददाति ॥१७॥
प्रातः समुत्थाय तथा शयानो यः कीर्तयेतानुदिनं स्तवं च।
समुक्तपापः सुविशुद्धदेहः समाश्रयं याति महेश्वरस्य ॥१८॥

इति श्री स्कन्दे महापुराणे एकाशीति साहस्त्र्यां संहितायां पंचम आवन्त्यखण्डे रेवाखण्डे माहात्म्ये नर्मदास्तोत्र कथनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः।

नर्मदाष्टक (हिन्दी)

विन्दु सिन्धु में परिणत होकर बहने लगी तरंगिणि माँ !
प्रवलवेग से अरिदल के भी पातक पुंज निवारिणि माँ !
कालरूप यमदूतों का भय हरती रक्षा करती माँ !
तेरे पद पङ्कजमें रेवे ! सदा वन्दना मेरी माँ ॥१॥

तेरे जल में लीन-दीन वे मीन स्वर्ग पा जाते माँ ।
मच्छ कच्छ जलचर नभचर चकई चकवे सुख पाते माँ ॥
भार हारिणी कलिमल का सब तीर्थ शिरोमणि होती माँ ।
तेरे पदपङ्कज में रेवे ! सदा बन्दना मेरी मां ॥२॥

अति गम्भीर नीर से धोती पापराशि भूतल की माँ ।
कल-कल करती पातक हरती संकट शैल सँहरती माँ ॥
भीषण प्रलय पयोनिधि में नित मुनि को आश्रय देती माँ ।
तेरे पदपङ्कज में रेवे ! सदा वन्दना मेरी माँ ॥३॥

भय भागा मेरा तब ही जब निर्मल नीर निहारा माँ ।
शौनक मार्कण्डेय देवगण-सेवित सतत तिहारा माँ ॥
बारम्बार जन्म मरणादिक भववारिधि भय हारिणि माँ ।
तेरे पदपङ्कज में रेवे ! सदा वन्दना मेरी माँ ॥४॥

हुए अलक्षित-लक्ष-लक्ष किन्नर सुरादि से पूजित माँ ।
लक्षित लक्ष धीर पक्षीगण से तेरा तट कूजित माँ ॥
शिष्ट वशिष्ट आदि कर्दम ऋषि पिप्पलाद सुखदेनी माँ ।
तेरे पद पङ्कज में रेवें सदा वन्दना मेरी मां ॥५॥

सनकादिक मुनि नचिकेता सुत कश्यप अत्रि भ्रमर ये माँ ।
नारदादि तब चरण कमल को धारण करें हृदय में माँ ॥
रवि-शशि-सुरपति-रन्तिदेव को धर्म-कर्म-सुख देती माँ ।
तेरे पद पंकज में रेवे ! सदा वन्दना मेरी माँ ॥६॥

दृष्ट अदृष्ट अघों का तूं आयुध सी लक्ष्य भेदती माँ ।
अधमाधम भी जीव जन्तु को भोग मोक्ष दे देती माँ ॥
वितरण कर विधि हरि हर का पद निजपद अर्पित करती माँ ।
तेरे पद पंकज में रेवे ! सदा वन्दना मेरी माँ ॥७॥

सुना अमृतमय गान अहा हा ! जटाशंकरी तट पर माँ ।
कोल भील शठ नट भाटों में पण्डित के हिय पट पर माँ ॥
दुस्तर पाप ताप-संहारिणि जीवमात्र सुख कारिणि माँ ।
तेरे पद पंकज में रेवे ! सदा वन्दना मेरी माँ ॥८॥

जो यह तीनों समय नर्मदा अष्टक तेरा गाते माँ ।
पढ़ें निरन्तर प्रेम सहित वे दुर्गति कभी न पाते माँ ॥
प्रणव गीत में प्रीत करें नर नरक न कोई जाते माँ ।
दुर्लभ देह सुलभ करके नित माहेश्वर पद पाते मां ॥९।

जयतु नर्मदे ! जयतु नर्मदे ! तीर्थ जननि हे अम्बे मां ।
जयतु नर्मदे ! जयतु शर्मदे ! सुखदायिनि शिवगंगे मां ॥
जयतु नर्मदे जयतु हर्म्यदे ! हर-हर विपद हमारी मां ।
तेरे पद पंकज में रेवे ! सदा वन्दना मेरी मां ॥१०॥

नर्मदा जी की आरती

ॐ जय जगदानन्दी मैया जय आँनद कन्दी ।
ब्रह्मा हरिहर-शंकर रेवा शिव हर शंकर रुद्री पालन्ती ॐ जय०
देवी नारद शारद तुम वर दायक, अभिनव पद चण्डी मां अभिनव०
सुर नर मुनि जन सेवत सुर नर मुनि० शारद पद वन्ती ॥ ॐ जय०
देवी धूम्रक वाहन राजत वीणा वादयती, मैया वीणा वादयती ।
झुमकत-झुमकत-झुमकत झन झन झन-झन झनझन रमती राजन्ती ॥ ॐ जय०
देवी वाजत ताल मृदंगा सुरमण्डल रमती, मैया सुरमण्डल०
तुडितान् तुडितान् तुडितान् तुरडड़ तुरडड़ तुरडड़ रमती सुरवन्ती ॥ ॐजय०
देवी सकल भुवन पर आप विराजत निशदिन आनन्दी, मैया सब जुग०
गावत गंगा शंकर सेवत रेवा शंकर तुम भव मेटन्ती ॥ ॐ जय०
मैयाजी को कंचन थाल विराजत अगर कपूर वाती मैया अगर०
अमरकंठ में विराजत घाटनघाट विराजत कोटि रतन ज्योती ॥ ॐ जय०
मैया जी की आरती निशदिन जो कोई पढ़ गावे, मैया जुग जुग पढ गावे
भजत शिवानन्द स्वामी रटत हरी हर स्वामी मनवांछित पावे ॥
ॐ जय जगदानन्दी मैया जय आनँद कन्दी, ब्रह्मा हरि--
हर शंकर, रेवा शिव हर शंकर रुद्री पालन्ती ॐ जय जगदा० ॥

दक्षिणतट-अमरकंटक से डिंडोरी

१—जो लोग नर्मदा परिक्रमा अमरकंटक से उठाते हैं। उनको पहिले अमरकंटक से आगे दक्षिण तट पर **कबीर चौतरा** पड़ता है। यह स्थान अमरकंटक से ३ मील है। कहते हैं यहाँ पर कुछ दिनों तक कबीरदासजी ने रहकर आत्मचिन्तन और तपस्या की थी। स्थान बहुत रमणीक सघन वृक्षों से घिरा हुआ है, जल की विपुलता है। यहाँ तक रीवाँ जिला है, इसके आगे मण्डला जिला आ जाता है इसके समीप ही विलासपुर जिले की सीमा है। रीवाँ, मण्डला और विलासपुर जिलों की सीमायें यहाँ से पास में ही पड़ती हैं।

२—कबीर चौरा से ६ मील मण्डला जिले में **करमण्डल** स्थान है। हम अमरकंटक पंचक्रोशी में भृगुकमण्डलु स्थान का वर्णन कर चुके हैं जहाँ भृगुजी के कमण्डलु से करगङ्गा नदी निकली है। उसी करगङ्गा नदी का यहाँ नर्मदा के साथ संगम हुआ है, नर्मदाजी यहाँ से चार मील की दूरी पर हैं।

३—करगङ्गा से चार मील की दूरी **करंजिया** स्थान है, यह ग्राम डिँडौरी की पक्की सड़क पर ही है। यह मुण्डामहारण्य कहलाता है। वनवासी गौंड़ जातियाँ यहाँ के अरण्यों में रहती हैं। ईसाइयों ने यहाँ गौंड़ सेवा संघ नाम की संस्था खोल रखी है, जिसका उद्देश्य वनवासियों को ईसाई बनाना है। अच्छा ग्राम है, डाकघर है। यहाँ से भी नर्मदाजी लगभग ४ मील ही होगी।

४—करंजिया से ३ मील आगे **कण्वासंगम** है। यहाँ कण्वा नदी श्रीनर्मदाजी में आकर मिली हैं। परम पवित्र तीर्थ माना जाता है।

५—कण्वा संगम से ४ मील **तुडार संगम** नाम का तीर्थ स्थान है, यहाँ तुडार नदी आकर नर्मदाजी में मिली हैं। बोंदर ग्राम से यह लगभग चार मील है। यहाँ से भी नर्मदाजी लगभग पाँच मील की दूरी पर हैं।

६—तुडार संगम से ६ मील दूर पर **सरसुवा** नामक ग्राम है, यहीं पर सिवनी नदी और नर्मदाजी का संगम है, नर्मदाजी यहाँ ३ मील हैं। डिँडौरी की पक्की सड़क पर सिवनी नदी का पुल है।

७—सरसुवा से ६ मील **लोटी टोला** है, नर्मदाजी यहां से तीन मील हैं, यहां भी सड़क पर एक छोटा-सा पुल है।

८—लोटी टोला से आगे ५ मील **गाड़ा सराई** ग्राम है, इसके पास चिकरार नदी का संगम है, यहां से पांच मील आगे—

९—**बोंदर नामक** ग्राम है। सड़क के तट पर नर्मदाजी यहां से ४ मील हैं।

१०—बोंदर ग्राम से ६ मील की दूरी पर **कुक्कुरा मठ है** यहां पर मचरार या गोमती नदी का संगम है। यहां गोमती गंगा के किनारे बहुत प्राचीन ऋणमुक्तेश्वर नाम का शिव मन्दिर है। कहते हैं, यह आद्यशंकराचार्यजी के द्वारा बनवाया हुआ मंदिर है। इस शिवालय के सम्बन्ध में एक और भी लोक कथा प्रसिद्ध है।

इस ग्राम में एक बंजारा था। उसके पास एक बहुत ही प्यारा कुत्ता था। पहिले लोग अपनी कोई प्रिय वस्तु गहने रखकर ऋण ले लेते थे। जब तक उस वस्तु को छुड़ा न लें तब तक वे सुख से नहीं बैठते थे। अपने जीवन में न भी छुड़ा सकते तो अपने पुत्र पौत्रों से उसे छुड़ा लेने को कह जाते। राजस्थान में अपनी मूँछ का एक बाल गिरवी रखकर ऋण लेते थे। जब तक उस मूँछ के बाल को छुडा न लें तब तक उन्हें चैन नहीं पड़ता था। कोई यह न कह सके कि इसका या इसके बाप की मूँछ का बाल हमारे यहां गिरवी रखा है। सात पीढ़ी तक उसे छुड़ाने का प्रयत्न करते।

हां, तो उस बंजारे ने महाजन से ऋण लिया और उसके बदले अपने प्यारे कुत्ते को गिरवी रख दिया। कुत्ता महाजन के यहां रहने लगा। एक दिन महाजन के यहां चोरी हुई। चोर लोग चोरी के माल को एक गुप्त स्थान में छिपा गये। कुत्ता चोरों के पीछे-पीछे जाकर उस स्थानको देख आया। प्रातःकाल होते ही कुत्ता महाजन के कपड़े को मुँह से पकड़कर उस स्थान पर ले गया। वहां महाजन का चुराया हुआ सब धन मिल गया। इससे कृतज्ञतावश उसने कुत्ते को ऋण मुक्त करके उसके स्वामी बंजारे के पास भेज दिया और सब वृत्तान्त लिखकर चिट्ठी उसके गले में बांध दी।

बंजारे ने जब देखा कुत्ता महाजन के यहां से भाग आया है तो उसने उसको डण्डा मारा। इससे कुत्ता मर गया। पीछे जब उसके गले में बँधी चिठ्ठी पढ़ी तब उसे अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ। उसी के प्रायश्चित्त स्वरूप उसने अपने कुक्कुर के नाम से ऋणमुक्तेश्वर शिवजी की स्थापना की। लोगों का कहना है कि रात्रि के समय एक लाल आंख वाला सर्प आता है, वह शंकरजी की मूर्ति से लिपट कर चला जाता है। यह स्थान डिंडोरी से ९ मील पीछे पड़ता है।

११—कुक्कुरा मठ से आगे ४ मील **विछिया** ग्राम है इसी के पास कोतराल नदी का संगम है।

१२—विछिया से ५ मील आगे ही **डिंडोरी** मण्डला जिले की तहसील है। अमरकंटक से यहां तक नर्मदा किनारे-किनारे पक्की सड़क है। यहां नर्मदाजी

पर पक्का पुल है। इस पर से जबलपुर को पक्की सड़क जाती है। यहां आधुनिक सुविधा के सभी साधन हैं। सरकारी बगीचा है, डाकघर, थाना विश्रामघर, तहसील सभी हैं। यहां से रामपुरी ग्राम ९ मील पर है।

विशेष विवरण--डिडोरी से मधुपुरी तक १३ से २२ स्थान हैं। सूर्यकुण्ड, देवकुण्ड भी जंगल में हैं। महोगांव से नर्मदा ५ मील दूर है। बुडनेर नदी के किनारे यह ग्राम है। यहाँ से दो मील दूर पर्वत पर जमदग्नि ऋषिकी कामधेनु का स्थान है। यहाँ का दृश्य बड़ा ही मनोहर है। महोगांव से ९ मील सड़क पर ही **देवगांव** है। यहीं बुडनेर नदी का संगम है। **जमदग्नेश्वर** शिवजी का मन्दिर है। यहाँ मकर संक्रान्ति पर मेला लगता है। यहाँ नर्मदा जी पर पक्का पुल है. मंडला को पक्की सड़क उस पार गयी है। देवगांव से **रामनगर** ९ मील है। गढ़ा-मंडला की इतिहास प्रसिद्ध महारानी दुर्गावती से पांचवी पीढ़ी में हृदयशाह नाम के राजा हुए। उन्होंने ही रामनगर को अपनी राजधानी बनायी। उन्हीं का बनवाया हुआ किला जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पड़ा हुआ है पहिले इस प्रदेश में गौंड़ राजाओं का ही आधिपत्य था। यहां के एक शिलालेख में गौंड़ राजाओं की ५२ पीढ़ियों का उल्लेख है। गांव बड़ा है प्रति मंगल को बाजार भी लगता है।आरम्भ में-**मन्दाकिनी संगम-खरमेर संगम** भी घोर जंगल में है।

रामनगर से ६ मील दूर पर **सीतारपटन** स्थान है यहाँ सुरपन नदी का संगम है। यहां वाल्मीक ऋषि का आश्रम बताया जात्ता है। कहते है--यहां सीताजी ने ब्राह्मणों को भोजन कराया था। वे पत्तलें काला पहाड़ के रूप में परिणत हो गयीं। स्थान रमणीक है, कार्तिकी पूर्णिमा को प्रतिवर्ष बड़ा मेला लगता है। यहां भोजन परोसते समय सीताजी रपट पड़ी थीं। इसलिये इसका नाम सीता रपटन पड़ गया।

सीतारपटन से लगभग ५ मील दूरी पर **मधुपुरीघाट** है। इसकी कथा रामाश्वमेध में है। रामचन्द्र जी ने जब नैमिषारण्य में अश्वमेध यज्ञ किया, तब यज्ञ का घोड़ा दिग्विजय के लिये छोड़ा गया। उसकी रक्षा के लिये सेना लेकर शत्रुघ्नजी उनके पीछे-पीछे चले। शत्रुघ्नजी की सहायता के लिये हनुमान् जी भी उनके साथ भेजे गये। अश्वमेध का अश्व नाना देश, वन, पर्वतों को लांघता हुआ, यहां नर्मदा के किनारे पहुँचा। पानी पीने के लिये ज्योंही नर्मदा जी में उतरा, त्योंही अदृश्य हो गया। सेवकों ने घबराते हुए शत्रुघ्न जी से यह समाचार कहा। शत्रुघ्नजी ने चारों ओर देखा घोड़े का कोई पता न चला। ध्यान से जब उन लोगों ने देखा तो नर्मदा जी में एक बहुत बड़ा दह कुण्ड दिखायी दिया। शत्रुघ्नजी तथा हनुमान् जो उस दह में कूद पड़े। बहुत नीचे जाकर उन्होंने देखा नीचे एक अत्यन्त रमणीय उद्यान है, उसमें सुन्दर

भवन हैं। वहाँ एक योगिनी बड़े वैभव के साथ बहुत-सी सखियों सहित टहल रही हैं। शत्रुघ्न जी को देखकर उसने डाँटकर कहा—"तुम यहाँ कैसे आ गये। यह स्थान तो देवताओं के लिये भी दुर्लभ है। यदि तुम्हें अपने प्राण प्यारे हों तो तुरन्त यहाँ से चले जाओ।"

इस पर शत्रुघ्न जी ने कहा—"हम तो यहाँ श्री रामजी के कार्य के निमित्त आये हैं, राम काज के निमित्त यदि हमारे प्राण भी चले जायें तो हमें कोई चिन्ता नहीं।" उनकी ऐसी दृढ़ता देखकर तथा रामकाज समझकर योगिनी ने उनका अभिनन्दन किया। शत्रुघ्न जी को मन्त्र दिया, अभय प्रदान भी तथा घोड़े सहित उन्हें पृथ्वी पर पहुँचा दिया।

इस मधुपुरी घाट को लोग घोड़ाघाट भी कहते हैं, यहाँ बहुत से सुन्दर घाट हैं, यहाँ से योगिनी की गुफा तीन मील पर है। रमणीक स्थान है, मार्कण्डेश्वर शिवजी का मन्दिर है।

मधुपुरी से ८ मील दूरी पर **महाराजपुर** नाम का नगर है। यहाँ बंजर (बनजा) नदी का संगम है। उस पार सामने मंडला नगर है, जो प्रसिद्ध जिला है। संगम के समीप ही पुरवा नाम का छोटा ग्राम है। पहिले इस स्थान का नाम विष्णुपुरी था। अब दुम्बरेश्वर महादेव जी का मन्दिर है। बनजा गंगा पार करके महाराजपुर है, इसका नाम ब्रह्मपुरी भी है। इस क्षेत्र का नाम **सरस्वती प्रस्रवण तीर्थ** है। कहते हैं यहाँ सरस्वती जी ने तपस्या की थी। समीप ही हेमटेकड़ी नाम का स्थान है, पूर्वकाल में यहां बहुत से यज्ञ हुए हैं। उन यज्ञों में इतनी बड़ी घृत की धारायें डाली जाती थीं कि यज्ञकुण्ड से घृत-धारा बहकर नर्मदा जी में मिल जाती थी। जिस नाले से घृत बहता था, उस नाले का नाम ही घृत नाला है। यह पवित्र तीर्थ माना जाता है। यहाँ विद्यादान ग्रन्थदान, अन्नदान, ब्राह्मण भोजन का तथा गायत्री पुरश्चरण का बड़ा माहात्म्य है।

प्रकृति ने कैसे-कैसे मनोरम दृश्य उपस्थित किये हैं। वनों की स्वाभाविक शोभा अपूर्व होती है, नदियों का दृश्य उससे भी अधिक मनमोहक होता है। जहाँ वन, पर्वत, नदियाँ तथा नदियों का संगम ये चारों एक स्थान में होते हैं, वहाँ तो प्रकृति नग्न होकर नृत्य करती-सी दिखाई देती है। प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द सभी नहीं ले सकते। जिन्हें घर-द्वार, कुटुम्ब-परिवार, धन-वैभव, भूमि-भवन, पत्नी-पुत्रादि की चिन्ता लगी रहती है, वे प्राकृत दृश्यों को देखते हुए भी नहीं देख सकते। वे चिन्ता में ही अन्धे बने रहते हैं, जिन्हें किसी भी सांसारिक पदार्थ की चिन्ता न हो, भगवान् ने हृदय में वैराग्य का अंकुर उत्पन्न कर दिया हो, वे ही प्राकृत दृश्यों को देखकर बिमुग्ध बन जाते हैं। इच्छा होने

लगती है, इन दृश्यों को सदा देखते ही रहें यहीं बस जायँ, यहीं रह जायँ। नर्मदा किनारे ऐसे मन को मुग्ध करने वाले अनेकों स्थान हैं।

२३—महाराजपुर से **सहस्त्र धारा** ३ मील है। कहते हैं यहाँ महाराज सहस्त्रबाहु ने अपनी सहस्त्र भुजाओं से नर्मदाजी का प्रवाह रोक लिया था। इसमें यहाँ माताजी की कई धारायें हो गई हैं। कुछ लोगों का कहना है यहाँ सहस्त्र दैत्यों ने घोर तप किया था। वे ही दैत्य सहस्त्रबाहु की सहस्त्र भुजाओं के रूप में परिणित हो गये थे। तभी से इस क्षेत्र का नाम सहस्त्रधारा तीर्थ हो गया। इस सहस्त्रधारा तीर्थ से दो मील ऊपर महाराजपुर से एक मील नीचे गधैया नदी का संगम है। कोई एक गन्धर्व की कन्या थी। वह शापवश गदही बन गई थी। माता नर्मदाजी की कृपा से उसका उद्धार हो गया। वही नदी रूप होकर श्री नर्मदाजी में लीन हो गई। इससे इसका नाम **गधैया संगम** है। सहस्त्रधारा परम पावन तीर्थ है। जब अनेक धाराओं से नर्मदा कल-कल निनाद करके प्रवाहित होती हैं, तब यहाँ का दृश्य अत्यन्त ही अद्भुत प्रतीत होता है।

२४-२६—सहसधारा से सघन जंगलों के मार्ग से चलकर पाँच मील पर **घाघा** ग्राम है, इससे आगे चार मील और चलकर **बुधेरा घाट** है। यह सिवनी जिले की लखनादौन तहसील में पड़ता है। बुधेरा से लगभग ६-७ मील पर **झुरकी** ग्राम के समीप **पद्मीघाट** तीर्थ है। यहाँ का दृश्य भी परम मनोहर है।

२७—पद्मीतीर्थ से ३ मील आगे **मेढ़ाघाट** तीर्थ है यहाँ नर्मदाजी की तीन धारायें हो गई हैं। मध्य में मेढ़ाकुण्ड है। ऐसा कहा जाता है, पूर्व काल में तीन विभिन्न सम्प्रदायों के तीन साधु परस्पर में जैसे मेढ़ा लड़ा करते हैं, वैसे ही लड़ा करते थे। लड़ते-लड़ते वे तीनों मर गये। तभी से इस घाट का नाम **मेढ़ाघाट** पड़ा।

२८—मेढ़ाघाट से दो मील आगे **लुकेश्वर** तीर्थ है यहां नर्मदा जी अत्यन्त वेग के साथ बहती हैं। वायुपुराण के रेवा खण्ड में इस स्थान का वर्णन है, कहते हैं नर्मदाजी की प्रबल धारा के बीच में लुकेश्वर नामक शिवलिङ्ग है, यह लिङ्ग मणिमय है, अतः यहां देवता, असुर तथा नागकन्यायें आदि शिवजी का पूजन करने नित्य ही आती रहती हैं। किन्तु कोई भी मनुष्य उस लिङ्ग के दर्शन नहीं कर सकता। यहां शिवजी सदा लुके [छिपे] हुए रहते हैं। इसीलिये उनका नाम लुकेश्वर है। यहां चारों ओर सुन्दर सघन हरे-भरे वृक्ष हैं, उन वृक्षों के कारण यहां की शोभा अपूर्व हो गई है। दर्शन मात्र से चित्त प्रसन्न हो जाता है।

२९—लुकेश्वर तीर्थ से चार मील आगे मछुरिया नाले को पार करने के अनन्तर **बखारी घाट** आता है, छोटा-सा ग्राम है मार्ग जंगलों में होकर पर्वतों से आना पड़ता है। नर्मदाजी की छटा सर्वत्र ही निराली रहती है। नर्मदा पर जितने घाट और शिवालय हैं, उतने स्यात ही किसी नदी पर हों।

३०-३१—बखारी घाट से ९ मील चलकर **करैया घाट** है, इससे ३ मील और आगे **बोजासेन** नाम का ग्राम है। इसी के पास दुधारा घाट है। यहां पर भगवती नर्मदाजी की दो धारायें हो गई हैं। बीच में चबूतरा है, नर्मदाजी के तो सभी कंकर शंकर स्वरूप ही हैं। यहां शिवरात्रि पर बड़ा मेला लगता है।

३२—बीजाघाट से ४ मील आगे **बंशीघाट** है। बुधेरी घाट से लेकर यहां वंशीघाट तक माताजी मंडला और सिवनी जिलों की सीमाओं पर बहती हैं। यहां भगोड़ा नदी श्री नर्मदाजी में मिली हैं।

३३—वंशीघाट से **घुघरी खरहरघाट** ७ मील है। यहां से पहिले ही सिवनी जिला समाप्त हो जाता है। यह स्थान जबलपुर जिले में है। यहां से जबलपुर जिला आरम्भ हो जाता है।

३४—घुघरी घाट से चार मील आगे चलकर **टेमर संगम** तीर्थ है। यहां टेमर नदी श्री रेवाजी में आकर मिली हैं। इसके पास ही रेल का **बरगी** नाम का स्टेशन है। यहां नर्मदाजी पर विशाल बांध पूरा होने जा रहा है।

३५—घुघरी घाट से चार मील आगे **खिरहनी घाट** है। यहां पूर्वी रेलवे का नर्मदाजी पर पुल है। स्थान बड़ा रमणीक है उस पार गौर नदी का संगम है। घुघरी से ही जबलपुर जिला लग जाता है और इस पार विक्रमपुर तक जबलपुर जिला ही है, आगे **नरसिंहपुर** जिला आ जाता है।

३६—खिरनी घाट से ६ मील आगे **ग्वारी घाट** है यहीं से नागपुर वाली पक्की सड़क जाती है। तिलवारा घाट से मोटर द्वारा नागपुर जाते हैं। पक्का पुल यहीं है।

३७—ग्वारी घाट से ४ मील आगे धनसोर घाट है। धनसोर घाट से दो मील आगे **त्रिशूल घाट** है। इसके सामने शिवनी ग्राम के समीप **मृगवन तीर्थ** है। यहां भगवान् विष्णु चतुर्भुज रूप में सदैव स्थित रहते हैं। यहां तपस्यादि समस्त शुभ कर्मों का फल सहस्रगुणा होता है। यहीं पर **वराह तीर्थ** है। द्वितीय कल्प में जब हिरण्याक्ष पृथ्वी को तथा वेदों को लेकर पाताल में चला गया था, तब भगवान् ने वराह रूप धारण करके पृथ्वी का उद्धार किया था

और वेदों को लेकर यहीं प्रकट हुए थे। मृगवन तीर्थ इसका नाम क्यों पड़ा इसकी रेवाखण्ड में इस प्रकार कथा है। एक समय कोई व्याध मृगों को मारता हुआ इस वन में आया। रात्रि हो गई तो एक वृक्ष के नीचे सो गया तभी वन में दावाग्नि लगी जिससे वृक्षों के साथ वह व्याधा भी जल गया। कुछ काल के पश्चात् कन्या संक्रान्ति के समय वर्षा होने से उस व्याधा की जली हुई राख नर्मदाजी में मिल गई। इससे वह दिव्य शरीर धारण करके बैकुण्ठ-वासी बन गया तथा अन्यान्य जले जीव गन्धर्वलोक को चले गये। यहां देव कर्म तथा पितृ कर्म करने का बहुत माहात्म्य है। यह घाट भगवान् शंकर के त्रिशूल प्रहार से स्थापित हुआ है, अतः दोनों तटों का नाम त्रिशूल घाट है। यहां भगवती नर्मदा की धारा पर्वत को विदीर्ण करके त्रिशूल के समान बही हैं। इसीलिये इसे **त्रिशूल भेद तीर्थ** भी कहते हैं।

३८—त्रिशूल घाट के समीप ही लगभग एक मील पर लमेटी घाट है। दोनों तट के घाटों का नाम **लमेटी घाट** ही है। यहां इन्द्र ने तपस्या की थी। ऐरावत के पैरों के चिन्ह पत्थरों पर अवस्थित हैं। इन्द्रेश्वर तथा पिप्पलेश्वर शिवजी के मन्दिर हैं। स्थान दर्शनीय है।

३९—लमेटी घाट से ३-४ मील पर **भेड़ा घाट** है। इस पार उस पार दोनों का नाम ही भेड़ाघाट है। दोनों ओर का दृश्य अवर्णनीय है। लगभग दो मील तक नर्मदाजी संगमरमर के पर्वतों को तोड़कर बही हैं। यहीं धुँआधार प्रपात है। यहाँ नर्मदा जी लगभग ४० फुट से नीचे गिरती हैं, उनके कण धुँए के समान बड़े ही सुन्दर प्रतीत होते हैं।

४०—भेड़ा घाट से लगभग ५ मील पर **राम घाट** है। कहते हैं श्रीराम-चन्द्रजी ने नर्मदा यात्रा करते समय यहाँ कुछ दिन निवास किया था। यहां रामचन्द्रजी ने नर्मदा में एक कुण्ड स्थापित किया था जो रामकुण्ड तीर्थ के नाम से विख्यात हैं।

४१—रामघाट तीर्थ से लगभग ५ मील की दूरी पर **जलेरी घाट** है। यहाँ नर्मदाजी जले हुए पर्वत की तली को फोड़कर शिवजी के लिये जलहरी बनाती हुई निकली हैं। कहते हैं उसी जलहरी में शिवजी स्थापित हैं, किन्तु वे इतने गहरे में लुके (छिपे) हुए हैं कि उनके दर्शन नहीं होते इसीलिए उनका नाम **लुकेश्वर** है।

४२—रामघाट तीर्थ से लगभग ५ मील पर **विक्रमपुर** नाम का ग्राम है। यहां सीनियर नदी आकर श्रीनर्मदाजी में मिलती हैं। संगमेश्वर शिवजी का स्थान है। यहां जबलपुर जिला समाप्त होकर अब नरसिंहपुर जिला लग जाता है यहाँ नर्मदाजी पर रेल का नवनिर्मित पुल है।

४३-४६—विक्रमपुर के आगे ६ मील पर **बेलखेड़ी** घाट है। यहाँ से ५ मील **झलोन घाट** है। झलोन घाट से २ मील आगे **भेंसाघाट** है। भेंसाघाट से २ मील आगे **ब्रह्मकुण्ड** (देवतीर्थ) है। यहाँ पर तपस्या करने से समस्त देवताओं को सिद्धि प्राप्त हुई थी। इस सम्बन्ध की रेवा खण्ड में इस प्रकार कथा है—प्राचीन कल्प में शुम्भ निकुम्भादि दैत्यों ने देवताओं के ऊपर चढ़ाई की, दोनों में घोर युद्ध हुआ। अन्त में दैत्यों की विजय हुई, देवता हार गये। तब सब देवतागण प्रजापति भगवान् ब्रह्माजी की शरण में गये। ब्रह्माजी ने कहा—भाई ! सब कार्य तपस्या से होते हैं। चलो, हम सब मिलकर नर्मदाजी के किनारे तपस्या करें।" ऐसा कहकर उन सबने मिलकर घोर तप किया। इससे शिवजी प्रसन्न हुए और उन्हे मनोनुकूल वर दिया। इनसे देवताओं की मनोकामना पूर्ण हुई। तभी से यह स्थान देवतीर्थ के नाम से विख्यात हुआ। यहाँ नर्मदाजी के कुण्ड में एक देवशिला है। यहाँ यज्ञ, दान, तप तथा ब्राह्मभोज का माहात्म्य है (रे० ख० ५६ अ०)

४७—ब्रह्मकुण्ड देवतीर्थ से लगभग दो मील पर **बुधघाट** है, यहाँ बुधदेव ने अपने शरीर दोष को नष्ट करने के निमित्त तपस्या की थी यहाँ घाट पर बुधेश्वर शिवजी का मन्दिर है। यहां से आगे शंकरापुरी-सांकल घाट है।

४८—बुध घाट से लगभग ९ मील पर **पिपरिया घाट** है। मार्ग में साँकल धाना, गुरबाडा और गूबरी ग्राम पड़ते हैं। यहाँ पर जबरेश्वर शिवजी का मन्दिर है। जबर कहते हैं बड़े को। यथार्थ में यहाँ के शिवजी बहुत जबर हैं। ५ फुट से भी ऊँचे हैं। नर्मदाजी के किनारे इतने ऊँचे शङ्करजी स्यात् ही कहीं हों।

४९-५१—पिपरियाघाट से लगभग ५ मील की दूरी पर **गरारूघाट हतिया घाट** है। यहां शिवजी तथा गरुड़जी के मन्दिर हैं। यहाँ से ३ मील आगे **हतिया घाट** है। यह घाट चिनकी ग्राम के समीप में है। यहाँ से ४ मील आगे **धूँआधार घाट** है, यह पिपरहा ग्राम के समीप है, यहाँ नर्मदाजी पूर्ववाहिनी है, हो गई है। यहां नर्मदाजी पर्वत को फोड़कर तीन धाराओं में कलकल करती हुई प्रवाहित हुई हैं। यहाँ की छटा निराली है। दृश्य परम मनमोहक है।

५२—धुँआधार घाट के २ मील आगे **सगुन घाट** है। यहां सेढ़ नदी श्री नर्मदाजी में आकर मिली हैं इसे पंचगंगा संगम भी कहते हैं। यहाँ संगमेश्वर शिवजी का मन्दिर है।

५३—सगुन घाट से ५ मील आगे **ब्रह्माण घाट** है। दोनों तटों के घाटों का नाम ब्रह्माण घाट है अतः इस पर दक्षिण तट के घाट को छोटा ब्रह्माण घाट कहते हैं। यहां नर्मदा जी पर पुल है। उस तट पर उस ओर का ब्रह्माण

घाट है वहाँ बहुत बड़ी बस्ती है। दोनों में आधा मील का भी अन्तर नहीं।

इस स्थान को लोग बरमान कहते हैं। नर्मदाजी के तट पर श्री राधाकृष्ण जी का मन्दिर है।

यहां से ऊपर श्री नर्मदाजी की दो धारायें हो गई हैं, बीच में छोटा-सा टापू निकल आया है। इससे कुछ दूर ऊपर सप्तधारा स्थान है। यहां नर्मदाजी कई धाराओं में विभक्त होकर पर्वत से गिरती हैं। इस कारण नीचे कई कुण्ड बन गये हैं, इन कुण्डों में तीन कुण्ड प्रधान हैं। उनके नाम १–भीमकुण्ड, २–ब्रह्मकुण्ड और ३–अर्जुनकुण्ड हैं। कहते हैं बनवास के समय पांडव यहां रहते थे। भीमकुण्ड पर भीम के पैरों के चिन्ह बने हैं। ब्रह्मकुण्ड में ब्रह्माजी ने यज्ञ किया था। सुनते हैं उस कुण्ड से यज्ञ की भस्मी अभी तक निकलती है। ये श्री नर्मदाजी के बीच में हैं। परिक्रमा वाले नर्मदाजी को पार नहीं कर सकते। अतः न तो उत्तर तट वाले और न दक्षिण तट वाले परिक्रमा के यात्री उस स्थान पर जाते हैं यात्री दूर से ही इन्हें देखते हैं। यहां इतिहास प्रसिद्ध परम धार्मिक वृत्ति वाली गोंडवंशीया महारानी दुर्गावती का बनाया हुआ मन्दिर तथा पक्का घाट है। मन्दिर जीर्ण शीर्ण दशा में पड़ा है। कोई जीर्णोद्धार कराने वाला नहीं। कितना सुन्दर और विशाल मन्दिर है। इसके समीप ही वाराह भगवान् की विशाल मूर्ति है, श्रद्धालु भक्त इस मूर्ति के नीचे से निकलते हैं। मोटे शरीर वाले नीचे से नहीं निकल पाते, नीचे सड़क है। सड़क से बायीं ओर के टोले पर पिसनहारी का विशाल मन्दिर है।

जब इस धर्म प्रधान देश में धर्म की प्रधानता थी, तब प्रत्येक व्यक्ति की यही भावना होती थी कि हमारे नाम से कोई मन्दिर, धर्मशाला पाठशाला, अन्नक्षेत्र, बावड़ी, कूआँ, तालाब, बगीचा अथवा प्याऊ आदि कोई धार्मिक स्थान बन जाय। उन दिनों कल मशीनें आदि नहीं होती थी, चक्की पीसनेवाली पिसनहारी पैसा लेकर अन्न पीस-पीसकर अपना निर्वाह करती थीं। हमारे सामने ही दो पैसे में पांच सेर अन्न पीस देती थीं। इसी ब्रह्माण ग्राम में एक रामदीन नाम के श्रीराम भक्त ब्राह्मण रहते थे। उनकी स्त्री अन्न पीसपीसकर निर्वाह करती थीं। वृद्धावस्था में उसके पति भी मर गये और सब बच्चे भी मर गये। अब वह स्वतन्त्र हो गई। उसने धर्म में अपना मन लगाया। अन्न पीस-पीसकर जो आय होती, उसमें से सूक्ष्म-से-सूक्ष्म में अपना निर्वाह करती शेष आय को बचाती जाती कुछ धन एकत्रित हो गया तब उसने इस मन्दिर को बनवाना आरम्भ किया। परिश्रम की कमाई का यह परिणाम है कि आज इस मन्दिर को बने ९१-९२ वर्ष हो गये। बड़ी-बड़ी बाढ़ें आईं, किन्तु इस मन्दिर की कुछ भी क्षति नहीं हुई। मन्दिर बहुत ही सुदृढ़ बना है।

यहां पर सदावर्त भी लगा है, नर्मदा परिक्रमा के यात्रियों को सदावर्त मिलता है।

५४-५५—ब्राह्मण घाट से ५ मील चलकर **बढ़िया घाट** मिलेगा वहां से आगे २ मील पर—**लिंगा घाट** है। यहां सुखचेन नदी श्री नर्मदाजी में मिलती हैं। संगम के समीप ही एक बहुत बड़ा कुण्ड है। सुनते हैं इसमें मगर बहुत रहते हैं। इसलिए इसका "मगरोर" नाम भी प्रसिद्ध है।

५६-६४—लिंगा घाट से ७ मील आगे **कोठिया घाट** है, जहां शंकरा गंगा का रेवा के साथ संगम है। सुनते हैं इसे आदि शंकराचार्यजी ने अपनी स्मृति के निमित उद्‌घाटित किया था। कोठिया घाट से ५ मील आगे **ककरा घाट** है। उससे २ मील आगे—**लेहरा संगम** है। लेहरा संगम से दो मील आगे—**भटेरा घाट** है। वहां से ६ मील आगे—**सोकलपुर घाट** के समीप शक्कर नदी का संगम है। संगमेश्वर शिवजी का मन्दिर है। इससे आगे—**रोरा संगम** है। रोरा संगम से ५ मील आगे—**पीपल पाणि घाट** है। यहां नर्मदाजी में बड़ा भारी कुण्ड है जिसे सोनाडहार कहते हैं इससे ४ मील आगे—**झिकोली घाट** है। इससे एक मील आगे—**जमुन घाट** है। यहां नर्मदाजी के कुण्ड में बहुत चौड़ी एक विशाल धर्म शिला है।

६५—जमुन घाट से ३ मील आगे **सिरसिरो घाट** है। यहां पर दूधी नदी का संगम है। कहते हैं, यह नदी हनुमानजी की माता अंजना के स्तनों के दूध से उत्पन्न हुई। इसकी कथा इस प्रकार है—जब श्रीरामचन्द्रजी रावण को मारकर लंका विजय करके पुष्पक विमान से अयोध्या को आ रहे थे तो मार्ग में किष्किन्धा पहाड़ मिला। हनुमानजी ने श्रीरामचन्द्रजी से निवेदन किया—"प्रभो यहां समीप में ही अंजना पर्वत है, वहां मेरी माताजी रहती हैं। आज्ञा हो तो मैं उनके दर्शन कर आऊँ ?"

रामजी ने कहा—"हनुमानजी ! बड़े स्वार्थी हो तुम अकेले ही दर्शनों को जाते हो। हमें भी माता के दर्शन करा दो।"

नम्रता के साथ हनुमानजी ने कहा—"भगवन् ! मेरी माता जी का बड़ा सौभाग्य होगा, जो भगवान् के दर्शन कर सकेंगो। मैंने तो संकोचवश नहीं कहा।"

इतने में ही पुष्पक विमान अंजना पर्वत पर उतरा। हनुमानजी ने माता को प्रणाम किया माता ने प्रेम से पुत्र को गोदी में बिठाया और उनका शिर सूँघा। तब सीताजी और लक्ष्मणजी के सहित श्रीरामचन्द्रजी ने माता को प्रणाम किया। **तब अंजनादेवी ने पूछा—"बेटा ! ये कौन हैं ? हनुमानजी ने कथ**

सुनाई। ये महाराजा दशरथ के सबसे बड़े पुत्र हैं, सीता माता इनकी धर्मपत्नी है, लक्ष्मण इनके छोटे भाई हैं। पिता की आज्ञा से ये चौदह वर्ष वन में रहे। वन में इनकी पत्नी सीताजी को रावण हर ले गया। तब इन्होंने हमारे स्वामी सुग्रीव जी से मित्रता की। सुग्रीवजी ने देश देशान्तरों से लाखों करोड़ों वानरों को एकत्रित किया। समुद्र पर पुल बांधकर सेना सहित रामचन्द्रजी लंका को गये वहां राक्षसों से घनघोर युद्ध हुआ। रामजी रावण को मारकर लंका विजय करके अयोध्या को जा रहे हैं। बीच में आपके दर्शनों को उतर पड़े हैं।"

इतना सुनते ही अंजना देवी ने हनुमानजी को अपनी गोदी में से उठाकर दूर फेंक दिया और बड़े क्रोध में भरकर बोली—"तू मेरा बेटा कहलाने योग्य नहीं। तैंने मेरे दूध को लजाया। अरे, इस छोटी-सी बात के लिये रामचन्द्रजी को इतना कष्ट हुआ। तैंने मेरा दूध पिया है। वह रावण भिनगा के समान है, उसे मारने के लिए रामजी को कितना परिश्रम करना पड़ा। तू चाहता तो लंका सहित उस रावण को रामजी के सम्मुख प्रस्तुत कर सकता था। वह रावण वस्तु ही क्या है? तैंने मेरे दूध को बट्टा लगा दिया।"

लक्ष्मणजी यह सुनकर हँस पड़े और मन-ही-मन सोचने लगे—"इस बुढ़िया को अपने दूध का बड़ा भारी अभिमान है। इसके दूध में ऐसी क्या विशेषता है?"

अंजना माता लक्ष्मणजी के भाव को ताड गयीं और बोली—"इन छोटे राजकुमार को मेरे दूध की शक्ति पर विश्वास नहीं होता। ये मेरे दूध का प्रभाव देखें।" यह कहकर माता ने अपने दूध की धारा छोड़ी वह दूध पर्वत फोड़कर नदी के रूप में बहने लगा। उसी से यह दूधी गंगा बन गई। जिसका यहां नर्मदाजी में संगम हुआ है।

इस पर श्रीरामचन्द्रजी ने माताजी से कहा—"मां जी! आपके दूध में अत्यन्त शक्ति है। हनुमानजी ने आपका दूध पिया है; वे सब कुछ करने में समर्थ हैं। वे रावण को लंका सहित समुद्र में फेंक सकते थे। किन्तु माताजी! यदि ऐसा होता तो रामायण कैसे बनती जो भवसागर का सेतु है। रामायण बने इसी लिए हनुमानजी ने ऐसा साहस नहीं किया। मैंने ही उन्हें ऐसा करने से मना कर दिया। अब आप हनुमान जी पर रुष्ट न हों, उनसे प्रेम करें और पूर्ववत् उन्हें गोदी लें।"

श्रीरामजी की बात सुनकर अंजना माता ने हनुमानजी को क्षमा कर दिया और उन्हें पूर्ववत् गोदी में बिठाकर प्यार किया। उसी दूधी नदी का यहां सिरसिरो घाट में संगम है। समीप में ही उमरधा ग्राम है। नरसिंहपुर जिला यहां समाप्त हो जाता है। आगे हुसंगाबाद जिला आ जाता है।

६६-६७—सिरसिरी घाट से ५ मील आगे **खेरा घाट है**। यहां अय्याजी ब्रह्मचारी की वेद पाठशाला है। यहां से ५ मील आगे—सांडिया घाट है। यहां पर श्री शांडिल्येश्वर शिवजी का स्थान है। शांडिल्य ऋषि ने यहां तपस्या की थी। वसिष्ठ संहिता में इसकी कथा इस प्रकार है :—

एक बार जमदग्नि, वसिष्ठ तथा याज्ञवल्क्य आदि समस्त ऋषियों ने मिलकर बृहद् यज्ञ करना चाहा। उसमें समस्त ऋषियों को निमन्त्रित किया। प्रायः सभी ऋषि आ गये, किन्तु महर्षि कश्यपजी नहीं आये। कश्यप श्रेष्ठ ऋषि हैं, उनका आना आवश्यक था। जब वे नहीं आये तो ऋषियों ने कुशाओं की एक ग्रन्थि बनाकर उसमें कश्यप ऋषि का आवाहन करके उनका पूजन करने लगे। दैव योग से उसी समय कश्यप मुनि भी आकर यज्ञ में प्रस्तुत हो गये। कुशा ग्रंथि का पूजन करते देखकर महामुनि कश्यप ने पूछा—"ऋषियों! आप कुश ग्रंथि बनाकर किसका पूजन कर रहे हैं?"

ऋषियों ने कहा—'ब्रह्मन्! आप नहीं पधारे थे, इसलिए आपके ही निमित्त यह कुश ग्रन्थि बनाई थी और उसमें आपका ही पूजन कर रहे थे। यह बड़े सौभाग्य की बात है, अब आप स्वयं ही पधार गये। अब हम स्वयं साक्षात् आपका ही पूजन करेंगे।"

यह सुनकर महामुनि कश्यप हँसे और बोले—"आपका संकल्प व्यर्थ न जाय।" यह कहकर उन्होंने अपने कमण्डलु में से जल लेकर मन्त्र पढ़कर उस कुशा ग्रन्थि पर छोड़ा। सबके देखते-ही-देखते तत्क्षण उसमें से एक जटाजूटधारी वल्कल वस्त्र पहिने मृग चर्म ओढ़े महर्षि प्रकट हो गये। कश्यपजी ने उनका नाम शांडिल्य ऋषि रखा। महर्षि उपमन्यु भी वहाँ उपस्थित थे उनके एक पुत्री थी, उसका नाम शांडिला था उपमन्यु महर्षि ने अपनी कन्या का विवाह उन महर्षि शाण्डिल्य के साथ कर दिया। उन दोनों ने मिलकर यहाँ नर्मदा तट पर चिरकाल तक तपस्या की। उन्होंने अपने नाम के यहाँ शिवजी की स्थापना की। तभी से इस स्थान का नाम शांडिल्येश्वर तीर्थ हुआ। यहाँ जप-तप, यज्ञ-याग, ब्रह्मभोज तथा गायत्री पुरश्चरण का बड़ा माहात्म्य है। यहाँ ऋषियों ने अनेक यज्ञ किये हैं। (वसि० सं० ५५ अ०)

६८—शांडिल्येश्वर तीर्थ से आगे ५ मील पर **कुब्जा संगम** नाम का तीर्थ है। वसिष्ठ संहिता में इसकी कथा इस प्रकार है। एक बार सरस्वतीजी विमान में बैठकर ब्रह्माजी के यहाँ जा रही थीं कि वहाँ मरीचिक मुनि आ गये। वे अत्यन्त ही कुरूप थे। उनकी कुरूपता को देखकर सरस्वतीजी को हँसी आ गई। इस पर क्रुद्ध होकर ऋषि ने शाप दिया—"जा तू शूद्री हो जा।" यह

पाट से वञ्चित होकर राजा अपने राज्य की पुनः प्राप्ति हेतु मन्दराचल पर जाकर घोर तप करने लगे। दैवयोग से नारदजी वहाँ पहुँच गये। नारदजी से उसने अपना सम्पूर्ण बृत्तान्त बताया। तब नारदजी ने कहा—राजन्! राजपाट में क्या रखा है। तुम आत्मज्ञान में मन लगाओ नारदजी ने आत्मज्ञान का बहुत उपदेश दिया, किन्तु वह अनसुनी करता गया। तब तो नारदजी ने उसे शाप दे दिया—"तू बानर की भांति चंचल चित्त वाला है। जा बानर हो जा।"

इस पर राजा को बड़ा दुःख हुआ। उसने अत्यन्त दीनता के साथ नारदजी के चरण पकड़ कर अनुनय-विनय की। तब नारद जी ने कहा—"अच्छा, तू तपा नर्मदा संगम में जाकर तपस्या कर तेरी समस्त कामनायें पूर्ण हो जायँगी।"

नारदजी के उपदेश से उसने संगम पर जाकर तपस्या की। इससे शिवजी ने उसकी समस्त कामनायें पूर्ण कर दी। तभी से इस तीर्थ का नाम वानर भालू तीर्थ हो गया। इसे बांदराभान कहा जाता है। (वसि० सं० ५४ अ०)

७९—वानर भालू तीर्थ से ६ मील आगे **हुसंगाबाद** है। पहिले इस नगर का नाम नर्मदापुर था। मुसलमानी काल में इसका नाम हुसंगाबाद हुआ। यहाँ नर्मदाजी पर बहुत ही सुन्दर घाट बने हुए हैं। घाटों के समीप ही टाउन हाल तिलक भवन है। यहाँ बहुत से घाट हैं, इनमें जानकी सेठानी का घाट बहुत ही सुन्दर है। घाटों पर धर्मशाला तथा बहुत से मन्दिर बने हैं। इनमें हनुमानजी का मन्दिर, नर्मदाजी का मन्दिर, शिवजी का, शनिदेव का तथा श्री जगन्नाथ जी के मन्दिर मुख्य हैं। संन्यासियों के भी मठ थे। सत्संग भवन भी वहां है।

होशंगाबाद का प्रसिद्ध नर्मदा सत्संग-भवन

सम्मान्य नगर सेठ पं० श्रीरामलाल शर्मा एडव्होकेट ने जिसकी स्थापना तपोमूर्ति स्वामी ओङ्कारानन्द गिरि जी द्वारा कराई और जिसका सञ्चालन शर्मा परिवार आज भी श्रद्धापूर्वक करता आ रहा है। जहां प्रतिदिन स्वाध्याय-पौराणिक कथा प्रवचनादि बारह मास होते रहते हैं। नर्मदा तट पर पहला स्थान कहना होगा यह हैं जहां अनवरत सत्संग होता है। वेदान्त के प्रखर विद्वान् शंकराचार्य-महामण्डलेश्वर वीतराग परमहंस परिव्राजकाचार्य वृन्द सदैव प्रस्थान त्रय तथा पौराणिक कथाओं द्वारा जिज्ञासुजगत् का महान् उपकार करते आ रहे हैं। विशेषता-ज्ञानसत्र प्रकाशन न्यास की भी अपूर्व है इसकी, जहाँ से लाखों की संख्या में विगत पेंतीस वर्षों से 'नर्मदा कल्पवल्ली' तथा 'नर्मदा

सुनकर सरस्वतीजी बहुत घबराईं। उन्होंने हाथ जोड़कर अत्यन्त नम्रता के साथ ऋषि से क्षमा याचना की।

इस पर ऋषि ने कहा—मैंने स्वप्न में भी कभी असत्य भाषण नहीं किया। शूद्रा तो अवश्य होगी, किन्तु दो जन्मों में तुझे भगवान् के दर्शन होंगे और दूसरे जन्म भगवान् श्रीकृष्णजी से संगम होने के कारण तेरा उद्धार हो जायगा। इसी कारण श्रीराम जन्म में सरस्वतीजी कैकेयी की दासी मन्थरा हुईं। जिसके कारण श्रीरामचन्द्रजी को वन जाना पड़ा। इसके उपरान्त श्री नारदजी के उपदेश से उसने इस स्थान पर तपस्या की। तदनन्तर दूसरे जन्म में वही कुब्जा हुई और श्रीकृष्ण जी के सत्सङ्ग से उसका उद्धार हो गया। तभी से इस स्थान का नाम कुब्जा तीर्थ हुआ। यहाँ प्रत्येक अमावस्या को मेला लगता है। यहाँ तपस्या करने से कुछ रोग नष्ट हो जाते हैं। (वसि॰ सं॰ '१६ अ॰)

६९–७२—कुब्जा तीर्थ से ५ मील की दूरी पर भटगाँव से आगे **बनखेड़ी घाट** है इसके समीप ही रायन नदी आकर नर्मदाजी में मिलती है। यहाँ से २ मील आगे **रायन संगम** है। यहाँ से २ मील आगे **पामली घाट** है, यहाँ पलकमती नदी आकर नर्मदाजी में मिली हैं। यहाँ से एक मील आगे **पांडवद्वीप** है, पास ही मारू नदी का संगम है। वनवास के समय पांडवों ने यहाँ तप किया था।

७३–७५—पांडवद्वीप से ५ मील आगे **सांगाखेड़ा घाट** है, यहाँ से ५ मील आगे **धाना घाट** है। धाना घाट से ५ मील आगे वृद्धरेवाजी के मध्य में स्थित **गौ घाट** है। किसी समय नर्मदा की कृपा से एक गौ का यहाँ उद्धार हुआ था, इसीलिये इसका नाम गौघाट है। यहाँ १२ योगिनी और तीन सिद्धों का स्थान है।

७६–७७—गौघाट से ५ मील आगे **बीकोर घाट** है। यहाँ से ४ मील आगे **सूर्यकुंड** है। यहाँ सूर्य नारायणजी ने तप किया था तथा अन्धकासुर दैत्य का वध किया था। यहाँ नर्मदाजी में सूर्य कुण्ड है। यह परम पावन तीर्थ माना जाता है। विशाल कंकाल अभी उपलब्ध हुये हैं जो शोधक के विषय बने।

७८—सूर्यकुण्ड से ६ मील आगे **वानर भालू तीर्थ** है यहाँ तवा नदी आकर नर्मदाजी में मिली हैं। तवा का विशाल संगम है। यहाँ का माहात्म्य तीर्थराज प्रयाग के समान बताया है, यहाँ कार्तिकी पूर्णिमा को विशाल मेला होता है। वैसे सूर्य ग्रहण, चन्द्र ग्रहण तथा अन्यान्य पर्वों पर मेले लगते हैं। यहाँ महाराज वैश्वानर ने तपस्या की थी। वसिष्ठ संहिता में इसकी कथा है—

प्राचीन काल में वैश्वानर नाम के एक सुप्रसिद्ध राजा थे। युद्ध में वे शत्रुओं से हार गये। शत्रुओं ने उनके राज्य पर अधिकार जमा लिया। राज्य

पाट से वञ्चित होकर राजा अपने राज्य की पुनः प्राप्ति हेतु मन्दराचल पर जाकर घोर तप करने लगे। दैवयोग से नारदजी वहां पहुँच गये। नारदजी से उसने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त बताया। तब नारदजी ने कहा—राजन्! राजपाट में क्या रखा है। तुम आत्मज्ञान में मन लगाओ नारदजी ने आत्मज्ञान का बहुत उपदेश दिया, किन्तु वह अनसुनी करता गया। तब तो नारदजी ने उसे शाप दे दिया—"तू बानर की भांति चंचल चित्त वाला है। जा बानर हो जा।"

इस पर राजा को बड़ा दुःख हुआ। उसने अत्यन्त दीनता के साथ नारदजी के चरण पकड़ कर अनुनय-विनय की। तब नारद जी ने कहा—"अच्छा, तू तपा नमंदा संगम में जाकर तपस्या कर तेरी समस्त कामनायें पूर्ण हो जायँगी।"

नारदजी के उपदेश से उसने संगम पर जाकर तपस्या की। इससे शिवजी ने उसकी समस्त कामनायें पूर्ण कर दी। तभी से इस तीर्थ का नाम वानर भालू तीर्थ हो गया। इसे बांदरा भान कहा जाता है। (वसि० सं० ५४ अ०)

७९—वानर भालू तीर्थ से ६ मील आगे **हुसंगाबाद** है। पहिले इस नगर का नाम नर्मदापुर था। मुसलमानी काल में इसका नाम हुसंगाबाद हुआ। यहाँ नर्मदाजी पर बहुत ही सुन्दर घाट बने हुए हैं। घाटों के समीप ही टाउन हाल तिलक भवन है। यहाँ बहुत से घाट है, इनमें जानकी सेठानी का घाट बहुत ही सुन्दर है। घाटों पर धर्मशाला तथा बहुत से मन्दिर बने हैं। इनमें हनुमानजी का मन्दिर, नर्मदाजी का मन्दिर, शिवजी का, शनिदेव का तथा श्री जगन्नाथ जी के मन्दिर मुख्य हैं। संन्यासियों के भी मठ थे। सत्संग भवन भी वहां है।

होशंगाबाद का प्रसिद्ध नर्मदा सत्संग-भवन

सम्मान्य नगर सेठ पं० श्रीरामलाल शर्मा एडव्होकेट ने जिसकी स्थापना तपोमूर्ति स्वामी ओङ्कारानन्द गिरि जी द्वारा कराई और जिसका सञ्चालन शर्मा परिवार आज भी श्रद्धापूर्वक करता आ रहा है। जहां प्रतिदिन स्वाध्याय-पौराणिक कथा प्रवचनादि बारह मास होते रहते हैं। नर्मदा तट पर पहला स्थान कहना होगा यह हैं जहां अनवरत सत्संग होता है। वेदान्त के प्रखर विद्वान् शंकराचार्य-महामण्डलेश्वर वीतराग परमहंस परिव्राजकाचार्य वृन्द सदैव प्रस्थान त्रय तथा पौराणिक कथाओं द्वारा जिज्ञासुजगत् का महान् उपकार करते आ रहे हैं। विशेषता-ज्ञानसत्र प्रकाशन न्यास की भी अपूर्व है इसकी, जहाँ से लाखों की संख्या मे विगत पेंतीस वर्षों से 'नर्मदा कल्पवल्ली' तथा 'नर्मदा

पुराण' (रेवा खण्ड) जैसे अपूर्व ग्रन्थ तो प्रकाशित हो ही रहे हैं साथ ही वेदान्त के हिन्दी संस्कृत गद्य पद्य रूप से अनेकों ग्रन्थ भी प्रकाश में आते रहते हैं आये दिनों इन ग्रंथों के प्रचार प्रसार से जिज्ञासु भक्तों का महान् उपकार होता आ रहा है। यह पुस्तक भी जो आपके हाथ में है इसी संस्था की महती देन है। अद्वैतवाद में निष्ठा अध्यात्म का जो प्राण है वह तो इस संस्था का हृदय ही कहा जायगा।

८०-८१—हुसंगाबाद से आगे ६ मील पर **रंढाल घाट** है। प्राचीन काल में यहां अच्छा नगर रहा होगा। बहुत से मन्दिरों के खंडहर मिलते हैं। यहाँ से ६ मील आगे **केवलारी सङ्गम** है। **कोक्सर** नाम का घाट है यहाँ पर श्रीगौरीशङ्कर ब्रह्मचारीजी की समाधि है। इन्होंने ही श्री नर्मदाजी की परिक्रमा का विशेष प्रचार किया। इनकी एक जमात थी, जिसमें हाथी, घोड़े तथा सैकड़ों साधु महात्मा तथा परिक्रमा करनेवाले यात्री रहते थे। ये सदा नर्मदाजी की परिक्रमा ही किया करते थे।

सबसे पहले श्री स्वामी कमल भारतीजी महाराज ने नर्मदाजी की परिक्रमा के लिए साधुओं की जमात की स्थापना की थी। उस जमात के साथ उन्होंने नर्मदाजी की तीन परिक्रमायें की। श्री ब्रह्मचारी गौरीशङ्करजी महाराज उनकी जमात में भण्डारी का काम करते थे तथा उनके साधक शिष्य थे। पीछे भारतीजी मण्डलेश्वर के समीप मर्कटी संगम पर अपना आश्रम बनाकर रहने लगे। पीछे मर्कटी आश्रम को छोड़कर इन्दौर जिले में ओंकारेश्वर के समीप चौबीस अवतार नामक स्थान पर अपना नवीन आश्रम बनवाकर रहने लगे। सन् १९१२ में चौबीस अवतार आश्रम पर सौ वर्ष से भीं ऊपर की आयु में उन्होंने अपने इस पाञ्चभौतिक शरीर का परित्याग कर दिया। तीन परिक्रमा करने के पश्चात् उन्होंने अपनी जमात का सर्वाधिकार श्री ब्रह्मचारी गौरीशंकर जी महाराज को प्रदान किया। ब्रह्मचारीजी बड़े तपस्वी तेजस्वी थे। उन्होंने जमात की बहुत वृद्धि की। इनकी जमात में सैकड़ों साधु महात्मा रहते थे, साथ ही हाथी, घोड़े, ऊँट, गाड़ियाँ तथा झण्डे निशान रहते थे। इन्होंने नर्मदा किनारे गायत्री के पुरश्चरण किए और जीवन भर नर्मदाजी की परिक्रमा ही करते रहे। इन्होंने स्थान-स्थान पर परिक्रमा वालों के लिए सदावर्त का प्रबन्ध कराया। इनकी सिद्धि की बहुत-सी कथाएँ प्रचलित हैं। घृत घटने पर नर्मदाजी के जल से ही पूड़ियां छनवाना। द्रव्य न रहने पर नर्मदाजी से द्रव्य प्राप्त कर लेना। कहते हैं इन्हें शूलपाणि की झाड़ियों में चिरंजीवी अश्वत्थामाजी के दर्शन हुए थे। नर्मदाजी इन्हें सिद्ध थीं। जीवन भर परोपकार

तथा साधु सेवा ही करते रहे। सम्वत् १९४४ वि० माघ शुक्ला ९ को यहाँ कोकसर में ही उन्होंने समाधि ले ली। यहाँ पर उनकी छोटी-सी समाधि बनी हुई है। श्री गौरीशङ्करजी ब्रह्मचारी के पश्चात् फिर कई महन्त हुए। उन्होंने कुछ दिन जमात चलायी। फिर शनै-शनैः काल के प्रभाव से जमात समाप्त हो गई। जैसा श्री ब्रह्मचारी गौरीशङ्करजी महराज का नर्मदा खण्ड में अमर यश है, उसके अनुरूप उनकी समाधि तथा आश्रम नहीं है। समय का प्रभाव है। 'कालस्य कुटिला गतिः' आश्रम नष्ट प्राय है जबकि पर्याप्त भूमि उसमें लगी है। एक गृहस्थ ही कब्जा किये बैठा है। अखाड़े के सन्तों को ध्यान देना चाहिए।

८२-८४—कोकसर से १ मील आगे टिघरिया में **गोमुखा घाट** है। यहाँ गोकर्णेश्वर शिवजी का स्थान है। समीप ही पटे घाट पर भी मन्दिर है। यहाँ से चार मील आगे **कुलेरा घाट** है और इस घाट से १ मील आगे **नानपा घाट** है। यहाँ हथेड़ (हत्याहरण) नदी श्री नर्मदा जी में आकर मिली हैं। इसकी कथा इस प्रकार है कि जब महाभारत के पश्चात् अपने ही कुल गोत्र के बन्धुओं की हत्या के कारण पांडवों के दैवी अस्त्र सत्वहीन हो गये तो उन्होंने यहाँ नर्मदा जी में स्नान किया। इससे उनकी हत्या निवारण हो गई। तभी से इस संगम का नाम हत्या हरण हो गया। यहीं पर द्रोपदीजी से मिलने रुक्मिणी जी आई थी। इसलिए यहाँ जो नर्मदाजी में कुण्ड है, उसका नाम लक्ष्मी कुण्ड हो गया। यहाँ पर कुछ दिनों आकर पांडवों की माताजी कुन्तीजी ने निवास कियाथा। इसलिए उनके नाम से कुन्तीपुर यहाँ गांव है। उसी का अपभ्रंस कुलेरा नामक ग्राम अवस्थित है।

८५—कुलेरा से १ मील दूर **आँवरीघाट** है। कहते हैं यहां पांडव लोग वनवास के समय कुछ काल रहे थे और उन्होंने हस्तिनापुर नाम का ग्राम बसाया था।

८६—आँवरी घाट से ३ मील आगे भोला ग्राम के निकट **इन्दना संगम** है। यहां चतुर्मुखाघाट है। चतुर्मुख शिवजी का मन्दिर है। स्थान की शोभा अपूर्व है। नर्मदाजी में यहां विपुल जलराशि दृष्टिगोचर होती है।

८७—इन्दना संगम से ५ मील आगे **बाबरीघाट** है और यहां से ६ मील आगे ८८-**भिलाडिया घाट** है। यहां शिवजी तथा रामजी के मन्दिर हैं। यहां पच्चीस वर्ष पूर्व ज्ञानसत्र का महान् आयोजन तपोमूर्ति स्वामी ओंकारानन्द गिरिने किया था। जिसमें अष्टादश पुराण तथा इतिहास ग्रन्थों का पाठ कथा प्रवचन लगातार तीन वर्ष तक हुआ। अन्त में पञ्च महायज्ञ सन्त सम्मेलनादि अभूतपूर्व अनुष्ठान हुए। यहां से ६ मील आगें गोंदा घाट के पास ८९-**गंजाल संगम** है। यहां गंजालेश्वर शिवजी का मन्दिर है।

इस सम्बन्ध की स्कन्द पुराण में कथा है। कन्यापुर के सोमवंशी महाराज हरिकेश के पुत्र चक्रवर्ती महाराज देवानीक हुए। एक समय महाराज देवानीक मल्लिकार्जुन के समीप अलिका देवी के दर्शनों को गये। वहां सूर्यग्रहण के समय राजा ने एक लाख गौएं ब्राह्मणों को दान कीं तथा वहां विशाल यज्ञ प्रारम्भ किया। उस समय यज्ञ की अग्नि प्रबल बेग से प्रज्वलित हुई। उसने यज्ञशाला को, गौओं को तथा दश सहस्र ब्रह्मचारियों को भस्म कर दिया। इससे राजा को बड़ा दुःख हुआ। वह भी परिवार सहित अग्नि में भस्म हो जाने को प्रवृत्त हुआ। इस पर प्रजाजनों ने कहा—आप अभी अग्नि में प्रवेश न करें। मुनियों से इनका प्रायश्चित पूछें। मुनियों ने बताया—तुम प्रयागराज, काशी, गङ्गा-सागर संगम आदि तीर्थों की यात्रा करो। फिर एक करोड़ आहुति का हवन करो। १० लक्ष गायत्री जप, १० सहस्र गौदान, दस सहस्र सुवर्ण मुद्रा दान करो तुम्हारा मङ्गल होगा। तब राजा ने ऐसी ही किया। किन्तु राजा का पातक पूर्ण रूप से नष्ट नहीं हुआ। तब राजा नर्मदा परिक्रमा करते हुए यहां आये, यहां त्रिवेंगी संगम में स्नान करते ही राजा के सब पातक नष्ट हो गये और वे विशुद्ध बन गये। यहां छोटी-सी पापनासिनी गंजाल नदी है, जो गरमी में सूख जाती है उसका नर्मदाजी में संगम है एक दूसरी गोमती नदी भी यहां आकर मिली है। इसलिए यहां त्रिवेंणी संगम हो गया है। यहां से लगभग एक मील दूर पर **गंगेसरी** है। यहां स्वामी अमृत भारती जी की समाधि है। मठ पसिद्ध रहा, सम्प्रति दुर्दशा है। साधु अखाड़े ध्यान दें।

९१-९२—गंगेसरी से ६ मील आगे **छीपानेर घाट** है और यहां से ५ मील दूर पर **जलोवा घाट** है, यहां हरिहरेश्वर शिवजी का मन्दिर है। यहां श्रीरतीराम बाबाजी की समाधि है। जो१००-१२५ वर्ष पूर्व हुए थे।

९३-९४—जलोदाघाट से १॥ मील आगे **गोयदघाट** है। शिवजी तथा रामजी के मन्दिर हैं। यहां से सात मील आगे मनोहरपुर ग्राम के पास **बाकुल नदी का संगम** है। यहां से थोड़ी ही दूर पर **हँड़िया ग्राम** है। जिसमें रिद्ध नाथ जी का मन्दिर है।

हँड़िया से ओङ्कारेश्वर

हँड़िया—साधारण-सा ग्राम है, ग्राम से पश्चिम दिशा में रिद्धनाथ शिवजी का मन्दिर है। यह स्थान हुसंगाबाद जिले के हरदा नगर से १३ मील है।

हँड़िया में जो रिद्धनाथजी का मन्दिर है, उसमें रिद्धेश्वरनाथ की स्थापना लोकपाल कुवेर ने की थी। इस सम्बन्ध की वसिष्ठ संहिता में निम्नलिखित कथा है।

कुवेरजी विश्रवाजी के पुत्र थे। उन्होंने ब्रह्माजी की चिरकाल तक आराधना की। इससे ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उन्हें सुवर्ण की लङ्का प्रदान की। कुवेरजी सुखपूर्वक सुवर्ण की लंका में निवास करने लगे। लंका का ऐश्वर्य देखकर रावण जो कुवेरजी की विमाता का पुत्र था, उसने लंका पर चढ़ाई कर दी और कुवेरजी से लंका तथा पुष्पक विमान छीन लिया। तब कुवेरजी ने शिवजी की तपस्या की। उस पार नेमावर में सिद्धेश्वर महादेवजी का मन्दिर है। तब शिवजी ने नवनिधियुक्त अलकापुरी प्रदान की। नवनिधि ये हैं (१) पद्म (२) शंख, (३) महापद्म, (४) मकर, (५) कच्छप, (६) नील, (७) कुन्द, (८) मुकुन्द और (९) खर्व हैं। फिर कुवेरजी ने अलकापुरी को भी भली-भाँति सजाया। एक दिन घूमते-फिरते नारदजी रावण पालिता लंका में गये। रावण ने कुवेरजी का समाचार पूछा। तब नारदजी ने अलकापुरी के वैभव का वर्णन किया। तब रावण ने अलकापुरी पर चढ़ाई की और उसे भी कुवेरजी से छीन लिया इससे कुवेरजी बड़े निराश हुए। उन्होंने फिर यहाँ नर्मदाजी के नाभि स्थान में आकर सिद्धनाथ शिवजी की आराधना की। एक वर्ष तक षडाक्षरी मन्त्र का जप किया। इससे शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने आज्ञा दी। यहाँ नर्मदा के उत्तर तट पर तो मैं सिद्धेश्वर रूप में अवस्थित हूँ। तुम दक्षिण तट पर मेरी रिद्धेश्वर रूप की स्थापना करके उनका पूजन करो। तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी। तभीं कुवेरजी ने यहाँ रिद्धेश्वर शिवजी की स्थापना की। इससे उनकी मनोकामना पूर्ण हुईं और उन्हें पुनः अलकापुरी प्राप्त हो गई।❀ यह नर्मदा किनारे बहुत बड़ा तीर्थ है, पहिले इसका नाम नाभिपट्टन था। यहाँ मातृगया मानी जाती थी। माताजी का यहाँ श्राद्ध होता था। मुस्लिम राज्य में इसका हँडिया नाम पड़ा। इससे आगे ओङ्कारनाथ की झाड़ी प्रारम्भ हो जाती है जो लक्कड़ कोट की बोली जाती है।

९६—हँडिया से ८ मील आगे चलकर जंगलके मार्ग से **उचान घाट** पड़ता है। यहां नर्मदाजी की दो धारायें हो गयी हैं। बीच में छोटा-सा टापू निकल आया है कहते हैं--यह उच्चैश्रवा नाम के ऋषि ने तपस्या की थी। नर्मदा जी की छटा का तो कहना ही क्या ?

९७—उचान घाट से ६ मील आगे **जोगाकिलाघाट** है। यहाँ भी नर्मदा जी की दो धारायें हैं। बीच में जो टापू है, उसी में किसी प्राचीन राजा का किला है। सुनते हैं, किसी योगी ने घोर तपस्या करके माताजी से इच्छित वर प्राप्त किया था, तभी से इसका नाम जोगा किला पड़ गया।

❀ (वसि० सं० ५३ अ०)

९८–१००—जोगाकिला से ५ मील आगे **अजनाल संगम** है। मार्ग सब झाड़ी पर्वत और बीहड़ वन का है। अजनाल संगम से ७ मील आगे लीलधा के समीप **माचक संगम** है। यहाँ से १ मील आगे **पुण्यघाट तीर्थ है।**

वसिष्ठ संहिता में इसकी कथा है। गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या के साथ इन्द्र ने छल करके कुकृत्य किया। इससे ऋषि ने इन्द्र को भी शाप दिया और अहल्या को भी शाप देकर दक्षिण दिशा में नासिक में आकर तपस्या करने लगे। उसी समय बारह वर्ष का घोर अकाल पड़ा। तब गौतमजी ने सभी ऋषि मुनियों को आश्रय दिया। जितने भी वहाँ आ जायँ सबको यथेष्ठ भोजन कराते थे। रात्रि में धान बो देते। उनके तप के प्रभाव से रात्रि में वे उगकर पक जाते। चाहें जितने भी आ जाओ, सबको यथेष्ठ भोजन मिलता। अकाल जब समाप्त हुआ। तब उन लोगों ने सोचा—"ऋषि को कुछ लांछन लगाकर चलना चाहिये।" यह सोचकर उन्होंने एक माया की गौ बनाकर उनके द्वार पर खड़ी कर दी। प्रातः जब उन्होंने द्वार खोला तो गौ गिर पड़ी और मर गयी।

तब सबने कहा—"इन्हें तो गौ हत्या लगी, अब हम इनके आश्रम में नहीं रहेंगे।"

ऋषि के प्रायश्चित्त पूछने पर सबने कहा—"यदि उत्तर की गंगा की भाँति तुम दक्षिण में भी वैसी ही गंगा ले आओ तो गो हत्या के पाप से छूट जाओगे। गौतम ऋषि ने इसे स्वीकार किया। उन्होंने घोर तप करके शिवजी को प्रसन्न किया। शिवजी ने कहा—"तुम्हें गोहत्या नहीं लगी है. वह तो माया की गौ थी।"

ऋषि ने कहा—"इसे तो मैं भी जानता हूँ, वह माया की गौ थी किन्तु मैंने सब ऋषियों के सम्मुख गंगा लाने का वचन दिया है उसे आप पूरा करें।"

तब शिवजी ने अपनी जटा से बाल उखाड़कर दिया कि वहाँ इस बाल से गंगाजल छिड़क देना। मुनि ने ऐसा ही किया और वहीं से गोदावरी गंगा प्रकट हो गई। तभी गौतम महामुनि ने वहाँ त्रिम्बकेश्वर शिवजी की स्थापना की। उन्हीं गौतम महामुनि ने यहाँ नर्मदा किनारे श्री गौतमेश्वर शिवजी की स्थापना की। यहाँ के गौतमेश्वर के शिवजी के दर्शनों का फल, तथा त्रिम्बकेश्वर शिवजी के दर्शन का समान फल है।

दूसरी कथा यह है कि पांडवों ने बनवास के समय नर्मदा जी के उत्तर तट पर धर्मपुरी बसाई थी और यहाँ दक्षिण तट पर बहुत भारी पुण्य के कार्य किये थे, तभी से इस घाट का नाम पुण्यघाट पड़ गया। यहां स्नान दानादि का अनन्त गुण माहात्म्य है। यहां बहुत से प्राचीन मन्दिर जीर्णशीर्ण अवस्था में पड़े हैं।

पुण्यतीर्थ से एक मील पश्चिम मानधार है। यहां नर्मदा जी का प्रपात है। ऊँचे से नर्मदा जी गिरती हैं। यहां मान्धाता तीर्थ है। कहते हैं महाराज मान्धाता ने यहां तप किया था। यहां सोमवती अमावस्या तथा भाद्रपद की अमावस्या को मेला लगता है।

१०१—पुण्यतीर्थ से ९ मील आगे **बलकेश्वर घाट** है कहते हैं महाराज बलि ने यहां तप किया था। उन्हीं के नाम से यहां बलकेश्वर शिवजी का मंदिर है। यहां से आगे नर्मदा किनारे-किनारे मार्ग अत्यन्त विकट है। ५०० फुट ऊँची पहाड़ियां हैं, मार्ग भी कंकरीला पथरीला है, भोजनादि का सामान भी मिलना कठिन है। घोर जंगल है। यहां का जंगल वन विभाग द्वारा रक्षित है। अतः प्रायः सभी यात्री यहां से नर्मदा के तट के मार्ग को छोड़कर ऊपर के मार्ग से जाते हैं। किन्तु ऊपर के मार्ग में तीन दिनों तक नर्मदा जी के दर्शन नहीं होते। तीन दिन के लिये उन्हें नर्मदा जी का जल साथ ले जाना पड़ता है। जिनका आग्रह नर्मदा जी के तट ही तट होकर जाने को होता है, उन्हें रक्षित जंगल के अधिकारियों से आज्ञा लेनी पड़ती है। बिना आज्ञा के कोई उस विकट बीहड़ और घोर अरण्य के मार्ग से नहीं जा सकता। अतः ऊपर के सुविधाजनक मार्ग का ही वर्णन किया जा रहा है।

१०२—बलकेश्वर से ३ मील आगे **बलड़ी स्थान** है, यहां से नर्मदा जी ३ मील पड़ती हैं यह ग्राम हरसूद वाली सड़क पर है।

१०३-११०—बलड़ी ग्राम से लगभग ९ मील पर **छोटातवा संगम** है यह बीजलपुर ग्राम के समीप है। यहां से भी श्री नर्मदा जी लगभग ४ मील पड़ती हैं। इससे आगे ७ मील पर **बलवाड़ा** ग्राम है, यहां से भी नर्मदा जी ५ मील पड़ती हैं। यहाँ से ११ मील आगे **पुनासा** ग्राम पड़ता है। नर्मदा जी यहां से ५ मील हैं जहां **धावड़ी कुण्ड** तीर्थ नर्मदा जी में हैं। पुनासा से ७ मील की दूरी पर **वायफल** ग्राम हैं। यहां से ९ मील आगे **सातमात्रा तीर्थ** है। **कोट-खेड़ा** के समीप पुराने किले के खंडहर हैं।

यहां पर (१) वाराही, (२) चामुंडा, (३) ब्रह्माणी, (४) वैष्णवी, (५) इन्द्राणी, (६) कौमारी और (७) माहेश्वरी इन सात माताओं के मन्दिर हैं। इसीलिये सप्तमातृका (सात माता) कहलाता है। सप्तमातृकाओं के अतिरिक्त भी यहां भैरवनाथ, गणेशजी हुलकादेवी, महावीर, वागेश्वरी आदि मूर्तियां हैं यहां से ओंकारेश्वर चार मील हैं।

१११—सातमात्रा से २॥ मील आगे **कावेरी संगम** है यहाँ कुबेर भण्डारी तीर्थ है। यहाँ कावेरी गङ्गा नर्मदा में मिली तो हैं, किन्तु वे अपना पृथक्

अस्तित्व रखती हुई मान्धाता पर्वत के किनारे एक डेढ़ मील नर्मदाजी के साथ चलकर फिर उत्तर की ओर पृथक् हो जाती हैं। इन्हीं के कारण ओंकारेश्वर का पर्वत द्वीप या बेट बन जाता है। लगभग एक मील जाकर मान्धाता के छोर पर वे पुनः नर्मदा में मिल जाती हैं। उसे कावेरी का दूसरा संगम कहते हैं। पहिला जो कुवेर भण्डारी तीर्थ के समीप का संगम है, उसका बहुत बड़ा माहात्म्य है। उसे तीर्थराज प्रयाग के गङ्गा-यमुना संगम के सदृश माना जाता है। यहाँ कुवेरजी ने तपस्या करके यक्षों के राजा होने का वर प्राप्त किया था। कावेरी संगम और ओंकारेश्वर के बीच में ही चार तीर्थ और हैं।

११२-११५—**बाराही सङ्गम, चंडवेगा सङ्गम, एरंडी सङ्गम** और **पितृ तीर्थ या ब्रह्मतीर्थ** इसकी भी संक्षेप में कथा सुनिये। बराही गङ्गा की उत्पत्ति जब भगवान् विष्णु ने बराह अवतार धारण किया तब श्रम के कारण उनके शरीर में स्वेद (पसीना) आ गया। उसी से वाराही गङ्गा प्रकट हुई। वे यहाँ नर्मदाजी में मिली हैं यह भी परम तीर्थ है। इस सङ्गम में स्नान, दान ब्रह्म-भोज का अत्यन्त फल है।

चंडवेगा संगम की कथा यह है कि स्वारोचिष मन्वन्तर में चन्डसेन नाम के सूर्यवंश में अयोध्या के राजा हुए। उनकी बुद्धि मलिन थी। वे कामी थे और ब्राह्मणों से द्वेष भी करते थे। एक समय वे आखेट करने वन में गये। वहाँ शांडिल्य महामुनि का आश्रम था। महर्षि बड़े तपस्वी थे, उनकी धर्मपत्नी का नाम सौदामिनी था। वह रूप लावण्य में अद्वितीया थी। वह सौन्दर्य अनुपमा थी। महाराज चण्डसेन उसके रूप लावण्य को देखकर उस पर आसक्त हो गये। वे उस ऋषि पत्नी के समीप जाकर कहने लगे—सुन्दरी! मैं अयोध्या का राजा हूँ मेरा अपार वैभव है, तुम मेरी स्त्री बन जाओ। मेरे महलों में रहो। वहाँ अनन्त ऐश्वर्य का मनमाने भोगों का भोग करो। यहाँ वन में इस बूढ़े ऋषि के पास क्या रखा है। यह तुम्हारे अनुरूप पति नहीं है।"

सौदामिनी ने कहा—"राजन्! मैं तो अपने पति के अधीन हूँ, आप उन्हीं के समीप जाइये वे जो कहेंगे वही मैं करूँगी।"

यह सुनकर राजा ऋषि के समीप गये और बोले—"विप्रवर! यह परम सुन्दरी ललना ललाम अमूल्य रत्न है, यह आपके योग्य नहीं है। यह तो राज-महल को शोभित करने योग्य ललना रत्न है। इसे आप मुझे दे दें। इसके बदले में मैं आपको यथेष्ट धन दूँगा।। उससे आप दूसरा विवाह कर लेना।"

राजा की बात सुनकर महर्षि हँसे और बोले—"राजन्! तुम्हारी बुद्धि धर्मानुकूल नहीं है। तुम इस इच्छा का परित्याग कर दो।"

राजा तो कामान्ध हो रहा था। उसने ऋषि की बात पर ध्यान नहीं दिया। उसे अनसुनी करके उसने सौदामिनी को बलपूर्वक पकड़कर अपने साथ ले जाना चाहा। सौदामिनी ने जब देखा राजा अनर्थ करने पर तुल गया है तो उसने राजा को शाप दिया—"हे राजा! तू चांडाल जैसा वर्ताव कर रहा है, जा, चांडाल हो जा।"

इतना सुनते ही राजा की आकृति चांडालों जैसी हो गई। जब वह लौटकर राजधानी में आया तो कोई उसे स्पर्श नहीं करता था, सभी उसका तिरस्कार करने लगे। सर्वत्र यह बात फैल गई कि राजा ऋषि पत्नी के शाप से चांडालता को प्राप्त हो गया है। महलों में गया तो रानियों ने भी उसका अभिनन्दन नहीं किया। मन्त्रीगण, ब्राह्मण वर्ग सभी असमञ्जस में पड़ गये। तब मन्त्री तथा ब्राह्मण मिलकर राजा को अपने कुलगुरु वसिष्ठ के समीप ले गये। राजा ने अपना पाप उनको कह सुनाया।

सब सुनकर महर्षि वसिष्ठ ने कहा—"राजन्! ऋषि पत्नी के शाप को अन्यथा करने की हममें सामर्थ्य नहीं है। आप ऋषि पत्नी सौदामिनी की ही शरण में जाइये। वे ही चाहें तो आपको शाप मुक्त कर सकती हैं।"

यह सुनकर राजा ऋषिपत्नी सौदामिनी की शरण गया और उनके चरणों में प्रणाम करके दीनता के साथ अपने अपराध के लिए क्षमा याचना की।"

इस पर ऋषि पत्नी ने कहा—"राजन्! मैं पतिव्रता हूँ। मेरे पति की शरण जाइये वे क्षमा करदेंगे तो क्षमा ही है।"

यह सुनकर राजा, महर्षि शाण्डिल्य के समीप गया और उनसे क्षमा याचना की।

शांडिल्य मुनि ने कहा—"राजन्! आप हमारे पिता मार्कण्डेय मुनि के समीप जाइये। वे ही क्षमा कर सकते हैं।"

शांडिल्य मुनि की आज्ञा से राजा महर्षि मार्कण्डेय मुनि की सेवा में समुपस्थित हुए और अपना पाप उन्हें कह सुनाया।

महर्षि मार्कण्डेयजी बोले—"राजन्! नर्मदाजी में चण्डवेग नदी जहाँ मिली है। उसके सङ्गम पर आप चण्डिकेश्वर शिव की आराधना कीजिये। तभी आप इस पाप से मुक्ति पा सकेंगे।"

महर्षि की आज्ञा पाकर राजा ने ऐसा ही किया और चण्डवेग संगम में स्नान तथा चण्डकेश्वर की आराधना से वे पाप मुक्त हो गये। इसलिए यह तीर्थ बड़े-बड़े पापों का नाश करने में समर्थ है।

इस तीर्थ के समीप ही एरंडी नदी का संगम है। प्राचीनकाल में भद्र और रुद्र इन दो गन्धर्वों ने एरंडी संगम पर एरंडेश्वर शिवजी की आराधना की थी।

उन्होंने ही यहाँ भद्रेश्वर शिवजी की स्थापना की। यहाँ पितरों को पिंडदान दिये जाते हैं। गया के सदृश्य परम पावन तीर्थ माना गया है। इसी के समीप पितृतीर्थ अथवा ब्रह्मतीर्थ है। इस तीर्थ की स्थापना महर्षि अत्रि के पुत्र दुर्वासा मुनि ने की यहाँ एरंड मुनि ने तपस्या की। इस स्थान पर पितृ श्राद्ध तथा पिण्डदान का अनन्त माहात्म्य है।

इससे दो डेढ़ मील आगे **ओंकारेश्वर** शिवजी का परम पवित्र तीर्थ है।

११६—**दक्षिणतट-ओंकारेश्वर**—ओंकारेश्वर मान्धाता क्षेत्र में जो मार्कण्डेय शिला है उसके समीप ही स्वामी मायानन्दजी सरस्वती का आश्रम है। स्वामी जी ने नर्मदा की परिक्रमा करने वालों के लिए बड़े परिश्रम से 'नर्मदा पञ्चाङ्ग'' पुस्तक का निर्माण किया है। प्रथम खण्ड में पहिले उन्होंने अमरकंटक के तीर्थों का, नर्मदाजी की उत्पत्ति का वर्णन करके, नर्मदा परिक्रमा में आने वाले दोनों तटों के तीर्थों की संख्या तथा किस तीर्थ में कितने तीर्थों का माहात्म्य है यह बताया है। फिर अमरकंटक से विमलेश्वर और विमलेश्वर से अमरकंटक के समस्त स्थानों के नाम, पहिले से दूसरा स्थान कै मील है, कहाँ कौन सी नदी का संगम है। किस तीर्थ में कै दिन रहना चाहिए। इसकी विषयसूची दी है। फिर नर्मदाजी किस राज्य में कै मील बही हैं उसका वर्णन है। फिर नर्मदा तीर्थ के सुन्दर नगरों का वर्णन है। फिर नर्मदा तट पर कहाँ-कहाँ कब-कब कौन-सी तिथियों में मेले होते हैं, उन्हें गिनाया है। फिर कुछ अपने बनाये पदों का पौराणिक स्तोत्रों का सुन्दर संग्रह करके प्रथम खण्ड समाप्त किया है। द्वितीय जण्ड में नर्मदाजी के दक्षिण तट के तीर्थों का तथा तृतीय खण्ड में उत्तर तट के तीर्थों का वर्णन किया है। २६४ पृष्ठ की बहुत ही उपयोगी पुस्तक है। उन्होंने स्वयं दो बार नर्मदाजी की पैदल परिक्रमा की है। पहिली परिक्रमा में स्थान-स्थान पर ठहरकर उनके विवरण, दूरी आदि लिखे हैं। चित्र लिये हैं। दूसरी परिक्रमा में पुनः उनका आवश्यक संशोधन किया इस प्रकार पुस्तक बहुत ही उपयोगी वन गई है।

ओंकारेश्वर का विशद वर्णन आरम्भ में ही उत्तर तट का तथा वेट रूप में स्थित ओंकार के आकार में फैला हुआ शिखर की भी वहाँ चर्चा हुई। दक्षिण तट पर अमरेश्वर लिंग की विशेषता तो है ही, साथ ही अनेकों प्राचीन देव-मन्दिर भी हैं, चन्द्रागढ़ नामका दिव्य शिखर भी है। दशनाम संन्यासियों के प्रधान तीनों अखाड़ों के स्थान भी हैं उसपार जाने को सुन्दर झूले वाला सुदृढ पुल बन गया है। तदतिरिक्त मार्कण्डेय मन्दिर प्राचीन है जहाँ अब दिव्य विराट् भगवान् की दर्शनीय मूर्ति, भगवती का सुन्दर मन्दिर गोपुर आदि निर्मित हुए

हैं। समीप में ही विज्ञानशाला के आगे सन्तों के निवास योग्य रमणीय देव-मन्दिर सहित आश्रम संस्थापित हुआ है। वह है—

मार्कण्डेय संन्यास आश्रम

इसकी स्थापना पचीस वर्ष पूर्व श्रीस्वामी रामानन्द सरस्वती द्वारा हुई थी। उन्होंने अपने परमाराध्य सद्गुरुदेव श्रीस्वामी अभयानन्द सरस्वती जी का प्रसन्नतापूर्वक निवास सन्तों सहित कराने हेतु इसका निर्माण कराया था, जो शनैः शनैः बृहत् रूप ले चुका है। सन्तों के निबास योग्य पक्की कुटियाँ बनीं। फुलवाड़ी फल शाकादि की प्रचुरता वहाँ हुई। गौशाला, पुस्तकालय-भगवान सदाशिव का सुन्दर मन्दिर भी संस्थित हो गया। विरक्त सन्तों का सदैव आवास रहा। ४०-५० की संख्या में निवास होता आ रहा है। प्रतिदिन वेदान्त का स्वाध्याय सत्संग कथा वार्ता होना वहाँ की विशेषता है उत्तरोत्तर वीतराग सन्तों का आकर्षण केन्द्र होता जा रहा है। जहाँ होने जा रहा है—

जगद्गुरु-भाष्यकार भगवान् आद्य श्रीशंकराचार्य का भव्य स्मारक

बीस वर्ष पूर्व दशनाम संन्यासियों के तत्त्वावधान में एक समिति गठित हुई थी। सातों अखाड़े के सचिव महन्तगण, अधिकांश महामण्डलेश्वर वृन्द तथा वीतराग परमहंस-परिव्राजकाचार्य विद्वत् मण्डल अग्रसर होकर अध्यात्म पीठ (शंकर विद्यापीठ) की स्थापना करने को सक्रिय हुआ। आद्य श्रीशंकराचार्य की संन्यास स्थली होने के कारण उक्त आश्रम को कार्यालय बनाया। पश्चात् प्रायः वर्तमान सभी शंकराचार्यों का ध्यान यहाँ आकृष्ट हुआ और बड़ी-बड़ी योजनाएँ तबसे बनने लगीं वहाँ।

श्रीस्वामी रामानन्द सरस्वती जी ने भगवत्पाद-श्रीशंकराचार्य के दिव्य विग्रह की स्थापना भी कराई वे हम सभी को उत्साहित करते आ रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप अब शङ्कर द्वादश शताब्दी महासमिति विशाल स्मारक बनाने को कृत संकल्प हो चुकी। शीघ्र ही अखिल भारतीय स्तर पर इसके निर्माण की पूर्ण संभावना हो गई।

विवरण—खेरियाघाट तक तो नरसिंहपुर जिला था। इसके आगे हुसङ्गाबाद जिला आया वह पुनघाट तक चला। पुनघाट से आगे नेमाड़ जिला आ गया। ओंकारेश्वर नेमाड़ जिलें में ही है। जिसे खण्डवा जिला कहा जाता है।

ओंकारेश्वर से खलघाट

११७—ओंकारेश्वर से ८ मील आगे **खेड़ीघाट** है, नर्मदाजी के किनारे-किनारे ऊपर पक्की सड़क हैं, जो ओंकारेश्वर रोड स्टेशन तक जाती है।

ओंकारेश्वर को आने वाले यात्री इसी स्टेशन पर उतरते हैं। इससे एक मील आगे खेड़ीघाट है। कुछ प्ररिक्रमा वाले नर्मदाजी के किनारे-किनारे नीचे से भी आते हैं। नीचे आने वाले को निरन्तर नर्मदा मैया के दर्शन होते हैं। ओंकारेश्वर की झाड़ी इस पार को यहाँ समाप्त होती है। यहाँ राजराजेश्वर का मंदिर है पुरानी धर्मशाला है। यहाँ नर्मदाजी पर रेल का पुल है इन्दौर जाने को मोटर का भी पुल है।

११८—खेड़ीघाट से आगे ८ मील पर **गौमुखा घाट** है। यहाँ पर नीलकण्ठेश्वर शिवजी का मन्दिर है नीचे नील गंगा का कुण्ड है। सुनते हैं महारानी अहल्याबाई ने इनका जीर्णोद्धार कराया था। यह नील गंगा कुण्ड से गौमुख द्वारा नर्मदाजी में जल आता है, यहाँ के स्नान का श्राद्ध तर्पण का बहुत अधिक माहात्म्य है।

११९—गोमुखा घाट से ३ मील आगे **काकरिया** नाम का ग्राम है। इस ग्राम से कुछ आगे नर्मदा के बीच में एक चबूतरे पर **गंगेश्वर** शिवजी विराजमान हैं। यहाँ की ऐमी कथा है कि इस स्थान पर नर्मदाजी के तट पर महर्षि मातङ्गजी तपस्या करते थे। एक समय कुछ ऋषिगण महर्षि के समीप आये। उन आगत अतिथियों का महर्षि ने स्वागत सत्कार करना चाहा।

ऋषियों ने कहा—"हम तो पहिले गंगा स्नान करेंगे, तब आपका आतिथ्य स्वीकार करेंगे।" यहाँ गंगा कहाँ? यहाँ तो नर्मदाजी थीं। किन्तु ऋषि ने अपने तपः प्रभाव से गंगाजी का आवाहन किया। यहाँ नर्मदाजी की दो धारायें हैं दोनों पश्चिम की ओर प्रवाहित होती हैं, ऋषि ने अपने तपोबल से नमंदाजी के प्रवाह को बीच में पूर्व दिशा की ओर परिवर्तित कर दिया। अतः यहाँ वैसे तो नर्मदाजी अपने दोनों किनारों पर पश्चिम की ओर प्रवाहित होती हैं। किन्तु बीच में इस चबूतरे के दोनों ओर बड़े वेग से पूर्व की ओर बहती हैं। वहाँ पर नर्मदाजी में गंगा प्रकट हो गयीं। ऋषियों ने श्रीगंगाजी में स्नान करके मातङ्ग मुनि का आतिथ्य ग्रहण किया।

१२०—गंगेश्वर काकरिया से ५ मील आगे **रावेरखेड़ी** ग्राम है। इस ग्राम के ही समीप पेशवाओं की धर्मशाला तथा घाट है। यहाँ पर प्रथम बाजीराव पेशवा की समाधि है। पेशवाओं ने जब अपने राज्य का विस्तार किया था, तब सर्वप्रथम उत्तर भारत को जीतने के लिए इसी घाट से नर्मदाजी को पार किया था। उसके स्मारक स्वरूप यहाँ श्रीरामेश्वरजी का मन्दिर है और पेशवाओं की धर्मशाला है। यहाँ से सनावद रेलवे स्टेशन १२ मील है। मन्दिर तथा धर्मशाला जीर्णशीर्ण दशा में हैं कौन इनका जीर्णोद्धार करावे?

१२१—रावेंरखेड़ी घाट से लगभग एक मील आगे **खड़क नदी का संगम** है। खड़क संगम से ५ मील आगे मरदाना ग्राम के समीप १२२–**मोरध्वज तीर्थ** है। कहते हैं पहिले यह मोरध्वज राजा की राजधानी थी, जिसने तीर्थराज प्रयाग में आकर प्राण त्याग किए थे। किले के खण्डहर अभी तक विद्यमान हैं। एक गुफा में महाराजा मयूरध्वज के सिंहासन के चिन्ह बताये जाते हैं महारानी अहल्याबाई का बनवाया पक्का घाट है तथा मयूरेश्वर शिवजीका मन्दिर है।

१२३—मोरध्वज तीर्थ से ५ मील आगे तेलियाभट्यान ग्राम के समीप **सातपीपली घाट** है। इसे गोधारी घाट भी कहते हैं। इस सम्बन्ध की एक कथा है प्राचीन काल में एक महात्मा यहाँ निवास करते थे। वे बड़े कर्मकांडी थे। एक बार उन्होंने बड़ा यज्ञ किया। सुनते हैं उस यज्ञ की भस्मी अभी तक निकलती है। एक समय एक ब्राह्मण इनके समीप आया। उसने बड़ी दीनता से महात्माजी से प्रार्थना की—भगवन् ! मुझे ब्रह्म हत्या लग गयी है, कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे मेरी ब्रह्म हत्या छूट जाय।"

महात्माजी ने कुछ सोचकर उसे एक पीपल का डंडा दिया और कहा—'देखो, इस डंडे को लेकर तुम समस्त तीर्थो में जाना। स्वयं तीर्थ स्नान करके इस डंडे को भी स्नान कराना। जहाँ इस डंडे में हरे अंकुर उत्पन्न हो जायँ, वहीं समझना मेरी ब्रह्म हत्या छूट गयी।"

ब्राह्मण महात्मा की बात सुनकर समस्त तीर्थों में गया। वह जहाँ जाता था, वहीं उस तीर्थ में डंड़े को स्नान कराता किन्तु कहीं भी उस डंडे में अंकुर उत्पन्न नहीं हुआ। लौटकर वह पुनः यहाँ नर्मदा के किनारे आया। जैसे ही उसने नर्मदाजी में स्नान करके इस डंडे को स्नान कराया वैसे ही उसमें से सात अंकुर फूट पड़े। तब उसने दान, धर्म, ब्राह्मण भोजन कराया उसकी ब्रह्महत्या छूट गयी। पहिले यहाँ सात पीपल के वृक्ष थे। अब उनमें से एक ही शेष रह गया है।

अच्छा, इसे गौधारी घाट क्यों कहते हैं? तो सुनो, इस तीर्थ में एक गौ का उद्धार हुआ था तभी से इसका नाम गौउद्धारी (गौधारीघाट) पड़ गया। यहाँ भी स्नान, दान तथा ब्राह्मण भोजन का बड़ा माहात्म्य है।

(रे. खं. ४४ अ.)

१२४-१२६--सातपीपलीघाट से ६ मील आगे **लेपाघाट** है। यहाँ **बेवा नदी** आकर नर्मदाजी में मिलती हैं। सङ्गम के समीप ही दो तीर्थ हैं। एक तो **सारस्वत तीर्थ** दूसरा **मर्कटी तीर्थ**। अब आप इन दो तीर्थों के सम्बन्ध की पौराणिक कथायें सुनिये। पहिले सारस्वत तीर्थ की ही कथा सुनें—द्वापर युग

के द्वितीय चरण में सरस्वती अथवा ब्राह्मी-वेदा-का यहाँ सङ्गम हुआ है। यहीं पर मंकणक ऋषि शिवजी की आराधना करते थे। चिरकाल तक आराधना करने के कारण शिवजी की कृपा से उन्हें विश्वरूप दर्शन हुआ। अब उनकी समदृष्टि हो गयी। वे सबमें सर्वत्र विश्वरूप को ही देखने लगे। वे आनन्द में मग्न होकर नृत्य करते। उन्हें सर्वत्र विश्वरूप के ही दर्शन होते थे। उनका चित्त विश्वमय हो गया था, इसलिए उनके नृत्य के साथ सम्पूर्ण विश्व नृत्य करने लगा। तब समस्त देवता घबराये और ब्रह्माजी की शरण में गये।

ब्रह्माजी ने कहा—"भाई, वह ऋषि तो शिव भक्त है, उनके कहने से ही वह मान सकता है। अतः हम सब मिलकर शिवजी के समीप चलें।" यह कहकर ब्रह्माजी सब देवताओं सहित शिवजी की सेवा में समुपस्थित हुए। उन्होंने सब समाचार सुनाकर प्रार्थना की—भगवन्! समस्त जगत् नृत्य कर रहा है। यदि मंकणक महर्षि इसी प्रकार नृत्य करते रहे तो विश्व का कार्य कैसे चलेगा? आप उन्हें नृत्य करने से रोकिए।"

यह सुनकर शिवजी समस्त देवताओं को साथ लेकर मंकणक महर्षि के समीप गये। वे निरन्तर नृत्य करने में ही तल्लीन थे। शंकरजी ने पूछा—'मुनिवर! आप क्यों नृत्य कर रहे हैं? इस पर महर्षि ने कहा—"आप कौन हैं? मैं तो अपने शरीर में सम्पूर्ण विश्व को मानकर आनन्द के कारण ही नत्य कर रहा हूँ।"

यह सुनकर शिवजी ने अपने अँगूठे से ताड़न किया, जिससे उनके शरीर से भस्म-ही-भस्म निकलने लगी। तब ऋषि ने शिवजी को प्रणाम किया, उनकी स्तुति की और यहाँ मंकणेश्वर शिवजी की स्थापना की। (रे. खं. ४४ अध्याय)

अब वेदासङ्गम मर्कटेश्वर तीर्थ की भी कथा को श्रवण कीजिये। पूर्वकाल में यहाँ एक वानरी मर्कटी रहती थी। एक दिन बानरी चंचलता वश नर्मदा के किनारे एक बाँस के घुण्ड को तोड़ने लगी। फटे बाँस के बेग से उसका शिर बांस में उलझ गया और वह मर गयी। उसका धड़ तो नर्मदाजी के जल में गिर गया। किन्तु शिर बाँस के ढूह में उलझा रह गया। हड्डियाँ नर्मदाजी में गिर गयी थीं, उसी के पुण्य प्रभाव से वह महाराज सत्यसेन की धर्मपत्नी हुई। उनकी पट्टरानी बनी। उसका नाम श्रृङ्गारबल्लरी हुआ। उसका सम्पूर्ण शरीर तो बहुत ही सुन्दर तथा दिव्य था, किन्तु मुख उसका बन्दरी के सदृश था।

एक समय महाराज सत्यसेन अपनी पट्टरानी श्रृंगारवल्लरी को साथ लेकर आखेट के लिये वन में गये। संयोग की बात कि आखेट करते-करते महा-

राज नर्मदा किनारे यहां वेदा के संगम पर आ गये। राजा ने अपनी रानी से से कहा—तुम तब तक यहीं वन विहार करो, मैं आखेट करने सघन वन में जा रहा हूँ।" यह कहकर रानी को वहीं छोड़कर राजा चला गया। नर्मदा जी का किनारा, वेदा का संगम, फल पुष्पों से नमित वृक्ष, छोटी-छोटी पर्वत श्रेणियां अलौकिक दृश्य था। रानी आनन्द में भरकर इधर-उधर टहलने लगी। टहलते-टहलते सामने बांसों के झुण्ड में चली गयी। वहां जाते ही उसे पूर्वजन्म की स्मृति हो आयी। मैं पहिले यहीं बानरी थी। इसी बांस के झुण्ड के दो बासों के फटने से मेरा धड़ नर्मदाजी में गिर गया था सिर इसी बांस के झुण्ड में उलझा रह गया था। रानी ने ध्यान से देखा वहां बांसों में उसके सिर की सूखी हड्डियां उलझी हुई थीं। रानी ने अपने हाथ से उन हड्डियों को निकालकर नर्मदाजी में प्रवाहित कर दिया। हड्डियों के नर्मदाजी में पड़ते ही रानी का मुखमण्डल चन्द्रमा के समान दिव्य हो गया। अब वह स्वर्गीय अप्सराओं के सदृश दिखाई देने लगी। इतने में ही महाराज भी आखेट से लौटकर आ गये। अपनी रानी को स्वर्गीय अप्सराओं के सदृश देखकर, उसके माधुर्य्य तथा लावण्य युक्त मुख-मण्डल को निहार कर, परम चकित हुए और पूछा—"तुम्हारा यह मुख इतना सुन्दर कैसे हो गया?"

तब रानी ने अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त बताया। मैं पहिले यहीं बानरी थी। बानरी चञ्चलता के कारण मैं बांसों से खेलने लगी। सहसा दो बांसों की रगड़ से बांस फटने से मेरा सिर बांसों के बीच में भिंच गया। इससे धड़ तो नर्मदाजी के परम पावन पय में पड़ गया। इससे वह तो दिव्य हो गया मैं महा-रानी बन गयी। किन्तु सिर यहीं उरझा रह गया। अतः मेरा सिर बानरी का-सा ही बना रहा। आज यहां आकर मुझे पूर्वजन्म की सब स्मृति हो आई। मैंने अपने सिर की सूखी हड्डियां श्री नर्मदाजी के दिव्य पावन प्रवाह में प्रवाहित कर दीं। प्रवाहित करते ही मेरा मुखमण्डल चन्द्रमा के सदृश पावन बन गया।" राजा यह सुनकर परम प्रमुदित हुए उसी दिन से यह वेदा सङ्गम मर्कटीतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। (रे. खं. ९ अ.)

१२७—वेदा सङ्गम मर्कटीतीर्थ से ४ मील आगे **मांडव्याश्रम** है। यहां पर मांडव्य ऋषि ने तप किया था। यहां पर विशोक संगम है और विशोकेश्वर शिवजी का मन्दिर है। यहीं पर विभाण्डक मुनि ने भी तपस्या की थी। यह पर वसिष्ठ पत्नी अरुन्धती, ब्रह्मापत्नी सावित्री तथा कश्यप पत्नी दिति आदि देवपत्नियों, ऋषि पत्नियों ने तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की थी, यह परम पावन तीर्थ है, यहां पर सिद्ध तथा विश्वेदेव आदि सदा निवास करते हैं। (रे. ख, ४२ अ.)

१२८—माण्डव्याश्रम से दो मील आगे **स्वर्णदीप तीर्थ** है। इस घाट का नाम नवाड़ी टोला घाट है। यहां शालिवाहनेश्वर शिवजी का मन्दिर है। इसके समीप ही हिरण्यगर्भा नदी का श्रीनर्मदाजी के साथ सङ्गम है। यह परम पावन तीर्थ है। यज्ञ गर्भेश्वर शिवजी का सान्निध्य है। यहां ऋषिगण, देवगण नित्य स्नान के निमित्त आते हैं। यहां कार्तिकी अमावस्या, चैत्र की पूर्णिमा को तथा प्रति मास की चतुर्दशी अमावस्या को स्नान, दान, तर्पण, तथा पिण्डदान का माहात्म्य है। (रे. खं. ४२ अ.)

१२९—स्वर्णदीप तीर्थ से ६ मील दूर **बलगाँव घाट तीर्थ** है। स्वर्णदीप तीर्थ से बलगांव घाट तक नर्मदा जी की कई धारायें हो गयी हैं। इसी को **सहस्रधारा** कहते हैं। उन्हीं धाराओं में से एक धारा पूर्व वाहिनी भी है। परशुरामजी ने सहस्रवाहु के सहस्रों वीरों का यहां नाश किया था। यह स्थान अत्यन्त रमणीक तथा दर्शनीय है।

खलघाट से राजघाट

१३१—**खलघाट** से ७ मील चलकर **वर्खडसंगम** है, जहाँ **ग्यारहलिङ्गी तीर्थ** है। पुनघाट तक तो हुसंगावाद जिला था। उसके आगे रावेरखेड़ी तक नेमाड़ का जनपद था। इसके आगे सहस्रधारा तक इन्दौर जनपद है। खलघाट 'धार' जनपद में है, निकट ही **कठोरा ग्राम** है। कठोरा घाट के सामने ही धर्मपुरी द्वीप है।

१३२—कठोरा ग्राम से ६ मील आगे **ब्राह्मण ग्राम** है, जहाँ **बह्मावर्त तीर्थ** है। यहाँ फिर १०-११ मील के लिए इन्दौर जनपद आ जाता है! ब्राह्मण ग्राम इन्दौर जिले में ही है। इस क्षेत्र का नाम ब्रह्मावर्त क्यों पड़ा? इसकी रेवा खंड में कथा है कि यहाँ ब्रह्माजी सदा निवास करते हैं, वहाँ ब्रह्मेश्वर [गुप्तेश्वर] नाम के शंकरजी हैं। यह ब्रह्मावर्त क्षेत्र परम पावन क्षेत्र माना जाता है। यहाँ रुद्र भगवान् की आराधना का अत्यधिक माहात्म्य है। यहाँ ब्रह्मा, विष्णु ओर महेश तीनों ही देवों का निवास माना जाता है। यहाँ पितृ तर्पण तथा ब्रह्मभोज का सबसे अधिक माहात्म्य है। यहाँ सदाचारपूर्वक किए हुए जप का कई गुणा फल होता है। [रे. खं. ५४ अ.]

समीप ही पत्रेश्वर [सुकेश्वर] शंकरजी हैं। भगवान् पत्रेश्वर की स्थापना चित्रसेन गन्धर्व के पुत्र ने की। इस सम्बन्ध की एक कथा है—चित्रसेन गन्धर्व देवराज इंद्र का मित्र था। चित्रसेन का पुत्र पत्रेश्वर अत्यन्त ही सुन्दर था। वैसे गन्धर्वगण ओर विद्याधर उपदेवों में सबसे अधिक सुन्दर होते हैं, किन्तु पत्रेश्वर तो सभी गन्धर्वो से भी अधिक सुन्दर था।

एक दिन इन्द्र तथा अपने पिता चित्रसेन के साथ पत्रेश्वर शिवजी की सभा में गये। उस समय शिवजी की सभा में स्वर्ग की परम सुन्दरी अप्सरा मेनका नृत्य कर रही थी। मेनका के सौन्दर्य माधुर्य तथा लावण्य को देखकर पत्रेश्वर अत्यन्त काम पीड़ित होकर उन्मत्त हो उठा। देवराज इन्द्र ने जब उसे कामोन्मत्त होते देखा तो उन्होंने उसे शाप दिया—"तूने यह मर्त्यधर्मा मनुष्य के समान आचरण किया है, जा, तू अब मर्त्यलोक में निवास करेगा।"

इन्द्र का शाप सुनते ही पत्रेश्वर का कामज्वर कर्पूर के समान उड़ गया। वह अत्यन्त ही भयभीत हुआ तथा विनयावनत होकर देवराज इन्द्र के चरणों में गिर गया और अत्यन्त ही विनीत भाव से उनसे बार-बार क्षमा याचना करने लगा।

उसकी प्रार्थना से द्रवित होकर इन्द्र ने कहा—"देखो, भैया! मर्त्यलोक में तुम्हें जाना ही पड़ेगा, किन्तु मर्त्यलोक में शिवतनया श्री नर्मदाजी हैं, उनकी महिमा अपार है। तुम उनके तट पर बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके शिवजी की आराधना करो। तुम्हारा कल्याण होगा और तुम सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाओगे।

देवराज इन्द्र की इस आज्ञा को शिरोधार्य करके पत्रेश्वर ने यहाँ अपने नाम से शिवजी की स्थापना करके बारह वर्ष तक निरन्तर शिवजी की आराधना की, जिससे वह शाप के भय से विमुक्त होकर पुनः गन्धर्वलोक को चला गया। यहां पितरों के निमित्त श्राद्ध, तर्पण तथा ब्रह्मभोज का अत्यधिक फल है। यहाँ पक्का घाट है। यहाँ से कुछ दूर पीछे बुराढ़ नदी का संगम है।

१३३-१३४—ब्राह्मण गाँव से ७ मील आगे **मारू की चिचली** नामक ग्राम है। इसके पास में **देव नदी का संगम** है। यहाँ से ३ मील आगे—**लोहारया घाट** है। यह बड़वानी जनपद में है। इन्दौर जिला यहाँ से समाप्त हो जाता है। यहाँ से दो मील आगे पहाड़ पर पांडवों के यज्ञ का स्थान है। वनवास के समय यहाँ पांडवों ने यज्ञ किया था। सुनते हैं, अब भी यहां यज्ञ की भस्म निकलती है। पर्वत पर नर्मदेश्वर, वरुणेश्वर तथा शिवयोगेश्वर आदि के मन्दिर हैं। (रे. खं. ५० अ. ५४ अ.)

१३५-१३६—लोहारयाघाट से ३ मील आगे **केसरपुरा** नाम का ग्राम है, यहाँ **नाहिली नदी का संगम** है। यहाँ से १ मील आगे **मोहिपुरा** ग्राम है। यहाँ **सहस्रयज्ञाख्य तीर्थ** है। प्राचीन काल में यहाँ भार्गव ऋषि निवास करते थे, उन्होंने यहाँ सहस्र यज्ञों को देखा था, इसीलिए इसका नाम **सहस्र यज्ञाख्य तीर्थ** है। यहाँ भी देव कर्म तथा पितृ कर्मों का बड़ा माहात्म्य है।

१३७-१४०—सहस्र यज्ञाख्य तीर्थ से २ मील आगे **दत्तवाड़ा घाट** है। यहाँ पर **कपालमोचन तीर्थ** है। यहाँ कपालेश्वर शिवजी की आराधना का बहुत अधिक माहात्म्य है। यहाँ से ३ मील आगे **छोटा बर्धा घाट** है। यहाँ पर **अग्नि तीर्थ** है पूर्वकाल में यहाँ रहकर अग्निदेव ने घोर तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की थी। यहाँ से ५ मील आगे पिपलोद घाट है। जहाँ पर **सुसार नदी का संगम** है। इससे ३ मील आगे **कसरावद घाट** है, जहाँ **सहस्र यज्ञ तीर्थ** है यहाँ पर दक्ष प्रजापति के पुत्रों ने दिव्य सहस्र वर्षों तक तपस्या की और सहस्र यज्ञ किये जिससे उन्होंने परम सिद्धि प्राप्त की। यहाँ पर किये हुए कर्मों का अन्य स्थान के किए हुए कर्मों से शतगुणा फल होता है। यहाँ भी श्राद्ध, तर्पण तथा ब्रह्मभोज का अत्यधिक माहात्म्य बताया है। (रे. खं. अ. ४५, ४७)

१४१—कसरावद घाट से ३ मील आगे **राजघाट** है यहाँ पर **रोहिणी तीर्थ** है। इसका नाम रोहिणी तीर्थ क्यों पड़ा ? इस सम्बन्ध की भी एक कथा है—

प्राचीन काल में यहाँ पर एक निषाद जाति की महिला ने तपस्या की थी। पुण्य तीर्थ में तपस्या के प्रभाव से यहाँ शरीर त्यागकर वह गौरीजी की सखी बन गई। फिर भाग्य से वह दक्ष प्रजापति की पुत्री रोहिणी बन गई। दक्ष प्रजापति ने अपनी सत्ताईस कन्याओं का विवाह अत्रि पुत्र चन्द्रमा के साथ किया। इनमें रोहिणी चन्द्रमा की सबसे प्यारी पत्नी थी। उसने यहाँ नर्मदातट पर तपस्या की और इस तीर्थ की स्थापना की। यहाँ जो स्त्रियाँ सदाचारपूर्वक रहकर तपस्या करती हैं, उनकी समस्त कामनायें पूर्ण होती हैं। उन्हें सात जन्मों तक अखण्ड सौभाग्य की प्राप्ति होती है। इसे बावन गङ्गाघाट भी कहते हैं। यहाँ बड़वानी महाराज का बनवाया हुआ दत्तात्रेय मन्दिर है। बड़वानी नगर यहाँ से ३ मील है। यहाँ से बडवानी तक पक्की सड़क है।

बड़वानी पहिले राज्य था। सुन्दर नगर है। यहाँ के राजा के महल, बगीचे दर्शनीय हैं, धर्मशाला भी हैं। प्राचीन महल में चम्पा की बावड़ी प्रसिद्ध स्थान है। पहिले राजा धर्मात्मा होते थे। उनका अधिकांश धन धर्म में ही व्यय होता था। यहाँ भी गणेशजी, वाणी विनायकजी, कालिका माताजी, अगस्त्य मुनि तथा तुलसीकृत गोपाल मन्दिर आदि १२ मन्दिर हैं।

पहिले राज्य की ओर से नर्मदा परिक्रमा करने वाले यात्रियों की समुचित सेवा होती थी। राजघाट के सामने उस पार में चिखलदा घाट है। यहीं से शूलपाणि की ८९ मील वाली कठिन झाड़ी है। जहाँ अन्न का अभाव है। नर्मदा किनारे रहने वाले वनवासी कोल भील यात्रियों को लूट लेते हैं। इसीलिये

यात्री यहाँ से अन्नादि का प्रबन्ध करके बड़ी सावधानी से चलते है, भक्त जनता की ओर से ऐसा प्रबन्ध है कि वे यात्रियों के सब सामान को अपने घर पर रखा लेते हैं और जहाँ शूलपाणि की कठिन झाड़ी समाप्त होती हैं, यात्री घूमकर यहाँ आते हैं तब उनका सामान वह पहुँचा देते हैं।

बनवासी कोल भील नर्मदा के किनारे-किनारे रहते हैं। पहिले ये जङ्गली कन्द मूल फल तथा मांस पर ही निर्वाह करते थे। अब तो वे छोटे-छोटे गाँव बनाकर रहने लगे हैं और खेती भी करने लगे हैं। ये सब भी तीर कमान लिये रहते हैं, ये निशाना लगाने में बड़े दक्ष होते हैं। लक्ष्यभेदी बाण छोडते हैं। लकड़ी आदि काटने को कुल्हाड़ी भी रखते हैं। परिक्रमा वाले यात्रियों पर सामान देखते हैं तो उसे लूट लेते हैं। जिन पर कुछ सामान नहीं होता ऐसे ऐसे साधुओं को खाने के लिए अन्न भी दे देते हैं। पहिले तो बहुत ही लूट-पाट होती थी। अब तो बहुत कम हो गई है। फिर भी लूट-पाट तो चलती ही है।

महाराष्ट्र के एक सज्जन ने पैदल नर्मदा परिक्रमा की थी। उन्होंने उस पर एक बड़ी अच्छी रोचक पुस्तक लिखी है। अपने संस्मरणों में एक स्थान पर इस शूलपाणि की झाड़ियों के सम्बन्ध में लिखा था—मुझे पहिले ही लोगों ने डर-वाया था कि वहाँ बनवासी भील लूट लेते हैं किन्तु मेरे पास लूटने योग्य कोई वस्तु ही नहीं थी। एक कमण्डलु था और लँगोटी। एक स्थान में मैं वैठा था कि तीर कमान बाँधे एक भील आया और मेरे कमण्डलु को उठा लिया। मैंने कहा—भाई ! मैं साधु हूँ, कमण्डलु ले जाओगे तो मैं पानी किससे पीऊँगा ?"

तब उसने कमण्डलु रख दिया। मेरे पास आकर बैठ गया। मैंने कहा—"भाई ! तुम लोग परिक्रमा वाले यात्रियों को लूटते क्यों हो ?"

उसने कहा—"हम यहाँ जङ्गलों में, वन पर्वतों में रहते हैं। खायँ क्या ? नर्मदा मैया भेज देती हैं इसलिए हम लूट-पाटकर अपना काम चलाते हैं। वे लोग तो नीचे जाकर और सामान प्राप्त कर लेंगे। नर्मदा मैया हमारे ही लिए भेजती हैं। जिन पर कुछ नहीं होता, उन्हें हम यथाशक्ति कुछ दे भी देते हैं।"

तब मैंने कहा—"हमें भूख लगी है, कुछ खाने को दोगे ?"

उसने कहा हम तो मांस खाते हैं, कौए का मांस खाओगे ?"

मैंने कहा—"भाई ! मांस तो हम नहीं खाते।"

तब वह हमें गाँव में ले गया और मक्का के भुट्टे भूनकर दिये।"

लूटने-पाटने की घटनायें अब भी होती हैं।

नर्मदा यात्रा में मध्य प्रदेश और गुजरात दो ही प्रान्त प्रधान रूप से पड़ते हैं। कुछ भाग महाराष्ट्र के खानदेश का भी है। २५-३० मील ही वह केवल है। जिसमें बड़वानी राजपीपला के बीच गुजरात का भी कुछ भाग है।

राजघाट से शूलपाणेश्वर

१४२—राजघाट से ६ मील दूरी पर **मेघनाद तीर्थ** है। इस तीर्थ का नाम मेघनाद तीर्थ कैसे पड़ा। इस सम्बन्ध की रेवाखण्ड में कथा है। त्रेतायुग में महर्षि पुलस्त्य का पौत्र रावण हुआ। वह परम शिव भक्त था। उसने विन्ध्याचलाधिपति मयासुर दानव की पुत्री मन्दोदरी से विवाह किया। उसके एक पुत्र हुआ। उसने जन्मते ही मेघ के समान नाद किया, इससे उसका नाम मेघनाद रखा गया। पिता के सदृश वह भी शिव भक्त था। उसने भी विन्ध्य पर्वत पर घोर तपस्या करते हुए शिवजी की आराधना की उसके तप से तुष्ट होकर आशुतोष भगवान् उसके सम्मुख प्रकट हुए और वर माँगने को कहा—मेघनाद ने यही वर माँगा—"मैं आपकी सेवा में ही सदा संलग्न रहूँ।"

इससे प्रसन्न होकर शिवजी ने उसे पूजा के निमित्त अपने दो शिवलिङ्ग दिये। मेघनाद उन्हें लिए हुए आकाश मार्ग से प्रसन्नतापूर्वक लंकापुरी को आ रहा था। जब इस स्थान से नर्मदा जी को पार करने लगा तब उसके हाथ से एक शिवलिङ्ग छूटकर नर्मदाजी की धारा में गिर पड़ा। इसे नर्मदा जी की कृपा ही समझकर उसने उसी स्थान पर शिवलिङ्ग की स्थापना की। तभी से इसका नाम मेघनाद तीर्थ विख्यात हुआ। यहाँ भी श्राद्ध, तर्पण, ब्रह्मभोज का अन्य स्थानों से शतगुणा माहात्म्य बताया गया है। (रे. खं. ५६ अ.)

१४३—मेघनाद तीर्थ से २ मील चलकर आगे **भौंती** ग्राम का घाट है गोई **गोयद** (गौर वार्ता) **नदी का संगम** है। जब चतुर्दशी मंगलवार के दिन पड़ती है, उसका यहाँ बड़ा माहात्म्य है। यहाँ पर **अंगनेश्वर शिवजी** का स्थान है। यहाँ स्नानादि तथा अपने स्वधर्मानुसार कर्म करने से सहस्र धेनु दान का माहात्म्य बताया है। इसे **मनोरथ तीर्थ** भी कहते हैं। (रे. खं. ४० अ.)

१४४—भौंतीघाट से ३ मील आगे **बीजसेनतीर्थ** है, इस तीर्थ का नाम बीजासेन तीर्थ क्यों पड़ा इस सम्बन्ध की भी वसिष्ठ संहिता में कथा है।

रावण शिवजी का परम भक्त था। एक बार उसने एकादश रुद्रों का तथा एकादश रुद्राणियों का भक्तिभाव सहित पूजन किया। इससे समस्त रुद्राणी अत्यधिक प्रसन्न हुईं। उन्होंने रावण से वरदान मांगने को कहा। प्रतीत होता है, रावण की सहस्रों पत्नियां थीं। उनसे एक लाख पुत्र, सवा लाख नाती हो गये थे। अब ऐसा अनुमान होता है कि वह परिवार नियोजन करना चाहता होगा। अतः उसने रुद्राणियों से यही वर मांगा कि "मुझे ऐसी कन्या प्रदान करें, जो सब स्त्रियों के गर्भ को भक्षण किया करे।" रुद्राणी तो वचन बद्ध थी, अतः उन्होंने बीजासेन नामवाली रुद्राणी दी। वह सभी स्त्रियों के गर्भ का नाश

करने लगी। लंका में तब से बालक होने बन्द हो गये होंगे। जब श्रीरामचन्द्र जी ने रावण का वध कर दिया, तब शङ्करजी ने बीजासेनी को वहां से बुला लिया और आज्ञा दी—तुम यहाँ नर्मदा किनारे रहकर तपस्या करो। और गर्भ नाश के स्थान में गर्भ रक्षा किया करो। तभी से बीजासेनी यहां रहकर तपस्या करने लगी। वह तीर्थ इसी कारण उसी के नाम से बीजासेन तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जो स्त्रियाँ स्नान, दान, ब्रह्मभोजन आदि सत्कर्म करती हैं, उनका कभी गर्भ नाश नहीं होता।

१४५—बीजासेन तीर्थ से ५ मील आगे **हिरण्यफाल** घाट है। यहाँ नर्मदा चट्टानों में होकर नीचे गिरती हैं। यहाँ उनकी बहुत-सी धारायें हो गयी हैं। और वे ऊँचाई से गिरने के कारण तीव्र गति से प्रवाहित होती हैं। लगभग एक मील के पश्चात् वे सब धारायें मिलकर फिर एक धारा हो जाती हैं। सुनते हैं यहाँ का दृश्य अत्यन्त रमणीक है। यहाँ हिरण्याक्ष ने तपस्या की थी इसीलिए उसी के नाम से यह हिरण्यतीर्थ कहलाता है।

१४६-१४७—हिरण्यफाल से १० मील आगे **खारयाकी चौकी** है। यह स्थान दर्शनीय है। यहां से ७ मील आगे **बहादल नदी संगम** है। समीप ही बहादल नाम का ग्राम भी है। दोनों ओर पर्वतों की छटा निराली है। घोर जंगल का मार्ग है।

१४८—बहादल नदी संगम से **१०** मील आगे **भुचेगांव** है। इसके समीप ही **नकटा की चौकी** है। यहाँ **उदीसंगम** है। पास ही सादरी ग्राम है। यहाँ से पश्चिमी खान देश जिला आ जाता है।

१४९—भुचेगांव उदी संगम से **दमखेड़ा** ५ मील है। यह स्थान महाराष्ट्र प्रान्त के पश्चिम खानदेश में ही है। यहां **खाड़ा नदी का संगम** है। राजघाट (बड़वानी) से ही शूलपाणि की झाड़ी आरम्भ हो जाती है, ये सभी स्थान, पहाड़ों तथा घोर जंगलों के बीच में है। यदि धार्मिक भावना न होती तो कोई भी पुरुष इन स्थानों में पैदल जाने का साहस न करता। किन्तु न जाने कितने वर्षों से नर्मदा परिक्रमा के यात्री इन स्थानों की धूलि फांकते हुए अपने को कृतकृत्य समझते हैं। वस्तुतः इस झाड़ी में ही सन्तों को दिव्याति–दिव्य अनुभूति होती है। जब वे प्रायः एकाकी यहां विचरते हैं। अतः टिप्पणी व्यर्थ है।

१५०-१५१—दमखेड़ा से ४ मील आगे **पेंडरा ग्राम** है, इसके सामने ही उस पार हापेश्वर का मन्दिर है, पेंडरा से ८ मील आगे **डेहरी संगम** है ऐसा कठिन मार्ग नर्मदा यात्रा में कहीं भी नहीं है। काँटेदार झाड़ियां, पत्थरों के टुकड़े, कँकरीली पथरीली भूमि परिक्रमा वासी नर्मदे हर करते हुए कठिनता से इस मार्ग को पार करते हैं।

१५२—डेहरी संगम से ८ मील आगे **सिन्दूरी संगम** है। यह स्थान पहिले कांटी राज्य में था। यहाँ आकर पश्चिम खानदेश जिले की सीमा समाप्त होती है।

दुर्गम तथा प्रसिद्ध तीर्थ शूलपाणेश्वर

१५३—सिंदूरी संगम से आगे घोर जंगलों पर्वतों और झाड़ियों को पार करते हुए १० मील पर **शूलपाणेश्वर** तीर्थ है। शूलपाणि अत्यन्त दुर्गम कठिन झाडी इन्हीं शूलपाणि भगवान् के नाम से प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र का अनन्त माहात्म्य है। नर्मदा क्षेत्र के समस्त तीर्थों में महातीर्थ तथा समस्त श्रेष्ठ तीर्थों में महाश्रेष्ठ तीर्थ है। यहां का दृश्य परम अलौकिक है। इस तीर्थ का वर्णन वायु पुराण के रेवा खण्ड में ६३ अध्याय से ७३ अध्याय तक ११ अध्यायों में वर्णित है तथा स्कन्द पुराण के रेवाखंड में भी ८५वें अध्याय से ९१ अध्याय तक ६ अध्यायों में वर्णित है। इस स्थान का शूलपाणि नाम क्यों पड़ा इसकी अत्यंत संक्षेप में कथा बताते हैं—

ब्रह्माजी के पुत्र कश्यप हुए उनकी पत्नी दिति से दैत्य, दानव, असुर हुए। उनमें एक अन्धक नामक असुर था। वह दैत्यों का अधिपति था। उसने चार सहस्र वर्षों तक घोर तप किया। एक सहस्र वर्ष तक तो उसने भगवती भागीरथी के तट पर धूम्र पान करके तपस्या की। एक सहस्र वर्ष पर्यन्त एक पैर पर निराहार खड़ा रहा। एक सहस्र वर्ष तक पञ्चाग्नि तापता रहा और एक सहस्र वर्ष पर्यन्त योगाभ्यास में रत रहा। इस प्रकार का घोर तप आज तक किसी ने भी नहीं किया था। घोर तपस्या के प्रभाव से उसके मस्तक से धूआं निकलने लगा। वह धूआँ विश्व में व्याप्त हो गया। जब वह धूआं कैलास में पहुँचा तब भगवती पार्वतीजी ने शिवजी से पूछा—"प्राणनाथ! यह धूआँ कैसा है, कहां से यहां आ गया?"

तब शिवजी ने कहा—"देवि! अन्धकासुर चार सहस्र वर्षों से घोर तप कर रहा है, उसी के मस्तक से यह धूम्र निकलकर विश्व में व्याप्त हो गया है।"

पार्वतीजी ने कहा—"भगवन्! आपने उस असुर को वरदान क्यों नहीं दिया?"

शिवजी बोले—"देवि! मैं समाधि में स्थित था इसलिए भूल गया।"

पार्वतीजी ने कहा—"तो भगवन्! अब तो उस असुर को वरदान दीजिये अब उससे अधिक परिश्रम न कराइये।"

शिवजी ने कहा—"अच्छी बात है, चलो हम दोनों ही उसके पास चलें और उसे वरदान दें।"

यह कहकर शिवजी पार्वतीजी को साथ लेकर चल दिये और उस असुर के समीप पहुँचे। वह तप में तन्मय हो रहा था। शिवजी ने उसे चैतन्य कराया और कहा—"दैत्यराज ! मैं तुम्हारे तप से प्रसन्न हूँ, तुम जो चाहो सो वर माँग लो।"

पार्वती सहित शिवजी को अपने सम्मुख समुपस्थित देखकर दैत्य के रोम-रोम खिल उठे। उसने शिवजी को प्रणाम करके कहा—"हे देवाधिदेव ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वर दीजिये कि मेरे सम्मुख जो भी आवे उसी का पराभव हो जाय। मुझे कोई भी जीत न सके।"

शिवजी ने कहा— 'भाई ! यह तो तुम असम्भव वर मांग रहे हो। इसके अतिरिक्त कोई और वर मांगो।"

तब दैत्य ने कहा—"प्रभो आप सब कुछ देने में समर्थ हैं।"

शिवजी ने कहा—"भाई ! असम्भव वर मत मांगों। मैं ऐसा वर नहीं दे सकता।"

यह सुनकर दैत्य अत्यन्त दुखी हुआ। उसे मूर्छा आ गई। वह अचेत होकर गिर पड़ा। उसकी ऐसी दशा देखकर देवी पार्वतीजी को दया आ गई और शिवजी से बोलीं—"प्राणनाथ ! दैत्य जो वर मांगता है, वही दे दीजिये। देखिये यह कितना दुखी हो रहा है।"

तब शिवजी ने दैत्य को चैतन्य किया और बोले—"अच्छा तुम श्रीविष्णु को छोड़कर और सबको पराजित कर सकोगे।"

यह सुनकर दैत्य अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ। इसके अनन्तर वह शिवजी को प्रणाम करके राजधानी में चला गया। शिवजी के वरदान के कारण उसने तीनों लोकों को जीत लिया। इन्द्र का इन्द्रासन तथा उसकी स्त्री को भी छीन लिया। देवताओं को भाँति-भाँति का कष्ट देने लगा। तब सब देवता मिलकर भगवान् विष्णु की शरण में गये। भगबान् ने कहा—जिसे शिवजी ने वर दे दिया है उसे मैं कैसे मार सकता हूँ। शिवजी ही कुछ कर सकते हैं।"

भगवान् ने शिवजी को प्रेरित किया। शिवजी की शरण में देवता गये। शिवजी ने पार्वतीजी से कहा—"प्रिये ! मैंने तो तुमसे पहिले ही कहा था, इसे ऐसा वर देना उचित नहीं। अब बताओ क्या करें ?"

पार्वतीजी ने कहा—"भगवन् ! ऐसा कीजिये, जिससे त्रिलोकी का भी कल्याण हो और उसका भी कल्याण हो।"

भगवान् विष्णु की प्रेरणा से दैत्य का अभिमान और अत्यधिक बढ़ गया। उसने युद्ध के लिए शिवजी को भी ललकारा। शिवजी को क्रोध आ गया और

उससे घोर युद्ध किया। अन्त में शिवजी ने अपने त्रिशूल को उसके शरीर में भेद दिया। अब तो दैत्य का सब मद उतर गया। उसने बड़ी नम्रता से अनेक स्तोत्रों द्वारा शिवजी की स्तुति की। आशुतोष औघड़दानी भगवान् भोलेनाथ उसकी स्तुति से प्रसन्न हुए उसे अपना स्वरूप प्रदान किया और उसे अपने गणों में सम्मिलित कर लिया। असुर का तो कल्याण हो गया। किन्तु शिवजी के त्रिशूल में जो दैत्य का रक्त लग गया था वह नहीं छूटा। इससे शिवजी चिन्तित हुए।

उन्होंने समस्त देवताओं से कहा—"यह असुर था तो क्या हुआ, था तो यह ब्रह्माजी का पौत्र। इसके रक्त से मेरा त्रिशूल अशुद्ध हो गया है, इसकी शुद्धि होनी चाहिए।" यह कहकर वे देवताओं को साथ लेकर समस्त तीर्थों में गये, किन्तु, वह रक्त कहीं भी नहीं छूटा। तब नर्मदाजी के दोनों तटों के तीर्थों में उसे धोया, फिर भी रक्त के काले दाग नहीं छूटे। जब वे इस स्थान में भृगु पर्वत पर आये। यहाँ आकर उन्होंने अपने हाथ से (पाणि से) त्रिशूल को पर्वत पर मारा। इससे पर्वत पाताल में घुस गया और शूल में लगे रक्त के दाग छूट गये। जहाँ पर त्रिशूल मारा था, वहां से सरस्वती गंगा प्रकट हो गयीं। वे जाकर नर्मदाजी में मिल गयीं। जहां शूल मारा था वहाँ कुण्ड बन गया। वह कुण्ड सर्वदा नर्मदाजी में रहता है। उसका नाम **चक्र** तीर्थ है।

यहाँ पर ब्रह्माजी का स्थापित किया हुआँ ब्रह्मेश्वर लिङ्ग है, इसके दक्षिण में शेषशायी भगवान् बिष्णु हैं। यहाँ एक सौ आठ क्षेत्रपाल नित्य निवास करते हैं। यह नर्मदा किनारे सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है। यहाँ किये हुए दान, पुण्य, जप, तप, श्राद्ध तथा ब्रह्मभोज का अनन्त गुणा फल बताया है। यह तीर्थ पांच कोस में स्थित है। नर्मदाजी के दक्षिण तट पर भृगु पर्वत पर स्थित इस तीर्थ की महिमा अनन्त है। इसी के समीप **रुद्रकुण्ड** है। समीप ही **मार्कण्डेय मुनि की गुफा** है। इससे कुछ दूर पर **रणछोड़जी का मन्दिर** है। समीप ही **चक्रतीर्थ** है। यहाँ तक शूलपाणेश्वर तीर्थ की पञ्चकोशी मानी जाती है। ये समस्त तीर्थ शूल पाणेश्वर क्षेत्र के अन्तर्गत ही हैं।

शूलपाणेश्वर से अंकलेश्वर

१५४—भृगुपर्वत शूलपाणेश्वर से ३ मील आगे चलकर मोखड़ी ग्राम है। यहाँ **मोक्षगंगा का संगम** है, एक छोटा-सा जल प्रपात है। परिक्रमा करनेवालों का कहना है कि यहाँ का दृश्य अत्यन्त ही मनोहर है। (रे. ख. ७६ अ.)

१५५—मोक्षतीर्थ से ४ मील आगे **उलूकतीर्थ** है। रेवाखण्ड में इस तीर्थ **की कथा** इस प्रकार है। पूर्वकाल में एक उल्लू इस स्थान में नर्मदा तट की

एक गुफा में निवास करता था। उसे यहाँ रहते-रहते एक सहस्र वर्ष हो गये। वहाँ के कौए उससे द्वेष करते थे, किन्तु उनको पता नहीं चलता था, उल्लू किस स्थान पर रहता है। बहुत खोज करते-करते उन कौओं ने उल्लू की गुफा का पता लगा लिया। वे उससे द्वेष तो करते ही थे। वे सब मिलकर अपनी-अपनी चोंचों में जंगल से लकड़ियाँ ले आये और उन लकड़ियों से उन्होंने उल्लू की गुफा का मुख बन्द कर दिया और कहीं से जलती लकड़ी लाकर उन लकड़ियों में आग लगा दी। आग की लपट लगते ही उल्लू वहाँ से निकला। आग में निकलने से उसके पंख तथा शरीर जल गया। उसी अवस्था में वहाँ जले हुए शरीर से कुण्ड में आकर गिर गया। वहाँ आकर उसकी मृत्यु हो गयी। श्रीनर्मदाजी के उस परम पावन कुण्ड में मृत्यु होने से-उसी पुण्य प्रभाव से-वह काशी का राजा हुआ। और जाति स्मर हुआ। उसे अपने पूर्वजन्म की सभी बातें स्मरण थीं। इसलिए वह इस स्थान को खोजते-खोजते यहाँ आ पहुँचा। यहाँ आकर उसने जप, तप यज्ञादि शुभ कर्म किये इसी कारण उसने परम सिद्धि प्राप्त की। यह सिद्धि देने वाला स्थान है। यहाँ पर अनेकों ने सिद्धि प्राप्त की है। (रे० खं० ७७ अ०)

१५६—उलूक तीर्थ से ४ मील आगे **गोराघाट** है। पहिले तो यह छोटा-सा साधारण गाँव था। किन्तु सरकारी नर्मदा बाँध योजना के कारण अब यह समस्त आधुनिक सुविधाओं से युक्त एक छोटा-मोटा नगर बन गया है। 'गोरा कालोनी' के नाम से नर्मदा बाँध कर्मचारियों के लिये अच्छी बस्ती बन गयी हैं। यहाँ से राजपिप्पला दश बारह मील है। वहाँ जाने के लिये पक्की सड़क है। यदि यह बाँध बँध जायगा तो नर्मदा के किनारे बहुत से मन्दिर तीर्थ जलमग्न हो जायेंगे। राजपिप्पला में जो विश्व हिन्दू परिषद् के अध्यक्ष हैं उन्होंने मुझसे कहा था—हम लोगों ने मोटर द्वारा जाकर देखा बहुत से मन्दिर डूब जायेंगे। हम जब गये थे, तब बाँध की तैयारियाँ हो रही थी। बहुत दूर-दूर से पत्थर एकत्रित किये जा रहे थे।

१५७—उलूक तीर्थ से ४ मील आगे **पिप्पलाद आश्रम** नाम का तीर्थ है। बीच में भैरवझाप तथा गोराघाट पड़ते हैं। नाँदोद से गोराघाट तक पक्की सड़क हैं, यहाँ से एक मील पिपरिया ग्राम है। यहीं पिप्पलाद तीर्थ है। यहाँ पिप्पलाद महर्षिजी ने शिवजी की आराधना की थी। उनकी आराधना से प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें दर्शन दिया और वर माँगने को कहा। महर्षि ने शिवजी से प्रार्थना की—"प्रभो ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मैं आपसे यही वर माँगता हूँ कि आप यहाँ सर्वदा निवास करें।" शिवजी ने तथास्तु कहकर ऋषिजी की प्रार्थना स्वीकार की। यहाँ शिवजी का नित्य निवास है। अष्टमी

तथा चतुर्दशी को यहाँ स्नान दानादि का बड़ा माहात्म्य है। यहाँ शूलपाणि को कठिन झाड़ी समाप्त हो जाती है। (रे० खं० ८० अ०)

१५८—पिप्पलाद तीर्थ से लगभग दो मील आगे **इन्द्रवाणो** ग्राम है। यहां शक्रतीर्थ। इसके सामने उस पार गरुड़ेश्वर स्थान है इसका वर्णन लौटते समय उस पार की परिक्रमा में करेंगे इन्द्रवाणो ग्राम में **शक्रतीर्थ** है। यहां इन्द्र ने तपस्या की थी। बात यह थी कि जृम्भासुर नाम का दैत्य था। उसने तपस्या करके इतनी शक्ति प्राप्त कर ली थी कि स्वर्ग से इन्द्र को युद्ध में हराकर वह स्वयं इन्द्र बन गया था। इन्द्रासन छिन जाने के कारण इन्द्र ने यहां नर्मदा किनारे आकर घोर तप किया तथा शिवजी की आराधना की। उसकी तपस्या से आशुतोष भगवान् भोलेनाथ प्रसन्न हुए और उन्होंने वर माँगने को कहा। इन्द्र ने विनीत भाव से कहा—"प्रभो ! मुझे ऐसी शक्ति दीजिये, जिससे मैं अपने शत्रु को जीत सकूँ।" इन्द्र की प्रार्थना पर भगवान् शंकर ने उन्हें एक शक्ति प्रदान की। उसी शक्ति से देवेन्द्र ने जृम्भासुर का वध किया। और अपने नाम से शक्रेश्वर शिवलिंग की स्थापना की यहां कार्तिक की बैकुण्ठ चतुर्दशी को स्नान का बड़ा माहाम्य है। [रे०खं० ८२ अ०]

१५९—शक्रेश्वर से लगभग डेढ़ मील आगे रावेर ग्राम है। उसके समीप ही **व्यासेश्वर** तथा **वैद्यनाथ** हैं। भगवान् वेदव्यास जी शूलपाणेश्वर की यात्रा के निमित्त आये थे। उन्होंने यहां कुछ दिन निवास किया और अपने से **व्यासेश्वर** शिवलिङ्ग की स्थापना की। व्यासेश्वरजी के पूर्व भाग में **वैद्यनाथजी** हैं। यहां देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमारों ने वैद्य विद्या की प्राप्ति के निमित्त घोर तप किया था। वैद्य विद्या प्राप्त होने पर उन्होंने अपने नाम से **वैद्यनाथ** शिवजी की स्थापना की। वैद्य विद्या के प्राप्त करने वालों को यहां वैद्यनाथजी के दर्शन अवश्य करने चाहिये। इस स्थान में ओषधि दान का बड़ा माहात्म्य है। यहां पर स्नान, दान, जप, तप का अत्यन्त फल है। [रे खं० ८४ अ०]

१६०—व्यासेश्वर रावेर से दो मील दूर **आनन्देश्वर** तीर्थ है यह स्थान रावेर और सूरजगांव के मध्य में है। रेवाखण्ड में तीर्थ की जो कथा है उसे श्रवण कीजिये। असुर तो शरीर को ही सब कुछ मानते हैं, वे कामी होते ही हैं। एक बार चन्द्रपीड़, जृम्भासुर तथा सुरान्तक आदि असुरों ने सोचा—शिवजी की जो धर्मपत्नी पार्वतीजी हैं, वे अत्यन्त सुन्दरी हैं, इसलिये उनका हरण करना चाहिये। ऐसी कुमन्त्रणा करके वे शिवजी के समीप पहुँचे। शंकरजी ने उनकी दुर्भावना को समझकर उनसे युद्ध किया। निरन्तर सौ वर्षों तक युद्ध होता रहा किन्तु ये दुष्ट इतने बलवान् थे कि शिवजी उनका वध न कर सके। तब शिवजी ने माता पार्वतीजी की ओर देखा। माता पार्वतीजी ने

कहा—"प्राणनाथ ! आप अपने दिव्य त्रिशूल द्वारा इनका वध करें।" माताजी की सम्मति मानकर शिवजी ने अपने त्रिशूल द्वारा सबका बध किया।

इस पर समस्त देवताओं ने भगवान् शंकर का अभिनन्दन किया। उनकी भूरि-भूरि स्तुति तथा प्रशंसा की। इस पर शिवजी आनन्द विभोर होकर भैरव का रूप धारण करके अपने गणों के सहित तांडव नृत्य करने लगे। और अपने आप ही आनन्द में मग्न होकर अपने लिङ्ग की स्थापना की। वे ही आनन्देश्वर शिवलिङ्ग के नाम से विख्यात हुए। यहां शिवजी की पूजा करने से सन्तान शतायु होती हैं। चैत्र की त्रयोदशी को यहां पितरों का श्राद्ध करने का बड़ा माहात्म्य हैं। [रे० खं० ८६ अ०]

१६१—मातृतीर्थ—सूरजवर ग्राम से लगभग एक मील पूर्व दिशा में **मातृ-तीर्थ** है। इसकी भी रेवाखण्ड में कथा है—"इस स्थान पर सप्तमातृकाओं ने घोर तपस्या करके शिवजी की आराधना की इससे शिवजी उन पर प्रसन्न हुए और वरदान मांगने को कहा। मातृकाओं ने विनीत भाव से कहा—"भगवन् ! जिस स्थान में आप प्रसन्न होकर प्रकट हुए वह पुण्य तीर्थ बन जाय। और वहां आपकी स्थिति सदा रहे शिवजी ने तथास्तु कहकर इसे स्वीकार किया। तब सप्तमातृकाओं ने अपने-अपने अग की स्थापना की। नवदुर्गाओं की नवमी के दिन यहां देवियों के पूजन का बड़ा माहात्म्य है। स्त्रियों को पुत्र प्राप्ति, सौभाग्य प्राप्ति के लिये मातृकाओं का पूजन करना चाहिये।

१६२—**सूरजवर** ग्राम के पर्व में एक **नर्मदा तीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है। "सत्ययुग में एक सूर्यवंशी दशरथ नाम के राजा थे। उनके कुछ शत्रु राजाओं ने मिलकर उनके राज्य पर चढ़ाई की। महाराज ने बड़ी वीरता से उनका सामना किया, ढाई वर्षों तक युद्ध होता रहा। वे कई राजा थे। महाराज दशरथ अकेले थे। इतने दिनों तक युद्ध होने के कारण राजा के समस्त सैनिक मर गये द्रव्यकोष समाप्त हो गया। तब वे अपने किले के गुप्त मार्ग से स्त्री पुत्रों के सहित राजधानी छोड़कर भाग गये। वे जंगलों में मारे-मारे भटकते फिरे। संयोग की बात जंगलों में राजा कहीं गये थे। उनके स्त्री पुत्र मार्ग भूलकर राजा से पृथक् हो गये। राजा ने बहुत ढूंढ़ा किन्तु उनका कहीं पता नहीं चला। तब राजा अत्यन्त दुःखी होकर नर्मदाजी के किनारे आये। दुःख के कारण उन्होंने आत्म हत्या करने का निश्चय किया। वे अपने हाथ पैर बांधकर नर्मदाजी के दह में कूद पड़े। उस समय नर्मदाजी ने स्वयं ही प्रकट होकर उन्हें जल से बाहर कर दिया और धैर्य बँधाते हुए कहा—"राजन् ! ऐसा साहस मत करो।" यह कहकर नर्मदाजी ने एक मणि तथा

एक लकड़ी दी और कहा--इनके द्वारा तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी। जब तुम्हें पुनः राज्य ऐश्वर्य की प्राप्ति हो जाय तब तुम इन्हें मेरे जल में प्रवाहित कर देना। नर्मदाजी से इन वस्तुओं की प्राप्ति से राजा को परम प्रसन्नता हुई। उन्होंने वहां की मूर्ति की स्थापना की और फिर अपनी राजधानी को गये। वहां उनके शत्रु स्वयं ही पराजित होकर भाग गये। उनके स्त्री बच्चे भी भटकते हुए वहां आ गये। और उन्हें पुनः पूर्ववत् धन, धान्य, राज्य तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति हो गयी। राजा ने नर्मदा तट पर आकर नर्मदाजी का पूजन अर्चन किया। और उनकी जैसी आज्ञा थी उसका पालन किया। तभी से यह नर्मदा तीर्थ विख्यात हुआ। यह तीर्थ राजाओं को राज्य ऐश्वर्य, धन, धान्य प्राप्त कराने वाला है। यहां दान, धर्म, ब्रह्मभोज आदि का बड़ा माहात्म्य है।

[रे॰ खं॰ ८७ अ॰]

१६३--सूरजवर ग्राम के पश्चिम में डेढ़ मील पर एक **मुण्डेश्वर** नामक तीर्थ है। शिवजी के जो रुंड-मुंड नामक प्रख्यातगण हैं। उनमें से मुंड नामक गण ने इस शिवलिंग की स्थापना की थी। इसके सम्बन्ध की कथा इस प्रकार है-एक बार शिवजी कहीं जा रहे थे, उन्होंने पार्वतीजी की रक्षा के निमित्त मुंड को नियुक्त किया और आज्ञा की--"यहीं रहना सावधानी के साथ सुरक्षा में तत्पर रहना।" ऐसा कहकर शिवजी चले गये। मुंड वहीं पार्वतीजी की सुरक्षा में बैठा रहा। उसी समय वन में जंगली हाथियों के दो दलों का युद्ध छिड़ गया। मुंड कुतूहल वश अपने कर्तव्य को भूलकर हाथियों के युद्ध को देखने चला गया और बड़ी देर तक युद्ध को देखता रहा।

संयोग की बात उसी बीच शिवजी लौटकर स्थान पर आ गये। वहां मुंड को अनुपस्थित देखकर वे क्रुद्ध हुए उसी समय मुंड भी आ गया। शिवजी ने उससे पूछा—"तू अपने कर्तव्य से विमुख क्यों हुआ रे? कहां चला गया था?"

मुंड ने हाथ जोड़कर दीनता से कहा-"प्रभो! मैं कुतूहल वश हाथियों का युद्ध देखने चला गया था।"

शिवजी ने कहा—"अपने कर्तव्य का ध्यान न रखकर साधारण मानव की भांति तू कुतूहल वश अपने कार्य को भूल गया। जा तू मनुष्य हो जा। इस पर मुण्ड बहुत गिड़गिड़ाया। बार-बार क्षमा याचना करने लगा। इससे पार्वतीजी को दया आ गयी। वे शिवजी से बोलीं--"प्राणनाथ! प्राणी ही तो हैं, साधारण-भूल है इसे क्षमा कर दीजिये।"

इस पर शिवजी ने कहा—"मेरा वचन कभी अन्यथा नहीं हो सकता। यह मनुष्य योनि में जन्म तो लेगा ही किन्तु वहाँ भी ब्राह्मण वंश में जन्मेगा। इसे

वहाँ भी अपने स्वरूप का ज्ञान बना रहेगा और नर्मदाजी के तट पर जाकर तपस्या करेगा। वहाँ यह अपने नाम से मेरी लिंग की स्थापना करेगा, इससे मनुष्य योनि से छूटकर पुनः अपने पद को प्राप्त कर लेगा।"

यह सुनकर मुण्ड को सन्तोष हुआ। वह मनुष्य योनि में ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ। यहाँ नर्मदा किनारे घोर तपस्या करते हुए मुण्डेश्वर शिवलिंग की स्थापना करके पुनः अपने पद को प्राप्त हुआ। तभी से यह मुण्डेश्वर तीर्थ रेवातट पर विख्यात हुआ। (रे. खं. ८८ अ.)

१६४—मुण्डेश्वर से लगभग डेढ़ मील दूर रामपुरा नामक ग्राम है, उसके पूर्व में अनडवाही संगम है। अनडवाही नदी यहाँ आकर नर्मदाजी में मिली है। इस सम्बन्ध की कथा इस प्रकार है—शिवजी और पार्वती रात्रि में शयन कर रहे थे। द्वार पर नन्दीश्वर पहरा दे रहे थे। उसी समय दैत्यों ने वहाँ आकर उपद्रव करना आरम्भ कर दिया। नन्दीश्वर ने बहुत समझाया—"भगवान् इस समय आराम कर रहे हैं, तुम लोग उपद्रव मत करो।" किन्तु वे माने ही नहीं। दोनों में युद्ध छिड़ गया। नन्दीश्वर ने अपने सींगों के प्रहार से सभी दैत्यों को मार गिराया। रात्रि भर नन्दी का दैत्यों के साथ घमासान युद्ध होता रहा। सभी दैत्य मर गये। नन्दीश्वर के खुरों से वहाँ एक भारी गड्ढा हो गया। उसी गड्ढा से यह अनडवाही नदी निकल पड़ी। रात्रि भर युद्ध करने से नन्दीश्वर के शरीर से जो स्वेद [पसीना] निकला वह इस नदी के जल के साथ बहकर नर्मदाजी में मिल गया। देवताओं ने नन्दी की इस वीरता के उपलक्ष में वृष्टि की। इससे नन्दीश्वर का क्रोध शान्त हो गया।

१६५—अनडवाही नदी के पश्चिम भाग में भीमेश्वर नाम का तीर्थ है। इसकी कथा इस प्रकार है। सत्ययुग में चन्द्रवंशी भीम नाम के एक बड़े ही प्रतापी राजा हुए हैं। पाण्डवों में का भीम चन्द्रवंश में तीसरा भीम है। इनसे पूर्व इस वंश में भीम नाम के दो और राजा हो चुके हैं। यह प्रथम भीम की कथा है। एक समय महाराज भीम मृगया के निमित्त अपनी सेना सहित नर्मदाजी के सघन वनों में गये। नर्मदा तट पर पहुँचकर उन्होंने स्नान दानादि समस्त धार्मिक कृत्य किये। नित्य कर्मों से निवृत्त होकर राजा एक वट वृक्ष की सघन छाया में विश्राम करने लगे। उनके साथी दूसरे स्थान पर ठहरे थे। राजा सुखपूर्वक लेटे हुए थे, उसी समय वे क्या देखते हैं कि नर्मदाजी के जल में से एक परम रूप लावण्यवती युवती सोलहों शृंगार किए हुए राजा के समीप आकर खड़ी हो गयी। राजा ने बड़े सम्भ्रम के साथ नम्रतापूर्वक पूछा—"देवि! तुम कौन हो? यहाँ सघन वन में एकाकी क्यों विचरण कर रही हो?"

देवी ने कहा—"राजन् ! मैं साक्षात् नर्मदा ही हूँ। नर्मदा नदी की अधिष्ठातृ देवी हूँ।"

राजा ने विनयान्वित होकर कहा—"देवि ! आपका स्वागत है। मेरा अहो भाग्य है, जो आपके दर्शन हुए। आपने किस कारण कष्ट किया ? मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताइये।"

नर्मदाजी ने कहा—'राजन् ! मैं आपसे विवाह करना चाहती हूँ।" राजा ने आश्चर्यचकित होकर कहा—"देवि ! आप कैसी बात कर रही हैं। आप साक्षात् शिवजी की पुत्री हैं। देवता, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि मुनि आपकी पूजा करते हैं। आप त्रैलोक्य पूज्या हैं। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ। मेरे साथ आपका विवाह कैसे सम्भव हो सकता है ?"

नर्मदाजी ने कहा—"राजन् ! विधि का ऐसा ही विधान है। देवताओं के कार्य के निमित्त समय-समय पर मुझे ऐसा ही करना पड़ता है। इस समय हिरण्यकशिपु का पौत्र गननप्रिय नामक एक महाबलशाली दैत्य हो गया है। वह और किसी से मारा नहीं जा सकता। आपके सकाश से जो मुझ में पुत्र होगा वही उसका वध कर सकेगा। ऐसा ही ब्रह्माजी ने पहिले से ही विधान बना रखा है, अतः देव कार्य के लिए आप मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करें। पुत्र उत्पन्न हो जाने पर मैं पुनः अपने यथार्थ स्वरूप में मिल जाऊँगी।'

दैवेच्छा समझकर राजा भीम ने नर्मदाजी से विवाह किया और उनके गर्भ से दुःशमन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी सम्बन्ध की कल्पान्त भेद से एक दूसरी भी कथा है। राजा भीम के हो साथ नर्मदाजी का विवाह क्यों हुआ ? ये भीम पूर्व जन्म में कौन थे ? इस सम्बन्ध को भी सुनिये—एक समय समस्त देवगण मिलकर शिवजी की पूजा करने गये। सबने विधि विधान पूर्वक विश्वेश्वर भगवान् विश्वनाथ की प्रेमपूर्वक पूजा की। भगवान् भवानीपति के दाहिनी ओर उनकी सर्वाङ्ग सुन्दरी पुत्री नर्मदाजी भी बैठी हुई थी। देवता में जो अग्निदेव बैठे हुए थे उनका मन नर्मदाजी के दिव्य रूप लावण्य को देखकर मुग्ध हो गया। उनके मन में कामवासना जाग्रत हो गयी। सर्वान्तर्यामी सर्वेश्वर शिवजी अग्नि के मनोभाव को समझ गये। उन्होंने अग्निदेव को शाप दिया—'तैने यह मानवी चेष्टा की है, अतः तू मनुष्यलोक में जाकर मानवी योनि में जन्म लेगा।"

यह सुनकर अग्निदेव के छक्के छूट गये ! उन्होंने विनीत भाव से शिवजी की प्रार्थना की, नाना स्तोत्रों से उनकी स्तुति की। इस पर आशुतोष भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये और बोले—"अग्निदेव ! मेरा वचन कभी अन्यथा नहीं हो सकता। तू मनुष्य योनि में जन्म तो अवश्य लेगा, किन्तु वहाँ भी तू भीम नाम

से चक्रवर्ती राजा होगा। और यह नर्मदा उस जन्म में तेरी पत्नी होगी। उसके गर्भ से तेरा एक बहुत प्रतापशाली पुत्र होगा। वह देवताओं का कार्य करेगा। तब तेरी मुक्ति हो जायगी। तू पुनः अपने पूर्व पद पर प्रतिष्ठित हो जायगा।''

यह सुनकर अग्निदेव को सन्तोष हुआ। वे ही अग्निदेव भीम नाम के चंद्र-वंश मे राजा हुए और उनका विवाह नर्मदाजी के साथ हुआ। उन्हीं से दुःशमन पुत्र हुआ जिन्होंने देवताओं को सङ्कट से छुड़ाया।

देवताओं पर क्या सङ्कट आ पड़ा? इस सम्बन्ध की भी कथा सुनिये। हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद हुए। प्रह्लाद के पुत्र विरोचन। विरोचन के पुत्र शोणितपुर के अधीश्वर वाणासुर हुए और वाणासुर का पुत्र गगनप्रिय हुआ। उसने घोर तपस्या की। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी उसके सम्मुख प्रकट हुए और उससे वरदान माँगने को कहा।

गगनप्रिय असुर ने कहा—'प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे अजर-अमर होने का वरदान दीजिए।''

ब्रह्माजी ने कहा—''देखो भैया! जो उत्पन्न हुआ है, उसे एक दिन मरना ही होगा। इसलिए अमर होने का वर तो मैं दे नहीं सकता। इसके अतिरिक्त जो तुम वर माँगोगे उसे मैं तुम्हें दूँगा।''

तब असुर ने कहा—'तब भगवन्! मुझे एक ऐसा रथ दीजिए, जिसकी अव्याहत गति हो, जो सर्वत्र सञ्चार कर सके और देवता, असुर तथा मनुष्य इन सबको मैं पराजित कर सकूँ। ब्रह्माजी ने तथास्तु कहकर इसे स्वीकार कर लिया।

अब तो गगनप्रिय का अभिमान अत्यधिक बढ़ गया। उसने त्रैलोक्य को अपने वश में कर लिया। देवताओं को पराजित करके उसने उन्हे स्वर्ग से भगा दिया और स्वयं इन्द्र बन बैठा। देवता बड़े दुखी हुए और वे सब मिलकर ब्रह्माजी की शरण में गये और अपना दुःख उन्हें सुनाया। ब्रह्माजी ने कहा—''भैया! ऐसे रोने-धोने से काम नहीं चलेगा पुरुषार्थ करो।''

देवताओं ने कहा—भगवन्! क्या पुरुषार्थ करें। उसके सम्मुख हमारी कुछ चलती ही नहीं।''

ब्रह्माजी ने कहा—'पुरुषार्थ से सब कुछ प्राप्त हो सकता है। देखो, छोटे से पाँच वर्ष के ध्रुव ने पुरुषार्थ से ही तपस्या करके ध्रुव पद की प्राप्ति कर ली। यह असुर मेरे वरदान के कारण दानव, मनुष्य तथा अन्य किसी से मर नहीं सकता। हाँ राजा भीम जब शिव-पुत्री नर्मदाजी से विवाह कर लेंगे तब उनके गर्भ से जो पुत्र पैदा होगा वही इसे मार सकता है। उसका नाम होगा

दुःशमन। वह पूर्व जन्म में वरुण का पुत्र था उसका नाम था पुष्कर। किसी कारणवश इन्द्र उस पर क्रुद्ध हो गये और उन्होंने उसे शाप दिया—"जा तू मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण कर।"

उसकी अनुनय विनय पर इन्द्र ने कहा—"मनुष्य योनि में तो तुझे जन्म लेना ही पड़ेगा, किन्तु तू महाराजा भीम के द्वारा सरित् प्रवरा नर्मदा से उत्पन्न होगा। तू शूरवीर तपस्वी और धर्म परायण होगा। तेरे द्वारा देवताओं का बड़ा उपकार होगा।" वही वरुण का पुत्र पुष्कर नर्मदा में उत्पन्न हो गया है। उसका नाम दुःशमन है, उसके द्वारा ही गगनप्रिय मारा जायगा।"

ब्रह्माजी की बात सुनकर देवगण तपस्या करने चले गये। इधर महाराज भीम के द्वारा नर्मदा में दुःशमन का जन्म हुआ। जब वह १६ वर्ष का हुआ तो उसने नर्मदा किनारे जाकर घोर तपस्या की। उसकी तपस्या से भवानीपति भगवान् भूतनाथ उसके सम्मुख प्रकट हुए और उसे आशीर्वाद दिया कि तेरे द्वारा गगनप्रिय असुर मारा जायगा। तब वह शोणितपुर में गया और युद्ध में गगनप्रिय का वध किया। उन्हीं दुःशमन के पिता महाराज भीम के नाम से भीमेश्वर शिव हैं। रे. खं. ८८ अ.)

१६६—भीमेश्वर के बगल में ही अर्जुनेश्वर नामक शिवलिङ्ग है उसकी कथा इस प्रकार है—हयहयकुल में महाराजा सहस्रबाहु बड़े ही प्रभावशाली शूरवीर बलवान् नृपति हुए। उनकी राजधानी नर्मदा तट पर माहिष्मती पुरी थी। वे परम शिवभक्त थे। एक समय की बात है कि लङ्काधिपति रावण नर्मदा किनारे तपस्या कर रहा था। यह वहाँ पहुँचा। दोनों में घोर युद्ध हुआ। सहस्रार्जुन ने रावण को जीतकर उसे अपनी राजधानी में लाकर बन्दी बना लिया। ऐसा तो वह बली था। दत्तात्रेयजी की कृपा से उसे अनेक सिद्धियाँ प्राप्त थीं, वह सर्वगामी था, जहाँ चाहे वहीं जा सकता था। एक बार सहस्रार्जुन आखेट करते-करते भीमेश्वर जा पहुँचा। वहाँ जाकर जब उसने महाराज भीम के साथ नर्मदा के विवाह की बात सुनी तो उसने स्वयं भी नर्मदा जी से विवाह करने की इच्छा प्रकट की और बाण फेंककर उनके प्रवाह को रोकना चाहा तब ब्राह्मणों ने ऐसा करने से रोका और कहा—"नर्मदाजी तो शिवपुत्री हैं, दिव्य चिन्मयी हैं। तुम अपनी मनोकामना की पूर्ति के निमित्त शिवजी की आराधना करो।" ब्राह्मण की बात मानकर वह रेवातट पर रहकर शिवजी की आराधना करने लगा। इसकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी इसके सम्मुख प्रकट हुए और वर माँगने को कहा।

सहस्रार्जुन ने कहा—"मेरा विवाह नर्मदाजी से करा दें।"

तब शिवजी ने समझाया—"देखो, तुम हमारे पुत्र हो। नर्मदा हमारी पुत्री है, इसलिए विवाह नहीं हो सकता। तुम और कोई वर माँगो।" तब सहस्रार्जुन ने कहा—"यह जो मेरी स्थापित अर्जुनेश्वर नामक शिवलिङ्ग है, इसकी जो भक्त प्रेम से पूजा करे उसके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जायँ।" शिवजी ने तथास्तु कहकर इसे स्वीकार कर लिया। तभी से इस तीर्थ का अधिक माहात्म्य बढ़ गया। जो यहाँ रहकर शिवजी की आराधना करता है और श्रद्धा से स्नान, दान तथा ब्राह्मण भोजन कराता है उसे अग्निष्टोम नामक यक्ष का फल मिलता है। (रे. खं. ८९ अ.)

१६७—अर्जुनेश्वर के सपीप ही **धर्मेश्वरजी** का स्थान है। इसकी कथा नारदीय पुराण आदि अन्य पुराणों में तो विस्तार के साथ वर्णन की गयी है। यहाँ संक्षेप में इसका वर्णन है। प्राचीन काल में रुक्माङ्गद नाम के एक परम भगवत् भक्त वैष्णवाग्रणी राजा थे। वे हरिबासर–एकादशी व्रत के कट्टर पक्ष-पाती थे। समस्त प्रजा के लोगों से कठोरता के साथ एकादशी का व्रत कराया करते थे। यहाँ तक कि हाथी, घोड़ा आदि पशुओं को भी उस दिन आहार नहीं देते थे। उनके प्रभाव से सातों द्वीपों के नर-नारी एकादशी व्रत करने लगे। जो एकादशी व्रत करता है, वह नरक में कभी जा ही नहीं सकता। अतः नरक खाली हो गया। वहां कोई जाता ही नहीं था। इससे धर्मराज (यमराज) बड़े चिन्तित हुए। वे शिवजी के समीप गये और बोले—"भगवन्! मुझे किसी अन्य पद पर प्रतिष्ठित कर दीजिए।"

शिवजी ने पूछा—"क्यों क्या बात है?" तब धर्मराज ने कहा—"महाराज रुक्मांगद के धर्म के कारण सभी लोग वैकुण्ठ जाते हैं। मेरे लोक में कोई आता ही नहीं। मेरा लोक खाली हो गया है। मैं खाली बैठा रहता हूँ। अतः मुझे कोई दूसरा कार्य सौंपा जाय।"

यह सुनकर शिवजी हँसे और बोले—"धर्मराज! इसका उपाय हो रहा है। कुछ काल में महाराजा रुक्माङ्गद वैकुण्ठवासी हो जायँगे। तब तुम्हारा कार्य पुनः चालू हो जायगा। तब तक तुम नर्मदा किनारे रहकर तपस्या करो।" शिवजी की आज्ञा मानकर धर्मराज वहाँ धर्मेश्वर शिवलिंग की स्थापना करके तपस्या करने लगे। तभी से यह धर्मेश्वर नाम से तीर्थ विख्यात हो गया। यहां जप, तप, ब्रत अनुष्ठानादि करके अनेक पुरुषों ने सिद्धि लाभ की है। यहां पृथ्वी दान का बड़ा माहात्म्य है। रे० खण्ड ९० अ०

१६८—यहाँ से कुछ ही दूर रामपुरा के समीप नर्मदाजी के जल में **लुकेश्वर** नाम का स्थान है। इसकी कथा इस प्रकार है—एक कालपृष्ठ

(भस्मासुर) नाम का दैत्य था। उसने नर्मदा तट पर रहकर शिवजी की उग्र आराधना की। इसकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी उसके सम्मुख प्रकट हुए और उससे वर माँगने को कहा। दैत्य ने कहा—"हे देवाधिदेव ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वरदान दीजिये कि मैं जिस-जिसके सिर पर हाथ रखूँ वह भस्म हो जाय। शिवजी तो उसे वर देना नहीं चाहते थे, किन्तु पार्वतीजी को दया आ गई। उन्होंने शिवजी से वरदान देने का आग्रह किया। शिवजी ने पार्वतीजी के कहने से उसे वर दे दिया। अब क्या था वह तो पार्वती जी के रूप लावण्य को देखकर उसके ऊपर आसक्त हो गया। उन्हें लेने की इच्छा से उसने सबसे पहिले अपने वरदाता शिवजी पर ही हाथ रख अपने वर-दाता की सत्यता की परीक्षा करनी चाही। उसके इस दुष्ट विचार को नन्दीश्वर समझ गये, वे उससे युद्ध करने लगे। नन्दी अपने सींगों से उस पर प्रहार करने लगे। बड़ी देर तक दोनों में घनघोर युद्ध होता रहा। शिवजी समझ गये, नन्दी इस दुष्ट से जीत नहीं सकते। वे पार्वती के सहित दक्षिण दिशा की ओर भागे।

उस दुष्ट का उद्देश्य नन्दी को मारने का तो था नहीं। वह तो पार्वतीजी को लेना चाहता था शिवजी को भस्म करके। अत बह नन्दी को छोड़कर शिवजी के पीछे भागा। अवसर पाकर नन्दी भी भागकर शिवजी के समीप पहुँच गये और पार्वतीजी सहित उन्हें अपनी पीठ पर चढ़ाकर दौड़ने लगे। वह दुष्ट दैत्य भी नन्दी के पीछे-पीछे भागने लगा। शिवजी जहां-जहां जाते वह उनके पीछे ही लगा फिरता था। तब देवता शिवजी के इस संकट को देखकर घबरा गये। जब नारदजी को इसका पता लगा तो वे दौड़े-दौड़े विष्णु भगवान् के समीप गये और उनको सब समाचार सुनाकर बोले—"भगवन् ! भगवान् भोलेनाथ अपने भोलेपन से भारी विपत्ति में फँस गये हैं उनकी रक्षा कीजिये।"

तब भगवान् तुरन्त शिवजी के पास आकर धीरे से बोले—"बाबा ! तुम नर्मदाजी के जल में लुक जाओ। इस दैत्य से मैं निपट लूँगा।"

भगवान् की बात मानकर शिवजी नर्मदाजी के जल में लुक (छिप) गये। तब भगवान् विष्णु ने परम सुन्दरी मोहिनी का रूप धारण कर लिया और अपने पतले पतले ओठों में रस भर कर कोकिल कण्ठी वाणी में कहा—"दैत्यराज ! कहाँ दौड़े जा रहे हो, तनिक विश्राम तो कर लो।"

पार्वतीजी से भी सुन्दरी नारी की वीणा विनिन्दित वाणी श्रवण करके दैत्य खड़ा हो गया।"

उससे मोहिनीजी बोली—"क्यों भागे जा रहे हो ?"

तब दैत्य ने कहा—"शिवजी ने मुझे वरदान दिया है कि मैं जिसके भी सिर पर हाथ रखूंगा वह भस्म हो जायगा। अतः पार्वती को पाने की इच्छा से मैं शिवजी को भस्म कर पार्वती को ग्रहण करूँगा।"

यह सुनकर मोहिनी हँस पड़ी और बोली—"छीः छीः ! इतने बड़े दैत्यराज होकर उन भूतों प्रेतों के स्वामी की बातों में आ गये। वे तो जाने क्या बकते रहते हैं। फिर तुम्हारे पास सिर नहीं है क्या ? पहिले परीक्षा कर लो। आओ मेरे साथ नृत्य करो।"

असुर मोहिनी के चक्कर में फँस गया। मोहिनी नाचने लगी। वह भी साथ-साथ नाचने लगा। बोलीं—"हाथ उठाओ। सिर की ओर करो।" बोलो गरम लगता है ? उसने कहा—नहीं। अच्छा और नीचा करो। ऐसे नीचा करते-करते उसके सिर पर हाथ रखा दिया। वह वहीं भस्म हो गया। तब भगवान् विष्णु शिवजी के समीप गये और हँसकर बोले—"भोले बाबा ! ऐसा वर किसी को मत दिया करो।" नर्मदाजी के जल में जहाँ शिवजी लुके थे, वहीं लुकेश्वर तीर्थ प्रसिद्ध हुआ। तब से शिवजी सब देवताओं के सहित यहाँ नर्मदा जल में रहते हैं। यहाँ भजन-पूजन करने से सर्व कर्म सिद्ध होते हैं।

१६९—लुकेश्वर से कुछ ही दूर पर **धनेश्वर** नाम का तीर्थ है। इसकी कथा इस प्रकार है। लोकपाल धन के स्वामी कुबेर ने जब सुना कि यहां आकर शिवजी लुके (छिपे) थे और यह सिद्धि देने वाला स्थान है तो उन्होंने लङ्का को प्राप्ति के निमित्त यहाँ रहकर घोर तपस्या की और अपने नाम से **धनेश्वर** शिवलिङ्ग की स्थापना की। इसके समीप ही इन्द्रद्रोण है। यहाँ अनेक राजाओं ने बहुत-से यज्ञ किये थे। उनकी सुगन्धित भस्म यहाँ से अब तक निकलती हैं।

१७०—धनेश्वर के समीप ही **जटेश्वर तीर्थ** है। भस्मासुर यहीं से शिवजी के पीछे पड़ा था। तब शिवजी की जटा खुल गयी थी, इसी कारण यह जटेश्वर तीर्थ प्रख्यात हुआ। पार्वतीजी द्वारा यह तीर्थ निर्मित हुआ। यहाँ स्नान, दान, पूजा, पाठ और शङ्कर पूजन का बड़ा माहात्म्य है। (रे. खं. अ. ९१, ९२)

१७१—जटेश्वर तीर्थ के समीप ही **मङ्गलेश्वर तीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है—मंगल पृथ्वी के पुत्र हैं। उन्होंने यहाँ आकर १०० वर्ष पर्यन्त शिवजी की उपासना की और अपने नाम से मंगलेश्वर नाम की शिवलिंग की स्थापना की। इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने इन्हें दर्शन दिये और वर माँगने को कहा। तब मङ्गल ने कहा—'प्रभो ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे

ग्रहों में स्थान मिले और आपके चरणों की भक्ति मेरे हृदय में सदैव बनी रहे।" शिवजी ने तथास्तु कहकर यही वर दिया। जिस दिन चतुर्दशी मंगलवार को पड़े उस दिन यहाँ के दर्शनों का बड़ा माहात्म्य है। अंगार चतुर्थी को पूजन करके दान ब्रह्मभोज कराने से ग्रह पीड़ा नहीं होती।

१७२—मंगलेश्वर से लगभग एक मील की दूरी पर **गोपारेश्वर तीर्थ** है। यह तीर्थ गुवार नामक ग्राम के सन्निकट है। इसकी कथा इस प्रकार है कि एक स्वर्ग की कामधेनु गौ घूमती-घूमती यहां आ गयी। नर्मदा तट पर ऐसा सुन्दर स्वच्छ मनोरम स्थान देखकर यहां तपस्या करने लगी। तपस्या करते-करते उसके मन में सङ्कल्प हुआ कि मैं अपने दुग्ध से शिवजी का अभिषेक करूँ। ऐसा सङ्कल्प होते ही उसकी नाभि से शङ्करजी प्रकट हुए। कामधेनु ने प्रसन्नता के साथ शिवजी का अभिषेक किया। इस पर शिवजी प्रसन्न हुए और कामधेनु से वर मांगने को कहा। तब गौमाता ने कहा—'प्रभो! मुझे यह वरदान दीजिए, मैं यथा नाम तथा गुण वाली हो जाऊँ। सभी की कामनाओं की पूर्ति कर सकूँ।" शङ्करजी ने तथास्तु कहकर उनकी इच्छा पूर्ति की। यहां शिवजी का अभिषेक करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है। पर्वों पर यहां कामधेनु आती है। कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को यहां का विशेष माहात्म्य है। (रे. खं. ९२, ९६ अ.)

१७३—गोपारेश्वर तीर्थ से दो मील आगे सहशव ग्राम के समीप **शङ्खचूड़ेश्वर तीर्थ** है यहां पर शङ्खचूड़ नाग ने चिरकाल तक तपस्या की और अपने नाम से शिवलिंग की स्थापना की। यहां शङ्करजी का घृत तथा दुग्ध से अभिषेक करने का बड़ा माहात्म्य है। सर्प दंश से जो मर जाते हैं उन पितरों का यहां तर्पण करने से वे अकाल मृत्यु के दोष से मुक्त हो जाते हैं।

१७४—शङ्खचूड़ेश्वर के समीप ही **बद्री केदारनाथ तीर्थ** है। इस सम्बन्ध की कथा इस प्रकार है—पहिले जो लोग बद्री केदार नाथ की यात्रा को जाते उन्हें पर्वतों की चढ़ाई के कारण तथा हिम–वर्फ के कारण बड़ा कष्ट होता था। बहुत से वृद्ध नर-नारी तो मर ही जाते थे। यह देखकर विभांडक कपिल तथा च्यवन आदि महर्षियों ने यहां रेवातट पर रहकर घोर तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् केदारनाथ प्रकट हुए और ऋषियों से वरदान मांगने को कहा। ऋषियों ने विनम्रता के साथ कहा—'प्रभो! आप तो पहाड़ की बर्फ से ढकी चोटी पर निवास करते हो। वृद्ध पुरुषों को वहां पहुँचने में बड़ा कष्ट होता है। अतः आप यहां निवास करें और यहां रह कर मनुष्यों के मनोरथों को पूर्ण करें।" शिवजी ने तथास्तु कहकर इसे स्वीकार किया। तब

से केदारनाथजी यहां स्थित रहते हैं। यहां माघ, कार्तिक ओर आश्विन की अष्टमी चतुर्दशी का बड़ा माहात्म्य है। यहां दान पुण्य तथा वेद का पारायण करना चाहिए। (रे. खं. ९६ अ.)

१७५—बद्री केदारनाथ तीर्थ के समीप ही **पाराशर तीर्थ** है। यहां पराशर मुनि ने पुत्र की कामना से शिव पार्वती की आराधना की थी। इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शङ्करजी पार्वती के सहित प्रकट हुए और इनसे वरदान मांगने को कहा। तब ऋषि ने कहा—"प्रभो! मुझे विद्वान्, ज्ञानवान् प्रतिभाशक्ति सम्पन्न पुत्र की प्राप्ति हो।"

तब पार्वतीजी ने कहा—"तुम्हें अपनी पत्नी से पुत्र की प्राप्ति न होगी। शिवजी से वर माँगो इससे तुम्हें ऐसे पुत्र की प्राप्ति होगी।" शिवजी के वरदान से ही शिवस्वरूप अभाल लोचन शम्भु श्री व्यासदेव का जन्म हुआ। तभी से यह **पाराशरतीर्थ** विख्यात हुआ। यहां हरगौरा पूजन का विशेष माहात्म्य है। विशेषकर माघ, चैत्र, बैशाख, श्रावण तथा मार्गशीर्ष की नवमी चतुर्दशी का विशेष फल है।

१७६—पाराशरतीर्थ से आगे **भीमेश्वरतीर्थ** है इसकी कथा इस प्रकार है। एक समय मुद्गल आदि कई ऋषियों ने मिलकर भीमव्रत किया जिसे, रौद्रव्रत भी कहते हैं। इस व्रत के प्रभाव से शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रकट होकर ऋषियों से वरदान मांगने को कहा। तब ऋषियों ने कहा—"प्रभो! यहां सदा सर्वदा आपकी सन्निधि रहे और आप यहां भीमव्रत करने वाले को मनोवांछित फल दें।" शिवजी ने यही वर दिया। यहां भीमव्रत तथा गायत्री के अनुष्ठान का बहुत माहात्म्य है। यहां ओंकार का विधिवत् ध्यान करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है। चतुर्दशी रविवार को दान पुण्य ब्रह्मभोज का अत्यधिक माहात्म्य है।

भीमेश्वरतीर्थ के सन्निकट ही **तेजोनाथ** अथवा वैद्यनाथ तीर्थ है इसकी कथा कैलास पर स्थित शिवजी ने अपने पुत्र कार्तिकेयजी से इस प्रकार कही—"जब प्रलयकाल समाप्त हुआ तब ब्रह्माजी को आकाशवाणी हुई कि 'तुम सृष्टि कार्य आरम्भ करो।"

अब ब्रह्माजी सोचने लगे—"मैं किस प्रकार सृष्टि आरम्भ करूँ।" ब्रह्माजी इसी प्रकार सोच में मग्न थे कि उनके ललाट से तुरन्त तेजोमय शङ्करजी प्रकट हो गये। ब्रह्माजी आश्चर्यचकित हो गये। तब शङ्करजी ने कहा—"हे ब्रह्मदेव मैं स्वयं प्रकट होकर आपके सम्मुख समुपस्थित हूँ। आज्ञा कीजिए। यह कहकर शङ्करजी रोने लगे।" तब ब्रह्माजी ने कहा—"तुम उत्पन्न होते ही रोने लगे, इससे तुम्हारा नाम रुद्र होगा। तुम सृष्टि करो।"

ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर रुद्रदेव ने अपने समान पांच सौ करोड़ रुद्रगण उत्पन्न किये। वे विकराल वेष वाले परस्पर ही लड़ने लगे। तब ब्रह्माजी ने कहा—"रुद्रदेव ! दया करो ऐसी रौद्री सृष्टि से कार्य नहीं चलेगा। यह आपकी ही सृष्टि रहे।" तब ब्रह्माजी ने पृथ्वी की रचना की जिससे समस्त चराचर सृष्टि उत्पन्न हुई। ब्रह्माजी के ललाट से जो तेज प्रकट हुआ था। वे ही तेजोनाथ के नाम से संसार में विख्यात हुए। (रे० खं० ९६-९७-९८ अ०)

यहाँ तेजोनाथजी में रहकर गरुड़जी ने भी पन्द्रह सहस्र वर्ष तपस्या की थी। उसकी कथा इस प्रकार है—एक समय भगवान् विष्णु क्षीरसागर में शेष की शैया पर सुख से शयन करहे थे। उनकी नित्य शक्ति भगवती लक्ष्मी शनैः-शनैः उनके चरणों को चाप रहीं थीं। अन्य ऋषि मुनि उनकी स्तुति कर रहे थे। भगवान् के समीप ही गरुड़जी विराजमान थे। गरुड़जी के मन में अपने बल का कुछ अहंकार उत्पन्न हो गया। वे सोचने लगे—"देखो, मैं कितना बलशाली हूँ। त्रैलोक्य को अपने में धारण करने वाले भगवान् विष्णु को मैं धारण करता हूँ। भगवान् मेरे अधीन हैं वे मेरे बिना कहीं जा नहीं सकते।" घट-घट की जानने वाले सर्वान्तिर्यामी भगवान् समझ गये कि गरुड़ को अपने बल का अभिमान हो गया है। पतन के लिये अभिान से बढ़कर कोई दुर्गुण नहीं। उत्थान के लिए नम्रता, दीनता, शील से बढ़कर कोई सद्गुण नहीं। गरुड़ के गर्व को मुझे दूर करना चाहिए। यह सोचकर भगवान् ने अपने अँगूठे से गरुड़जी के शरीर को दबा दिया। इसी से गरुड़जी घबरा गये। वे रक्त की बमन करने लगे। तब हँसकर भगवान् ने कहा—"गरुड़जी ! मेरे बोझ को संसार में कौन सहन कर सकता है। यह तो मैंने तुम्हारे गर्व को खर्व करने के निमित्त तुम्हें दृश्य दिखाया है। ऐसा गर्व होना अज्ञान का द्योतक है। अब तुम ज्ञान प्राप्ति के निमित्त नर्मदा तट पर जाकर तपस्या करो। जब शरीर तपस्या के क्लेश से कष्ट सहन करेगा तभी तुम्हारा अज्ञान नष्ट होगा।"

तब गरुड़जी ने विनीत भाव से पूछा—'प्रभो ! रेवातट पर मैं किस स्थान पर तपस्या करूँ ?"

इस पर भगवान् ने बताया—"वहाँ तेजोनाथ नामक तीर्थ है, वहीं तपस्या करने से तुम्हें तेज की, ज्ञान की प्राप्ति होगी।"

भगवान् की आज्ञा पाकर गरुड़जी ने यहाँ पन्द्रह सहस्र वर्षों तक तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की। उन्हें पूर्ण ज्ञान की उपलब्धि हुई। इस तीर्थ में गोदान, भूमिदान, कन्यादान, ग्रन्थदान आदि का बड़ा माहात्म्य है [रे० खं० अ०-९९]

इस तीर्थ में सुरवैद्य अश्विनीकुमारों ने भी एक सहस्र वर्ष तक तपस्या की थी उसकी कथा इस प्रकार है—"वाराह कल्प में ब्रह्माजी के पूर्व की भाँति सृष्टि आरम्भ की। तब विवस्वान्-सूर्य-के बडवा रूपा मूर्ति से अश्वनीकुमारों का जन्म हुआ। ब्रह्माजी ने कहा—तुम लोग सबकी व्याधियों का हरण किया करो। तुम देवताओं के वैद्य होगे।"

ब्रह्माजी की आज्ञा होने पर ये लोग चिन्तित हुए कि हम किस प्रकार सबकी व्याधियों का हरण करें। इसी चिन्ता में मग्न होकर ये पृथ्वी पर परिभ्रमण करने लगे। घूमते-घूमते एक दिन इन्हें देवर्षि नारद के दर्शन हुए। नारदजी ने इनसे इनकी चिन्ता का कारण पूछा, तब इन्होंने बताया। ब्रह्माजी ने हमें व्याधि हरण की आज्ञा दी है, हम कैसे प्राणियों की व्याधि-हरण में समर्थ हो सकें?

तब नारदजी ने कहा—"देखो, हम तुम्हें उपाय बताते हैं। तुम श्रीनर्मदाजी के तट पर चले जाओ! वहां तेजोनाथ नामक तीर्थ स्थान है। वहां जाकर शिवाराधना पूर्वक तपस्या करो। तुम व्याधिहरण में समर्थ हो जाओगे। शिवजी की कृपा से तुम्हें परम सिद्धि प्राप्त हो जायगी।"

नारदजी की आज्ञा से इन्होंने यहां तेजोनाथ में रहकर एक सहस्र वर्ष पर्यन्त घोर तपस्या की। इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् भूतनाथ भवानीपति इनके सम्मुख प्रकट पुए और वर माँगने को कहा। तब अश्विनी कुमारों ने कहा—"प्रभो! हम समस्त व्याधियों को हरण करने सामर्थ्यवान् हों। ऐसा हमें वरदान दीजिये।"

तब शिवजी ने तथास्तु कहकर इन्हें मनोवाँछित वरदान दिया। तभी से ये तीनों लोकों में वैद्यराज के नाम से प्रसिद्ध हो गये। इसीलिए तेजोनाथजी को वैद्यनाथ भी कहते हैं। यहां शिवजी की सन्निधि में तपस्या करने और शिवाराधन करने से रोगों से निवृत्ति होती है। वैद्य यहां आकर जप-तप और पूजन करें तो उन्हें वैद्य विद्या में परमसिद्धि प्राप्त हो सकती हैं। सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण के समय यहां स्नान पूजन करने से समस्त बड़े-बड़े तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त होता हैं। यहाँ अष्टमी तथा चतुर्दशी को स्नान का विशेष माहात्म्य है। (रे० खं० अ० १००)

१७७—भीमेश्वर तीर्थ से दो मील आगे तेजोनाथ हैं। तेजोनाथ के समीप ही बांदरिया ग्राम में **बानरेश्वर तीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है—बानरों कें राजा सुग्रोव ने भगवान् की रावण वध के युद्ध में सहायता की थी। रावण का वध करके जब भगवान् पुष्पक विमान से अयोध्या को आने लगे तब मार्ग

बड़ी प्रशंसा की। तब में उन्होंने नर्मदाजी के दर्शन करके तेजोनाथ तीर्थ की
बानरराज सुग्रीव ने ब्रह्महत्या के पाप से निवृत्त होने के निमित्त यहाँ घोर
तपस्या की और सभी बानरों ने मिलकर यहाँ बानरेश्वर शिवलिङ्ग की स्थापना
की। यहाँ के दर्शन से समस्त कामनायें पूर्ण होती हैं [रे॰ खं॰ अ॰ १०१]

१७८—बानरेश्वर के समीप ही **ब्रह्मेश्वर तीर्थ** है। यह बहुत ही प्राचीन
सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है। प्रत्येक कल्प में यह भिन्न-भिन्न नामों से विख्यात होता है।
जैसे प्रथम कल्प में इसे ब्रह्माजी ने प्रकट किया इसलिए इसका नाम **ब्रह्मेश्वर**
प्रकट हुआ। द्वितीय कल्प में भगवान् विष्णु के तप करने से इसका नाम चक्रे-
श्वर हुआ। तृतीय कल्प में इन्द्र ने यहां तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की इसीलिए
इसका नाम **शक्रेश्वर** हुआ। चतुर्थ कल्प में यमराज ने सहस्र वर्ष तप किया
इससे इसका नाम **धर्मेश्वर तीर्थ** हुआ। पंचम कल्प में लोकपाल वरुण ने तप
किया। इससे इसका नाम **वरुणेश्वर** हुआ। छटे कल्प में धन के अधिष्ठातृदेव
कुवेरजी ने तप किया इसीलिए इसका नाम **धनेश्वर** हुआ। सातवें कल्प में
मार्कण्डेय ऋषि ने यहाँ तप किया, इसलिए इसका नाम **कुम्भेश्वर** हुआ
शनिश्चर ने भी यहां अपने क्रोध को शान्त करने के निमित्त बृहस्पतिजी की
आज्ञा से तप किया और अपने नाम से **शनिश्चर** की स्थापना की। इनके दर्शन
से शनि आदि ग्रहों की शान्ति होती है। नासिक के कुम्भ का फल यहाँ दर्शन
से मिलता है श्रावण के शनिवार का यहां विशेष माहात्म्य है। यहां दान धर्म
वेदपाठ से शिवजी प्रसन्न होते हैं। कुम्भ की स्थापना से कुम्भेश्वर नाम पड़ा।
वहां लिंग प्रगट हुआ था।

१७९—**ब्रह्मेश्वर** तीर्थ के समीप ही **रामेश्वरतीर्थ** है। यहाँ रावण के वध के पश्चात् ब्रह्महत्या के शमनार्थ श्री रामचन्द्रजी ने तपस्या की थी। अतः उनके नाम से रामेश्वर लिंग है। लक्ष्मणजी के नाम से **लक्ष्मणेश्वर** है, **जीमूत** (मेघ) द्वारा स्थापित **मेघेश्वर** है यहां अप्सरा तीर्थ भी है। मस्त्यक मुनिद्वारा स्थापित मच्छकेश्वर भी यहीं हैं। यहाँ स्नान दान पूजनादि से समस्त कर्म फलदायी होता है। [रे॰ खं॰ १०३]

१८०—ब्रह्मेश्वर आदि तीर्थ जीगोर ग्राम के समीप है जीगोर से ४ मील दूर कठोरा नाम का ग्राम है उसके समीप **हनुमन्तेश्वर तीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है—लङ्का युद्ध में हनुमानजी ने रावण के पुत्रों को मारा था। रावण ब्राह्मण था। अतः ब्रह्महत्या से छूटने के लिए श्रीरामचन्द्रजी ने तथा समस्त वानरों ने लक्ष्मण जी ने तपस्या की थी। श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—"हनुमानजी! तुमने भी तो रावण के पुत्रों को मारा है, तुम्हें भी तो **ब्रह्महत्या** का पाप लगा है। तुम भी रेवातट पर जाकर शिवजी की आराधना करो। **ब्रह्महत्या** निवारणार्थ तपस्या करो।"

हनुमानजी ने कहा—''अजी, महाराज ! मैं क्या तपस्या करूँ ? मैं तो उड़कर अभी कैलाश जाता हूँ, शंकरजी से जाकर वैसे ही अपराध क्षमा करा सकता हूँ। श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—''जैसी तुम्हारी इच्छा।''

यह सुनकर हनुमानजी उड़कर कैलाश पर्वत पर पहुँचे। शिवजी के दर्शनों को जाने लगे तो द्वार पर विराजमान नन्दीश्वर ने पूछा—''हनुमानजी ! कहाँ जा रहे हो ?'' हनुमानजी ने कहा—'शिवजी के दर्शनों को जा रहे हैं।''

नन्दीश्वर ने कहा—''आप भीतर नहीं जा सकते।''

हनुमानजी ने कहा—''क्यों भाई ! क्या बात है। शिवजी तो सबके हैं।'' नन्दी ने कहा—''देखो जी, शिवजी सबके हैं, यह तो सत्य है। किन्तु तुमने रावण के लड़कों को मारा है। लङ्का जलाई है, तुम्हें ब्रह्महत्या लगी है। जब तक तुम नर्मदा किनारे जाकर तपस्या करके अपने पाप को नहीं छुड़ा लेते तब तक तुम शिवजी के दर्शनों के अधिकारी नहीं हो सकते।'' यह सुनकर हनुमानजी लौटकर फिर रामचन्द्रजी के समीप आये। और सब वृत्तान्त सुनाया तब रामचन्द्रजी ने कहा—''भैया ! हम तो तुमसे पहिले ही कह रहे थे, अब तुम रेवातट पर जाकर तपस्या करो।''

श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से हनुमानजी यहाँ आये और घोर तपस्या करके ब्रह्महत्या का प्रायश्चित करके पाप से छूटे। उनके नाम से ही समीप के ग्राम का नाम कपिस्थितापुर पड़ा। उन्हीं के नाम से इस तीर्थ का नाम हनुमन्तेश्वर पड़ा। यहां हनुमान् कवच का पाठ करने का विशेष माहात्म्य है। मन्दिर बड़ा विशाल सुन्दर है घाट भी सुन्दर है।

१८१—हनुमन्तेश्वर से दो मील पोयचा ग्राम के समीप **पूतिकेश्वर महादेवजी** का प्राचीन मन्दिर है। यहां पूर्वकाल में जाम्बवान, सुषेण तथा नील ने तपस्या की थी। उनके शस्त्र प्रहार से जो व्रण (घाव) हो गये थे वे अच्छे हो गये। नर्मदाजी के तट पर ही यह ग्राम है। उस पार चांदोद के पक्के मकान तथा पूरा नगर दीखता है।

१८२—जाम्बवान् सुषेण और नील द्वारा पोयचा ग्राम में जो पूतिकेश्वर शिव हैं, वहाँ से तीन मील आगे **नलेश्वर तीर्थ** है। श्रीरामचन्द्रजी की सेवा में जो नील और नल स्थापत्य विद्या के आचार्य वानर थे, जिन्होंने सागर पर सेतु बनाया था। उनमें से नल नामक वानर ने अनेकों वानरों के सहित ब्रह्महत्या मिटाने को यहाँ तप किया था और अपने नाम से नलेश्वर शिवलिङ्ग की स्थापना की यहाँ तपस्या करने का बड़ा माहात्म्य है यहाँ पर अनेकों पुरुषों ने सिद्धि प्राप्त की है। माघी पूर्णिमा को यहाँ का विशेष माहात्म्य है। (रे. खं. १४४ अ.)

१८३—नलेश्वर तीर्थ से तीन मील आगे रुण्डग्राम के समीप करंज्या नदी का संगम है जिसे नागवा नदी भी कहते हैं। संगम के समीप ही **नागेश्वर तीर्थ** है यहाँ कभी नागेश्वरनाथ का मन्दिर भी रहा होगा। अब तो वह टूट-फूट गया है। यहाँ वासुकी नाग ने तपस्या की थी। इसकी कथा इस प्रकार है—शिवजी के सिर पर सरित् प्रवरा गंगाजी तो सदा विराजमान ही रहती हैं। एक बार पार्वतीजी के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई कि यह नदी सदा शिवजी के सिर पर ही चढ़ी रहती है। इसे शिवजी ने न जाने क्यों सिर पर चढ़ा रखा है। शिवजी से तो प्रत्यक्ष में कुछ कहा नहीं।

एक दिन शिवजी से कहा—"महाराज! ताण्डव नृत्य कीजिये।" शिवजी ताण्डव नृत्य के लिए सदा तैयार ही रहते हैं। अतः उन्होंने ताण्डव नृत्य किया। नृत्य के समय गंगाजल नीचे गिरने लगी। शिवजी के शरीर पर सर्प तो सदा लिपटे ही रहते हैं। पार्वतीजी ने वासुकी नाग से कहा—"तू इस गंगाजल को पीता जा।" माता की आज्ञा से वासुकी गंगाजल पीता गया। गंगाजी को यह बुरा लगा। उन्होंने वासुकी को शाप दिया—'तू शिवजो की सेवा से पतित हो जा।'

इस पर वासुकी ने गंगाजी की बहुत अनुनय विनय की। तब गंगाजी ने कहा—"तू विन्ध्याचल की तलहटी में जाकर तपस्या कर शिवजी की आराधना करने से तुझे पुनः अपना स्थान प्राप्त हो जायगा।"

माता गंगाजी की आज्ञा पाकर वासुकी ने यहाँ आकर अपने नाम से शिव-लिङ्ग की स्थापना करके घोर तपस्या करी। इससे शिवजी उसके सम्मुख प्रत्यक्ष प्रकट हुए और उसे आज्ञा दी—तैंने जो गंगाजल पान किया है इसे नर्मदाजी की करंजतरुनी गुफा में उगल दे और नर्मदाजी में स्नान कर। इससे तुझे पूर्व स्थान की प्राप्ति हो जायगी। वासुकी ने ऐसा ही किया। उसने करंज-तरुनी गुफा में गंगाजी को उगल दिया। वहाँ करंज्या वासुकी नाग से उगली नागवा नदी हो गई। जो नर्मदाजी में आकर मिल गई। उसमें वासुकी नाग ने स्नान किया, इससे वह पाप रहित हो गया। उस संगम के समीप ही शिवजी ने जलक्रीड़ा की। इसलिए वह स्थान **रुद्रकुण्ड** प्रसिद्ध हुआ। वह कुण्ड नर्मदाजी के भीतर है। अष्टमी, चतुर्दशी का यहाँ विशेष माहात्म्य है।

१८४—नागेश्वर से कुछ ही दूर पर **शुकेश्वर तीर्थ** है यहीं कर्णेश्वर, मार्कण्डेश्वर तथा रणछोरजी आदि तीर्थ हैं। व्यास पुत्र श्रीशुकदेवजी ने यहाँ पर सौ वर्ष पर्यन्त तपस्या की। इनकी तपस्या से शंकरजी प्रसन्न होकर इनके सम्मुख प्रकट हुए और वरदान माँगने को कहा तब शुकदेवजी ने कहा—'मेरा ... आपके चरणों में भक्ति तथा योग शक्ति मुझे प्राप्त हो। और

आप यहाँ सर्वदा विराजमान होकर भक्तों की मनोकामना पूर्ण करें।" शिवजी ने तथास्तु कहकर ये सब वरदान दिए। शुकेश्वर का विशाल मन्दिर टीले पर है। सीढ़ियाँ चढ़कर जाना पड़ता है मन्दिर की मरम्मत आदि की व्यवस्था उचित प्रकार से नहीं है।

यहीं पर समीप में–नर्मदाजी के बीच में द्वीप में–**मार्कण्डेश्वर तीर्थ** है। उसकी कथा इस प्रकार है। यहाँ **व्यास तीर्थ** है। भगवान् वेदव्यासजी यहीं कुछ दिन निवास करते थे। एक समय चिरजीवी भगवान् मार्कण्डेयजी व्यास-जी के दर्शनों के निमित्त यहाँ पधारे। स्थान सुन्दर देखकर कुछ दिन रह गये और अपने नाम से शिवलिंग की स्थापना की। शिवजी की कृपा से यहाँ पूजन भजन करने से मनोकामना पूर्ण होती है। (रे. खं. १०८, ११७, ११८)

१८५—शुकेश्वर से चार मील आगे एक और **मार्कण्डेश्वर तीर्थ** है। उसकी कथा इस प्रकार है—कोई महात्मा मृग शरीर धारण करके नर्मदा किनारे विचरण कर रहे थे। किसी राजा ने उन्हें मृग ही मानकर अपने वाण से उनका वध कर डाला। उसे मालूम हुआ कि ये तो मृग वेष में ऋषि थे तो पाप के प्रायश्चित निमित्त वह राजा मार्कण्डेय मुनि की सेवा में गया। वहाँ उसने आठ दिन निवास किया। मुनि की आज्ञा से वह समस्त तीर्थों की यात्रा के निमित्त पृथ्वी पर भ्रमण करता रहा, किन्तु उसके मन में नर्मदाजी सदा बसी रहीं। अतः वह लौटकर नर्मदा किनारे आया और नागेश्वर पहुँचकर करंज्या का स्नान किया, तब उसका चित्त शुद्ध हो गया। पापरहित बन गया। तब उसे शिवजी ने ज्ञान दिया। यहाँ सभी कर्मों की सिद्धि होती है। अष्टमी का यहाँ विशेष माहात्म्य है।

१८६—मार्कण्डेय तीर्थ से एक मील आगे ओरी ग्राम के निकट कोटिनार में **कोटेश्वर तीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है—यह त्रेतायुग की बात है एक बार त्रेतायुग में दश वर्षों तक वर्षा नहीं हुई। सब देशों से भाग-भागकर करोंड़ों नर-नारी यहाँ कोटिनार पुर में आ गये। यहाँ आकर करोड़ों पुरुषों ने घोर संकट के विमोचन निमित्त भगवान् कोटेश्वर की स्थापना करके उनकी पूजा की। इससे शिवजी ने सभी की रक्षा की। यहाँ स्नान दान पितृ तर्पणादि का अनन्त माहात्म्य है। (रे. खं. २१९ अ)

१८७—कोटेश्वर से २ मील आगे **मुकटेश्वर तीर्थ** है। उसकी कथा इस प्रकार है—दक्ष प्रजापति को शिवजी ने प्रजापतियों का सभापति बनवा दिया। तब उन्हें बड़ा अभिमान हो गया। प्रयागराज के प्रजापतियों के सत्र में दक्ष सभापति बनकर मण्डप में आये। सब लोग तो उनके आने पर उठकर खड़े हो गये। किन्तु ब्रह्माजी और शिवजी अपनी पीठ पर बैठे ही रहे। इस पर दक्ष ने

शिवजी को यज्ञों में भाग न देने का शाप दिया। दक्ष ने ही यज्ञ आरम्भ किया। उसमें सबको बुलाया किन्तु शिव पार्वती को नहीं बुलाया। पार्वतीजी हठ करके बिना बुलाये अकेली ही चली गयीं। वहाँ शिवजी का भाग न देखकर उन्होंने योगाग्नि में अपने शरीर को भस्म कर दिया। नारदजी से यह सब समाचार सुनकर शिवजी ने क्रोध करके वीरभद्र को उत्पन्न किया। उसने जाकर दक्ष के यज्ञ को विध्वंस कर दिया। फिर देवताओं की प्रार्थना पर शिवजी कैलास से आये। दक्ष यज्ञ को पूर्ण करके आप नर्मदा किनारे सीधे चले आये। कैलास से आते समय वे अपना मुकुट भूल आये थे। पीछे से उनके गण मुकुट लेकर नर्मदा तट पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा शिवजी तो वहाँ हैं नहीं, उनके स्थान पर एक दिव्य लिङ्ग है। तब गणों ने उसी लिंग को मुकुट धारण कराया। इसीलिए मुकटेश्वर के नाम से विख्यात हुए।[१]

१८८—मुकुटेश्वर सिसोदरा ग्राम के समीप हैं, उस ग्राम से थोड़ी ही दूर पर कांदरोल ग्राम है उसके समीप **स्कन्देश्वर** शिव हैं, यहाँ शिवजी के पुत्र षडानन-स्कन्द-कार्तिक स्वामी ने एक सहस्र वर्ष पर्यन्त तपस्या की थी। उन्होंने अपने नाम से स्कन्देश्वर शिवलिंग की स्थापना की थी। ये समस्त देवताओं के सेनापति थे। यहाँ का बड़ा महात्म्य है।[२] (रे. खं. १२०-१२३)

१८९—स्कन्देश्वर से आगे कासरोला ग्राम है, इसके समीप ही **नर्मदेश्वर** हैं। इसकी कथा इस प्रकार है। एक समय ब्रह्माजी ने यहाँ पर एक बहुत बड़ा यज्ञ किया। उसमें देवता, असुर, गन्धर्व, नाग, वृक्ष, नदियाँ, समुद्र सभी आये। यज्ञ बड़ी धूम धाम से हुआ। सब ऋषि मुनि उपस्थित थे। वहाँ मार्कण्डेय मुनि भी थे। देवता और ऋषियों में चर्चा होने लगी कि समस्त नदियों में भागीरथी गंगा श्रेष्ठ हैं। ब्रह्माजी ने गंगाजी को छोड़कर यहाँ नर्मदा तट पर ही यज्ञ क्यों किया?

इस पर सभी मौन हो गये। समस्त सरिताओं के स्वामी समुद्र भी वहाँ उपस्थित थे। तब उन्होंने समस्त नदियों में पातक नाश करने की शक्ति देखी। उस सबमें नर्मदाजी ही श्रेष्ठ ठहरीं। औरों में स्नान दानादि करने पाप नष्ट होते हैं। नर्मदाजी के तो दर्शन मात्र से पाप नष्ट हो जाते हैं। ऐसा निश्चय होने पर देवताओं ने नर्मदाजी पर पुष्पों की वर्षा की। उस समय सभी ने बड़े प्रेम से नर्मदाजी में स्नान किया।

समस्त ऋषि मुनि तो नर्मदाजी में स्नान कर रहे थे. किन्तु मार्कण्डेय मुनि नर्मदा तट पर चुपचाप खड़े थे। तब नर्मदा मैया ने ही मार्कण्डेय मुनि से पूछा—

१. सर्वे मज्जन्ति मुनयः त्वं कथं नैव मज्जसि ?
नर्मदे ! तव दर्शनान्मुक्ति न जाने स्नानजं फलम्।

"मुनिवर ! समस्त ऋषि मुनि मुझमें स्नान कर रहे हैं और आप क्यों नहीं करते ?"

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—"माँ ! जब तुम्हारे दर्शनों से ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है तो न जाने स्नान से क्या फल होगा ?" मैं मुक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहता। इसीलिए स्नान नहीं कर रहा हूँ। यह सुनकर नर्मदाजी प्रसन्न हुयीं। सभी देवता ऋषि मुनियों ने मिलकर श्री नर्मदेश्वर की स्थापना की। तभी से यह तीर्थ प्रसिद्ध हुआ। यहाँ पौष कृ० पंचमी का तथा वैशाख मास के स्नान का विशेष माहात्म्य है।

१९०—नर्मदेश्वर के समीप ही ब्रह्मेश्वर तीर्थ है और पास में ही **ब्रह्मशिला तीर्थ** है। इसकी भी कथा सुनिये—प्राचीन काल में एक सबल नाम के राजा थे। उनके महावित्त और घातकी नाम के दो पुत्र हुए। दोनों ही परम पराक्रमी तथा बलवान् थे। महावित्त के उसी के समान बहुत से पुत्र हुए। पुत्रों के भी पुत्र हुए। उसके वंस की बहुत वृद्धि हुई किन्तु घातकी के कोई सन्तान नहीं हुई। उसने बहुत काल तक नर्मदा किनारे सन्तान के निमित्त बहुत यज्ञ, दान तथा तपादि किए। किन्तु उसकी मनोकामना पूर्ण नहीं हुई। उसी समय लोकपितामह ब्रह्माजी वहाँ तपस्या करने पधारे। घातकी को तप करते हुए ब्रह्माजी ने उससे पूछा—'राजन् ! तुम किसलिए तप कर रहे हो ?"

घातकी ने कहा—"भगवन् ! मेरे कोई सन्तान नहीं है, इसलिये पुत्र प्राप्ति हेतु मैं यहाँ तपस्या कर रहा हूँ।"

तब ब्रह्माजी ने उसे बहुत पुत्र होने का वरदान दिया और उस तीर्थ का नाम ही राजा के नाम से **घातकी तीर्थ** रख दिया। ब्रह्माजी ने सृष्टि वृद्धि हेतु यहाँ तपस्या की और जो यज्ञ किया उस यज्ञ की वेदी ही शिला बन गयी। वह शिला ही ब्रह्मतीर्थ है। यहाँ पुत्र कामना हेतु तप करने का माहात्म्य है। वैशाख महीने में स्नान करने का विशेष फल है। १९१—ब्रह्मशिला से दो मील आगे **बाल्मीकेश्वर तीर्थ** है। यहाँ महर्षि वाल्मीक जी ने तपस्या करके आदि काव्य वाल्मीक रामायण की रचना की। उन्होंने आदि कवि का पद प्राप्त किया। यह स्थान वराछा ग्राम के संनिकट है। (रे. खं. १२७, १२८, अ.)

१९२—बाल्मीकेश्वर तीर्थ से एक मील आगे **कोटीश्वर तीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है—हमारे शिवजी तो औघड़दानी हैं। एक बार वे कापालिक वेष में कपाल हाथ में लेकर भिक्षा के निमित्त निकले। नर्मदा किनारे आकर उनके हाथ से कपाल गिर गया। शिवजी उसे उठाने लगे, वह उठे ही नहीं वहीं-चिपक गया—जम गया। अब शिवजी चिन्तित हुए उसे खोदकर निकालने [illegible]ले। लोगों ने समझाया भी—"महाराज ! क्यों इसके पीछे

व्यर्थ परिश्रम कर रहे हैं ?" किन्तु बड़ों की बड़ी बात होती है, शिवजी माने ही नहीं। इतने में ही कहीं से घूमते-घामते श्री नारदजी वहाँ आ पहुँचे। शिवजी की ऐसी लीला देखकर बहुत हँसे और बोले—'महाराज! यह क्या कौतुक कर रहे हैं ?" शिवजी ने कहा—"हमारा कपाल जम गया है, इसे खोदकर निकाल रहे हैं।"

नारदजी ने कहा—"अजी, महाराज! क्या आप इस छोटी-बात के लिये परिश्रम कर रहे हैं। आप कैलास चलिये सब निकल आवेगा।"

नारदजी का इतना कहना था कि शिवजी वहाँ से तुरन्त अंतर्धान हो गये। अब कपाल के स्थान से तुरन्त वहाँ एक दिव्य शिवलिङ्ग प्रकट हुआ। नारदजी ने सब लोगों से कहा-"अरे, तुम सब लोग बड़े भाग्यशाली हो गये **कपालेश्वर** शिवजी प्रकट हो गये। इनका पूजन करो।"

नारदजी की आज्ञा पाकर करोड़ों लोगों ने उनका पूजन किया, इसलिये वे **कोटेश्वर** के नाम से विख्यात हुए। इनके दर्शन पूजन से सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। (रे. खं० १२८ अ०)

१९३—काटेश्वर से एक मील आगे पंचमुखी हनुमानजी हैं। इससे कुछ ही दूर पर १३—**तारकेश्वर** हैं।

१९४—तारकेश्वर से लगभग डेढ़ मील आगे **इन्द्रकेश्वर तीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है—जब देवगुरु वृहस्पति का इन्द्र ने गर्व के कारण सम्मान नहीं किया तो वृहस्पतिजी देवताओं को छोड़कर चले गये। पुरोहित के बिना काम कैसे चले इसलिये भगवान् की आज्ञा से त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को देवताओं ने अपना पुरोहित बना लिया। वह भीतर-ही-भीतर असुरों का भी भला करने लगा। तब इन्द्र ने उसका वध कर दिया। इस पर क्रुद्ध होकर त्वष्टा मुनि ने यज्ञ के द्वारा वृत्रासुर को उत्पन्न किया। वह भी लड़कर इन्द्र के हाथों मारा गया। अब इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी। ब्रह्महत्या के निवारणार्थ इन्द्र सभी तीर्थों में गये किन्तु उनकी ब्रह्महत्या छूटी नहीं। तब उन्होंने नर्मदा किनारे यहाँ आकर दस सहस्र वर्षो तक तपस्या की। तब ब्रह्माजी यहाँ आये और उस ब्रह्म-हत्या के चार भाग किये। एक भाग जल को दिया। इसलिये जल को अँगुलियों से हिलाकर तब स्नान करे। (२) दूसरा भाग पृथ्वी को दिया। (३) तीसरा भाग स्त्रियों को दिया। वह मासिक धर्म के रूप में हैं इसलिये रजस्वला का स्पर्श न करे। (४) चौथा भाग उन नाम के ब्राह्मणों को दिया जो कृषि कर्म करके, गौ आदि बेचकर, रस बेचकर तथा भृत्य कर्म करके अपनी आजीविका चलाते हैं ऐसे ब्रह्म बन्धुओं से शुभ कार्य न करावे।"

जब इन्द्र ब्रह्महत्या के दोष से मुक्त हो गये तब शिवजी की आज्ञा से उन्होंने अपने नाम से **इन्द्रकेश्वर** शिवजी की स्थापना की। जिनके दर्शन स्पर्श पूजन से और यहाँ तप करने से ब्रह्महत्यादि पापों से छूट जाते हैं। (रे. खं. ९३१ अ.)

१९५—इन्द्रकेश्वर से चार मील आगे वीरमग्राम में **वाल्मीकेश्वर तीर्थ** है। गोदावरी से लौटकर महर्षि वाल्मीकजी ने यहाँ बालू के शिवलिङ्ग की स्थापना की। यहाँ से ३ मील आगे सरसाड नामक ग्राम के समीप १९६—**देवेश्वर तीर्थ** है, इन्द्र की ब्रह्महत्या निवारण करने देवाधिदेव विष्णु जब आये तो उन्होंने इस शिवलिङ्ग की स्थापना की। इन्द्र ने भी यहाँ तप किया था।

१९६—देवेश्वर तीर्थ के सन्निकट ही बड़वाना ग्राम में **शक्रतीर्थ** है। ब्रह्माजी के वरदान से जृम्भासुर ने जब इन्द्र से स्वर्ग का राज्य छीन लिया था। तब इन्द्र ने राज्य प्राप्ति हेतु यहाँ तपस्या की थी।

१९७—शक्रतीर्थ से तीन मील आगे करसनपुरी नामक ग्राम के समीप **नागेश्वर तीर्थ** है—महर्षि कश्यप की विनता और कद्रू दोनों पत्नियों में उच्चैश्रवा के रङ्ग के ऊपर वाद विवाद हुआ। विनता ने उसका रङ्ग सफेद बताया और कद्रू ने काला। वास्तव में उसका रङ्ग सफेद ही था। तब कद्रू ने अपने पुत्र नागों से कहा—तुम उच्चैश्रवा के शरीर से लिपटकर उसे काला कर दो।" इसे कुछ नागों ने नहीं माना तो कद्रू ने शाप दिया तुम अग्नि में जलकर भस्म हो जाओ। तब नागों ने यहाँ शिवजी की आराधना की अपने नाम से नागेश्वर शिवलिङ्ग की स्थापना करके वे शाप मुक्त हो गये। यहाँ नागपंचमी का बड़ा माहात्म्य है यहाँ सर्प भय नहीं रहता है। यहाँ से लगभग एक मील पर ही १९८—**गोतमेश्वर**, १९९—**अहिल्येश्वर**, २००—**रामेश्वर** और २०१—**मोक्षेश्वर तीर्थ** हैं।

गोतमेश्वर तीर्थ में अहिल्या के उद्धार के पश्चात् महर्षि गौतम ने यहाँ तपस्या की थी, रामेश्वर तीर्थ में गोदावरी की यात्रा से लौटते समय श्रीरामचन्द्रजी ने यहाँ शिवलिङ्ग स्थापना की। उनके पुत्र लव और कुश ने भी यहीं स्थापित की, मोक्ष तीर्थ में स्वायम्भुव मनु ने तपस्या की, अनेक ऋषियो ने यहाँ तपस्या करके मोक्ष पाया। यहाँ उपनिषदों तथा श्रीमद्भगवत् गीता के पाठ का अत्यधिक माहात्म्य है।

२०२—मोक्षतीर्थ है। यह स्थान टोटीदरा ग्राम के समीप में है। यहाँ लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी ने यज्ञ करके शिवलिङ्ग की स्थापना की। यहाँ तप करने से सर्व कर्मों की सिद्धि होती है।

२०३—सिद्धेश्वर तीर्थ से एक मील आगे तरशाडी ग्राम में **तापेश्वर तीर्थ** है। इस तीर्थ की कथा इस प्रकार है—प्राचीन काल में देवशिरा नाम के एक ऋषि थे। उन्होंने इस स्थान में रहकर घोर तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर स्वयं साक्षात् शङ्करजी उनके सम्मुख प्रकट हुए और वर माँगने को कहा। ऋषि ने कहा—भगवन्! मुझे इन्द्रासन की प्राप्ति हो जाय।" शिवजी ने कहा—"अजी, ऋषि होकर तुम यह क्या तुच्छ वर माँग रहे हो, राज्य की इच्छा तो अज्ञानी लोग करते हैं। कोई दूसरा वर माँगिये।" ऋषि ने कहा— 'अच्छा तो मुझे ब्रह्माजी की आयु सदृश आयु की प्राप्ति हो।"

इस पर शिवजी ने उन्हें ऐसा ही वरदान दिया और कहा–"तुम्हारी आयु ब्रह्मा के सदृश होगी और तुम्हारे वंश में जो भी होंगे, वे सब-के-सब विद्वान् होंगे। यह तपस्या का स्थान है, यहां सूर्यदेव की उपाधना तथा गाय्त्री का अनुष्ठान करने से सिद्धि प्राप्त होती है। इस स्थान पर अष्टमी, चतुर्दशी, रविवार, संक्रान्ति, ग्रहण तथा व्यतीपात आदि पुण्य तिथियों में स्नान दान का विशेष माहात्म्य है। (रे. खं १३१, १३२, १३९, अ.)

२०४–तापेश्वर से दो मील आगे **सिद्धेश्वर तीर्थ** है। यहाँ पर बहुत पहिले नाविक नाम के नामी नरपति थे। उन्हें दान देने में बड़ा आनन्द आता था। यहाँ पर उन्होंने इतना अधिक दान दिया कि उसकी गणना ही नहीं हो सकती। दान देने से ही उन्होंने सिद्धि प्राप्त की। उन्हीं की पुण्य स्मृति में यह सिद्धेश्वर तीर्थ प्रसिद्ध हुआ। यहाँ दान पुण्य करने से उसका अनन्त गुणा फल होता है। इसके समीप में ही २०५–**वारुणेश्वर तीर्थ** है। यहाँ वरुणजी ने पुत्र प्राप्ति हेतु तपस्या की थो, जिससे उनके पुष्कर नामक पुत्र हुआ। इस तीर्थ का भी विशेष माहात्म्य है।

२०६--वारुणेश्वर तीर्थ से चार मील आगे पोरा ग्राम में **पराशरेश्वर तीर्थ** है। वसिष्ठजी के पुत्र शक्ति हुए शक्ति के पुत्र पराशर मुनि हुए। उन्होंने यहाँ पुत्र प्राप्ति के निमित्त तपस्या की जिससे उनके सौ पुत्र हुए।

२०७--पोरा ग्राम के पराशरेश्वर तीर्थ से तीन मील आगे **लाडवा ग्राम है**। यहाँ एक **प्राचीन वट का वृक्ष है। यहीं कुसुमेश्वर तीर्थ** है। जिसे कुसुमायुधेश्वर भी कहते हैं। शिवजी ने इसी स्थान पर कसुमायुध कामदेव भस्म किया। अशरीरी होकर भी कामदेव ने यहाँ सौ वर्षों तक तपस्या की। उसकी तपस्या से ब्रह्माजी प्रसन्न हुए और उसे सिद्धि प्राप्त हुई। यह परम पावन सिद्धिदाता तीर्थ है। यहीं पर कुण्डलेश्वर नामक गुप्त तीर्थ है।

२०८—लाडवा ग्राम के कुसुमेश्वर से दो मील आगे **कलकलेश्वर तीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है—अन्धकासुर का जब शिव जी द्वारा वध हो गया, तब देवताओं ने इस स्थान पर गायन वाद्य द्वारा शिवजी की बहुत स्तुति की। बहुत बड़ा आनन्दोत्सव किया। तभी आकाशवाणी हुई कि इस तीर्थ का नाम कलकलेश्वर होगा। जब रेवासागर संगम में ज्वार भाटा आता है तो उसका जल यहाँ तक आता है। यहाँ से नर्मदाजी के जल में खारापन आ जाता है। कलकलेश्वर से लगभग एक मील पर रेल का एक स्टेशन है। जिसका नाम "नर्मदा रीवर साइड है।" अंकलेश्वर से चान्दोद तक रेलवे लाइन गई है। वहीं अंकलेश्वर से एक छोटी लाइन "नर्मदा रीवर साइड" को गई है। परिक्रमावासी यहीं से नर्मदा किनारा छोड़कर सड़क-सड़क आगे को जाते हैं।

२०९–कलकलेश्वर से आगे चार मील पर सांजा ग्राम के समीप **संगमेश्वर तीर्थ** है। इसकी भी कथा सुनिए। यहाँ शिवजी विराजते हैं। एक बार रावण शिवजी के दर्शनों के निमित्त यहाँ आया। संयोग की बात उसी समय रावण के भाई लोकपाल कुबेरजी भी वहाँ शिवजी के समीप बैठे थे। वरुणजी का मधु से भरा कमण्डलु उनके समीप रखा था। रावण जो वेग के साथ आया तो उसके पैरों की धमक से कुबेर का मधु भरा कमण्डलु उलट गया। उसी से मधुमती गङ्गा प्रकट हो गयीं। ये गङ्गा विन्ध्य पर्वत से निकलकर यहाँ आयीं और नर्मदाजी में उनका संगम है। कहते हैं अब तक यहाँ की भूमि मधु के रंग की है। कुबेरजी ने यहाँ शिवलिङ्ग की स्थापना की जो संगमेश्वर के नाम से विख्यात हुए। (रे. खं. १३९–१४० अ.)

२१०—संगमेश्वर के समीप ही एक दूसरा बड़ा मोटा सांजा ग्राम है। उसके निकट **अनर्केश्वर** शिवजी हैं। इनकी भी कथा सुन लीजिये—नित्य-नित्य एक ही काम करने से ऊब हो जाती है। इच्छा होती है इसे छोड़कर कोई दूसरा कार्य करें। यमराज भी लोगों को दण्ड देते-देते ऊब गये। वही नरक में पापियों की हाय-हाय। वही सबको नित्य मारना ताड़ना। इस काम से ऊबकर वे यहाँ नर्मदा किनारे आकर घोर तपस्या करते रहे। नरका का कार्य कोई अर्यमा पितर देखते रहे होंगे। तीन वर्ष के पश्चात् शिवजी इनके सम्मुख प्रकट हुए और पूछा—'यमराज ! क्या चाहते हो ?"

यमराज ने कहा—"भगवन् ! नित्य प्रति प्राणियों को दण्ड देते-देते मेरा मन ऊब गया है, अब मेरे स्थान पर किसी अन्य की नियुक्ति कर दीजिये। मुझे इस कार्य से विमुक्त कर दिया जाय।"

शिवजी हँस पड़े और बोले—"क्यों बात क्या है, ऐसे निराश क्यों हो गये ?''

यमराज ने कहा—"भगवन् ! नित्य जीवों को कष्ट देने से मुझे पाप नहीं लगेगा क्या ?"

शिवजी ने कहा—'भैया ! तुम किसी को द्वेषवश तो दण्ड देते नहीं हो। जिसके जैसे कर्म हैं, उन्हें उनके कर्मानुसार तुम फल देते हो। तुम तो अपने कर्तव्य मात्र का पालन करते हो। तुम्हें पाप क्यों लगेगा ? तुमने अच्छा किया जो यहां रहकर तपस्या की अब अपने कर्तव्य कर्म का निष्काम भाव से पालन करो और जो तुम्हारी कोई इच्छा हो वह बताओ।"

तब यमराज ने कहा—"भगवन् ! यह मेरा स्थापित शिवलिंग '**अ-नरकेश्वर** के नाम से विख्यात हो। जो कोई कार्तिकी चतुर्दशी को यहाँ आकर पूजन आराधना करे उसे नरक नहीं जाना पड़े।" शिवजी ने तथास्तु कहकर उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया। यहाँ नरक चतुर्दशी को स्नान, दान पूजा, पाठ का विशेष माहात्म्य है। (रेवा खण्डे १४४ अध्याय)

२११—अ-नरकेश्वर से कुछ ही दूर पर **नर्मदेश्वर तीर्थ** है। उसकी कथा इस प्रकार है—जब संगमेश्वर के समीप शिवजी कुबेरजी के निमित्त प्रकट हुए। तब संगमेश्वर की स्थापना के निमित्त आगत देवता, यक्ष, किन्नरादिकों ने आनन्द के साथ नर्मदाजी में स्नान किया और जलक्रीड़ा की। तब सबने नर्मदेश्वर नामक शिवलिंग की स्थापना की। उसी समय निम्बभद्र नामक यक्ष ने **निम्बभद्रपुर** नामक नगर बसाया। यह भी एक पुण्य तीर्थ है।

२१२—अ-नरकेश्वर और नर्मदेश्वर के समीप ही एक **सर्पेश्वर तीर्थ** है। गरुड़जी का तो आहार ही सर्प हैं। जब वे सर्प कुल के नाश पर ही उतारू हो गये, तब रमणक द्वीप से धनञ्जय नामक सर्प अपने बहुत से साथियों के साथ यहाँ नर्मदाजी के निकट आकर छिप गये और यहाँ सर्पेश्वर शिवलिंग की स्थापना करके तपस्या में निमग्न हो गये। शिवजी के भय से गरुड़जी नहीं आ सके। इन सर्पों ने शंकर जी की कृपा से परम सिद्धि प्राप्त की। यहाँ पर सर्पों का भय मिट जाता है। शिवजी पर पुष्प चढ़ाने का अनन्त माहात्म्य है।

२१३—सर्पेश्वर के समीप ही उचडिया नामक ग्राम है। उस ग्राम की सीमा पर ही एक **मोक्ष तीर्थ**—यह गुप्त तीर्थ है। यहाँ सप्तर्षियों ने सिद्धि प्राप्त की है। सहस्रों महर्षियों ने मिलकर इसकी स्थापना की। यहाँ पर तपस्या करने से अनेक पुरुषों को ज्ञान प्राप्त हुआ और ज्ञान के द्वारा ही उनकी मोक्ष हुई। (रे० खं० १४५)

२१४—मोक्ष तीर्थ से एक मील आगे ग्वाली नामक ग्राम के समीप **गोपेश्वर तीर्थ** है। इसकी भी कथा सुन लीजिये—प्राचीन काल में एक पुण्डरीक नामक गोप निवास करता था। उसके पास दश लाख गौएँ थीं। वह बड़ा ही

धार्मिक तथा शिव भक्त था। शिवजी ने कामधेनु के साथ आकर इसकी भाँति-भाँति से परीक्षा की। परीक्षा में यह पूर्ण सत्यनिष्ठ सिद्ध हुआ। तब शिवजी उसे अपने कैलास पर ले गये और उसे अपने गणों में सम्मिलित कर लिया। तभी से यह तीर्थ गोपेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहाँ दान धर्म तथा दुग्ध दान का विशेष माहात्म्य है।

२१५—गोपेश्वर से लगभग मील भर की दूरी पर **मार्कण्डेश्वर तीर्थ** है। पुण्डरीक भक्त पर कृपा करने जब शङ्करजी प्रकट हुए तब शिवजी के दर्शनों के निमित्त यहाँ मार्कण्डेयजी पधारे। उन्होंने प्रेम सहित शिवजी की अर्चना वन्दना की और कुछ काल यहाँ पर निवास किया। पुनः लोक कल्याण के निमित्त शिवलिंग की स्थापना की तभी से यह तीर्थ उन्हीं के नाम से मार्कण्डेय तीर्थ विख्यात हुआ। (रे॰ खं॰ १४५ अ॰)

२१६—मार्कण्डेय तीर्थ ग्वाली ग्राम से तीन मील आगे **गुमानदेव** हैं। अंकलेश्वर से जो चाँदोद के लिए छोटी लाइन गई है उसका **गुमानदेव** रेलवे स्टेशन है। यहाँ हनुमानजी का मन्दिर है। ऐसी प्रसिद्धि है कि यहाँ पहिले गोपाल लोग शक्ति पूजा करते थे। उन ग्वारियों में एक गुमान नाम का ग्वाला था वह इस स्थान का मुख्य सेवक था। इस स्थान पर एक गौ नित्य प्रति आकर दूध की धारा चढ़ाया करती थी। उसी स्थान पर एक सियार आकर मल त्याग करता था। यह जानकर ग्वालाओं ने उसे मारना चाहा। तभी गुलाबदास नाम के वैष्णव महात्मा ने उन्हें ऐसा करने से रोका और यहाँ देवता की आराधना करने लगे। तभी उन्होंने गुमानदेव हनुमानजी की स्थापना की। स्थान सुन्दर है। बड़ौदा के दीवान गोपाल राव ने यहाँ मन्दिर तथा धर्मशाला का निर्माण कराया है। यहाँ इन हनुमानजी की बहुत मानता है। भक्तों की मनोकामनायें पूर्ण होती है। श्रावण महीने के प्रत्येक शनिवार को यहाँ मेला लगता है। कार्तिकी पूर्णिमा को भी यहाँ बड़ा मेला लगता है इसके आस-पास उचड़िया, सांजा, कपल साड़ी, सुलतानपुरा तथा रानीपुरा आदि ग्राम हैं। ये हनुमानजी गुमान—अहंकार—को नष्ट करते हैं, इसलिए गुमान देव कहलाते हैं।

२१७—गुमानदेव के समीप नौगँवा और सामोर ग्राम के बीच **नागतीर्थ** है। यहाँ पर औदुम्बर नाग ने अपने वंश की बृद्धि हेतु १२ वर्ष तपस्या की थी। उसी ने अपने नाम में इस **नागतीर्थ** का निर्माण किया। यहाँ उदुम्बर नदी (उमरावती) उत्पन्न हुई हैं। आश्विन शुक्ला पंचमी का तथा रविवार का विशेष माहात्म्य है। यहाँ वन्ध्या स्त्री आकर पूजन अर्चन करे तो उसका वन्ध्यापन छूट जाता है, सन्तति की प्राप्ति होती है। (रे॰ खं॰ १४५ अ॰)

२१८—गुमानदेव से लगभग एक मील आगे **सांबादि तीर्थ** है। इसकी भी कथा सुनिये। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी की पत्नी जाम्बवती में साम्ब नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वह अत्यन्त ही सुन्दर था उसके सौन्दर्य को देखकर औरों की तो बात ही क्या उसकी विमातायें भी मुग्ध हो जाती थीं। जब भगवान् को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने उसे शाप दिया—"जा तेरे शरीर में कुष्ट हो जाय।" इस पर साम्ब बड़ा दुखी हुआ। तत्काल उसके शरीर में कुष्ट उत्पन्न हो गया। अतः उसने यहाँ नर्मदा किनारे रहकर छः महीने तक सूर्य की उपासना की बहुत-सा दान किया और धर्म के सब कार्य किये। इससे वह रोग मुक्त हो गया। सूर्य की उपासना करने से इसे सौरतीर्थ भी कहते हैं यहाँ तपस्या करने से रोगी रोगमुक्त होकर निरोग बन जाता है। यहाँ पर सप्तमी तथा रविवार को स्नान, दान, ब्रह्मभोज तथा गीतादि धर्म ग्रन्थों के दान का विशेष माहात्म्य है। यह परम पावन तीर्थ माना जाता है।

२१९—सांबादि तीर्थ से एक मील आगे अंदाड़ा ग्राम के निकट **सिद्धेश्वर तीर्थ** है। यहाँ दक्ष के पुत्रों ने तथा और भी अनेक ऋषि महर्षियों ने तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की है। यहाँ सिद्धेश्वर नाम का शिवलिंग है।

समीप में ही सिद्धेश्वरी देवी का भी मन्दिर है। इस देवी की स्थापना भी उन्हीं महर्षियों ने लोक के कल्याण के निमित्त की थी। यहाँ भी संगम है यहाँ अष्टमी चतुर्दशी तथा नवमी को सिध्देश्वरी देवी का दर्शन पूजन करने से मनोकामना की सिद्धि होती है। यहाँ कुमारियों के भोजन कराने का विशेष माहात्म्य है। (रे० खं० १४७ अ०)

सिध्देश्वर तीर्थ के समीप ही मांडवा ग्राम के सन्निकट **मार्कण्डेय** स्थान है। मार्कण्डेयजी इस तीर्थ के सम्बन्ध में बताते हुए कहते हैं–मैंने सत्ययुग में दक्षिण पर्वत के सन्निकट दण्डकारण्य में दस सहस्र वर्ष पर्यन्त तपस्या की तथा सिद्ध संतों की सेवा की। पुन नर्मदाजी के तट पर समस्त सिद्ध सन्तों द्वारा स्थापित इस सिध्देश्वर तीर्थ में आया। यहाँ सम्पूर्ण ऋषि मुनियों ने प्राणियों के निस्तार हेतु एक कुंड का निर्माण किया। पुनः उस कुंड के जल को अपने कमंडलु में भरा। मैंने सौ वर्ष पर्यन्त यहाँ तपस्या की। तब भगवान् ने मेरे ऊपर कृपा की। श्रीलक्ष्मीनारायण तथा पार्वती सहित शिवजी प्रत्यक्ष मेरे सम्मुख प्रकट हुए और उन्होंने मुझे अजर-अमर होने का वरदान दिया। दोनों ने मुझसे पुनः वरदान माँगने को कहा। तब मैंने विनती की—"प्रभो ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मेरे द्वारा स्थापित इस मार्कण्डेय तीर्थ में सदा सर्वदा निवास करें और भक्तों की मनोवांछित कामनाओं को पूर्ण करते रहें। यहां आषाढ़ शुक्ला

एकादशी देवशयनी को तथा कार्तिक शुक्ला देवोत्थापिनी और शिवरात्रि का विशेष माहात्म्य माना जाता है। (रे० सं० १४७ अ०)

२२०—सिद्धेश्वर तीर्थ से दो मील आगे **अंकलेश्वर** तीर्थ है। मांडव्येश्वर तीर्थ भी इसे कहते हैं। यहाँ रामकुण्ड सुप्रसिद्धतीर्थ है। इसकी कथा इस प्रकार है-प्राचीन काल में यहाँ देवराज नाम के बड़े धर्मात्मा राजा थे। वे भगवती के बड़े भक्त थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी। उन्होंने भगवती जगदम्बा की आराधना की। भगवती की कृपा से उनके एक कन्या हुई। उसका नाम कुमुदिनी था। वह कन्या क्या थी साक्षात् सावित्री का अवतार ही थी। उसका सौन्दर्य माधुर्य लावण्य अनुपम था।

एक दिन कुमुदिनी जल क्रीड़ा कर रही थी उसी समय शङ्कर नाम का दैत्य वहाँ आया। कन्या के सौन्दर्य को देखकर दुष्ट दैत्य विमुग्ध हो गया और वह पक्षी का रूप रखकर उसे हरण करके आकाश मार्ग से ले गया। बेचारी कुमारी रोती चिल्लाती जा रही थी। मार्ग में महर्षि माण्डव्य का आश्रम पड़ा। राजकुमारी ने अपने कुछ आभूषण आश्रम में फेंक दिये। माण्डव्य महर्षि नेत्र बन्द करके तपस्या में तल्लीन थे। उन्हें पता ही नहीं था, क्या हुआ और किसने आभूषण फेंक दिए। इधर राजकुमारी को ढूढ़ते-ढूढ़ते राजकर्मचारी माण्डव्य ऋषि के आश्रम पर आए। वहाँ राजकुमारी के आभूषणों को देखकर उन्हें महर्षि के ऊपर शङ्का हुई। महर्षि को सावधान करके उन्होंने पूछा—"महात्मा जी! आभूषण कहाँ से आए?"

ऋषि ने कहा—"भैया! हमें तो मालूम नहीं। हम तो यहाँ तपस्या सन्देह करते हैं।" राजकर्मचारियों को ऋषि के ऊपर सन्देह हुआ। उन्होंने अपना राजा के सम्मुख जाकर व्यक्त किया। राजा तो दुखी था ही उसने बिना सोचे विचारे ऋषि को शूली पर चढ़ा दिया। महर्षि शूली पर चढ़े रहे किन्तु मरे नहीं।" महर्षि के लघु भ्राता को राजा के इस अन्याय पर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने हाथ में जल लेकर राजा को सर्वनाश का शाप देना चाहा। यह देखकर शूली पर से ही माण्डव्य ऋषि बोले—"अरे, भाई! यह क्या करते हो। राजा को शाप मत दो। यह तो हमारे किसी पूर्व जन्म का पाप है, उसका फल भोग रहे हैं।" उसी समय वहाँ घूमते-घामते सप्तर्षि भी आ गये। और भी ऋषि मुनि आ गये। वे महर्षि को शूली से उतारने का आग्रह करने लगे। महर्षि ने कहा—"मुनियो! अवश्यमेव भोक्तव्यं पूर्वकर्म शुभाशुभम्। प्रारब्ध कर्मों का तो भोग से ही क्षय होता है। अतः मुझे पूर्व कृत पाप का फल भोगने दीजिये। मुझे शूली से उतारने का प्रयत्न न करें।

देवेच्छा समझकर ऋषि मुनि चले गये।

ऋषि की ऐसी बात सुनकर माण्डव्य मुनि पूर्ववत् शूली पर चढ़े ही रहे उसी समय शाण्डिली नाम की सती अपने कोढ़ी पति की इच्छा समझकर उसे वेश्या के समीप ले जा रही थी। अन्धेरे में उसे दीखा नहीं, उसका शरीर ऋषि के लटके पैर से भिड़ गया। ऋषि को बड़ा कष्ट हुआ। वे चिल्लाने लगे। उनकी चिल्लाहट सुनकर आस-पास के ऋषि एकत्रित हो गये। उनके भाई ने जब सुना तो उन्होंने क्रोध में भरकर तुरन्त शाप दे दिया कि जिसके शरीर से मेरे भाई के पैर का स्पर्श हुआ। उसकी सूर्योदय होने पर मृत्यु हो जाय।"

यह सुनकर कोढ़ी का काम तो कपूर की भाँति उड़ गया। वह घबराकर बोला—"देवि। मुझे अब लौटाकर घर ले चलो। सूर्योदय होते ही मेरी मृत्यु हो जायगी। यह सुनकर शान्ति के साथ सती बोली—"आप घबड़ाइये नहीं। सूर्य उदय ही न होगा। आप मेरे सतीत्व की सामर्थ देखिये।"

सती के प्रभाव से छः महीने तक सूर्य उदय ही नहीं हुआ। समस्त देव, ऋषि तथा पितृ कर्म बन्द हो गये। देवता दौड़े-दौड़े ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्माजी समस्त देवता ऋषि मुनियों के सहित शाण्डिली के समीप गये और उसे आश्वासन दिया। तेरे पति को हम जिला देंगे। तब सूर्य का उदय हुआ। सती का पति मरकर क्षण भर में ही निर्मल सुवर्ण के समान दिव्य स्वरूप रखकर जीवित हो गया। उसी समय वह दैत्य उस राजकुमारी को लेकर वहाँ आ पहुँचा और आकर उसने कहा—'मुझे एक ऋषि का शाप था कि तू दैत्य हो जा।" मेरी अनुनय-विनय पर उन्होंने कहा—जब तू पक्षी रूप से राजकन्या का हरण करेगा, तब तू शाप से मुक्त हो जायगा।" इसलिये यह राजकन्या विशुद्ध है। इसके चरित्र में किसी प्रकार का लांछन नहीं है। ऐसा कहकर दैत्य अन्तर्धान हो गया।"

यह समाचार राजा ने सुना तो उसने ऋषि से बारम्बार अपने अपराध के लिये क्षमा की याचना की। सब ऋषि मुनियों ने महर्षि को शूली से उतारा राजा ने अपनी कुमुदिनी कन्या ऋषि को अर्पण कर दी। तभी से यह माण्डव्य तीर्थ यहाँ प्रसिद्ध हो गया। पहिले कभी नर्मदाजी यहीं बहती थीं। अब तो यहाँ से ३-४ मील दूर चली गयी हैं। माण्डव्य ऋषि के भाई ने जो राजा को शाप देने को जल लिया था। उसे समुद्र में डाल दिया। उसी का काल कूट विष हो गया। यहीं अंकलेश्वर में एक देवखात-रामकुण्ड-है। जब समस्त देवता तथा ऋषिगण शांडिल्य को वरदान देने आये थे तब सबने मिलकर इस देवखात—रामकुण्ड तीर्थ--का निर्माण किया। यहाँ पितरों सहित समस्त देवता निवास

करते हैं। आश्विन की चतुर्दशी को यहाँ स्नान करने से प्रयागराज के स्नान का फल मिलता है। सूर्य तथा चन्द्रग्रहण में यहाँ के स्नान का बड़ा माहात्म्य है, कुरुक्षेत्र के स्नान के समान फल बताया है। यहाँ पर धर्म, कर्म, पूजा पाठ सभी कर्म स्थायी होते हैं। —(रे० खण्ड १६५ १६६अ०)

२२१—रामकुण्ड के समीप ही **अक्रूरेश्वर तीर्थ** है। इसकी भी कथा को दत्तचित्त होकर श्रवण कीजिये–लङ्कापति के रावण के दूसरे भाई कुम्भकरण का एक पुत्र था। उसका नाम था अक्रूर। वह अन्य राक्षसों की भाँति क्रूर नहीं था। वह भगवत् भक्त था और अपने चाचा विभीषण के साथ ही सर्वदा रहता था। जब श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा रावण के कुल का नाश हो गया तो इसे बड़ी ग्लानि हुई। यह लंका छोड़कर यहाँ नर्मदाजी के किनारे पर आकर घोर तप करने लगा। उसने अपने नाम से शिवलिङ्ग स्थापित करके सौ वर्षों तक शिवजी की दत्तचित्त होकर आराधना की। इसकी भक्ति से प्रसन्न होकर शिवजी इसके सम्मुख प्रकट हुए और वरदान माँगने को कहा—"तब इसने यही वर माँगा कि मेरी भगवान् विष्णु के चरणों में सदा अहैतुकी भक्ति बनी रहे।" शंकरजी ने तथास्तु कहकर इसे भगवत् भक्ति का शुभाशीर्वाद दिया। यहाँ का भी विशेष माहात्म्य है। (रे. ख. अ. १६७-१५८)

२२२—अक्रूरेश्वर तीर्थ से ८मील आगे **बलबला कुण्ड** है। जिसे **सूर्यकुण्ड** भी कहते हैं। यहाँ पर चतुर्भुज नीलकण्ठ शिवजी और नर्मदा मैया की मूर्ति है। यहाँ के कुण्ड में सदा बुलबुला शब्द होता रहता है। इसीलिये बलबला कुण्ड कहते हैं। प्राचीन काल में जब महर्षि कश्यप ने प्राणियों को नाना रोगों से ग्रस्त देखा, तब जीवों पर दया करने हेतु शिवजी का धन्वन्तरि रूप में स्मरण किया। कश्यपजी पर दया करने को कपर्दी कामारि धन्वन्तरि रूप में समुद्र से उत्पन्न हुए और कश्यपजी से बोले—"मैं तुम पर प्रसन्न हूँ वरदान माँगो।" तब कश्यपजी ने कहा—"भमवन् ! आप मुझे वैद्य विद्या का उपदेश दें। मैं सभी प्राणियों की पीड़ा को हरण करने में समर्थ होऊँ।"

शिवजी ने तथास्तु कहकर उनकी मनोकामना पूर्ण की। तभी इस तीर्थ का निर्माण हुआ। (रे० खं० १८७ अ०)

२२३—बलबलाकुण्ड से ४ मील आगे सहजात ग्राम के समीप **सिद्धरुद्रेश्वर तीर्थ** है। परम पावन तीर्थ है। इसकी भी कथा सुनिये। एक बार विष्णु भगवान् में और ब्रह्माजी में कौन बड़ा है इस विषय को लेकर वाद-विवाद हुआ। उस समय ब्रह्माजी के पाँच शिर थे। ब्रह्माजी ने कहा—"मेरे पाँच शिर हैं। मैं ही समस्त सृष्टि का सृजन कर्ता हूँ। मैं ही सबसे बड़ा हूँ।"

इस पर भगवान् विष्णु ने कहा—"तुम तो मेरी नाभि कमल से उत्पन्न हुए हो समस्त सृष्टि का पालन मैं करता हूं, अतः मैं सबसे बड़ा हूँ। उनमें इस प्रकार वाद-विवाद हो ही रहा था कि उनके मध्य में परम ज्योतिर्मय आदि अन्त से रहित एक शिवलिंग प्रकट हुई। वहाँ से वाणी हुई। जो इस शिवलिंग का आदि अन्त जान ले वही बड़ा।

इस पर भगवान् विष्णु गरुड़ पर चढ़कर उसका आदि देखने नीचे गये और ब्रह्माजी हंस पर चढ़कर अन्त देखने ऊपर गये। सहस्रों वर्षों तक विष्णु भगवान् खोजते रहे किन्तु उसके आदि का पता नहीं चला। इधर ब्रह्माजी भी सहस्रों वर्षों तक उसका अन्त खोजते रहे किन्तु उन्हें अन्त नहीं मिला। दोनों लौट-कर आये।

शिवजी ने विष्णु भगवान् से पूछा—"तुम्हें इस ज्योतिलिंग के आदि का पता चला?" भगवान् विष्णु ने कहा—"नहीं, मुझे तो इसके आदि का पता नहीं चला।"

तब फिर उन्होंने ब्रह्माजी से पूछा—"तुम्हें इसके अन्त का पता चला?'

ब्रह्माजी ने कहा—"हां, मैंने तो इसके अन्त का पता लगा लिया।" (झूठी साक्षी देने को केतकी और कामधेनु को अपनी ओर मिलाकर उन्हें प्रस्तुत किया)। शिवजी समझ गये ये असत्य भाषण कर रहे हैं, अतः क्रुद्ध होकर उन्होंने ब्रह्माजी का पांचवा शिर अपने नखों से काट लिया।"

काट तो लिया, किन्तु वह ब्रह्माजी का कपाल शिवजी के हाथ में चिपट गया। ब्रह्महत्या उनके पीछे लगी। शिवजी संसार के समस्त तीर्थों में घूमते रहे, किन्तु ब्रह्महत्या ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। जब नर्मदाजी के इस देव-खात--कुण्ड--में आये तो उनकी ब्रह्महत्या छूट गयी। कपाल गिर गया तभी से यह तीर्थ परम पावन माना जाने लगा। यहां कुण्ड में स्नान करने से सभी पाप छूट जाते हैं। यहां अष्टमी चतुर्दशी के स्नान का विशेष माहात्म्य है। विशेषकर माघ मास की अष्टमी चतुर्दशी का तो अत्यधिक माहात्म्य है। यहां पर सिद्धरुद्रेश्वर कुण्ड है। सिद्धरुद्रेश्वर, सिद्धनाथ दत्तात्रेयजी के मन्दिर हैं।

(रे. ख. १६८ अ.)

२२४—सिद्धरुद्रेश्वर तीर्थ से दो मील आगे मांटियर ग्राम के समीप **वैद्यनाथ तीर्थ** है। पिछले स्थानों से तो नर्मदा दूर पड़ जाती हैं किन्तु वैद्यनाथ जी के तो प्रायः समीप ही हैं। यहां से पास ही एक प्रसिद्ध तीर्थ ४७--**सूर्यकुण्ड** है। उसकी भी कथा सुन लीजिये—महर्षि कश्यपजी की दिति पत्नी दैत्य हुए और अदिदि में आदित्य-सूर्य -हुए। सूर्य का नाम विवस्वान् था। उनका विवाह विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा के साथ हुआ। विवस्वान् से संज्ञा में ती

सन्तानें हुई। एक वैबस्वत मनु, दूसरे यम और तीसरी यमुना नाम्नी कन्या। सूर्यनारायण का तेज अत्यधिक था, उसे संज्ञा सहन न कर सकी। उसने सूर्यदेव से प्रार्थनी की—"आपका तेज असीम है, मैं उसे अधिक सहन करने में असमर्था हूँ, अतः मुझे आज्ञा दीजिये मैं अपने पिताजी के यहाँ जाकर रहूँ।"

यह सुनकर सूर्यदेव ने कहा—"यह कैसे हो सकता है। बच्चों की देख-रेख कौन करेगा ?"

यह सुनकर संज्ञा उस समय तो शान्त हो गयी किन्तु उसके लिये सूर्य का तेज सहन करना असह्य हो गया। एक दिन उसने सूर्य से छिपकर अपनी छाया को सजीव बना लिया। और छाया से कहा—'देख, तू यहीं रहना, सूर्यनारायण को यह मत बताना कि यथार्थ संज्ञा नहीं उसकी छाया हूँ।"

छाया ने कहा—"जब तक मृत्यु संकट नहीं आवेगा, तब तक तो बताऊँगी नहीं। जब मेरे सिर पर मृत्युसंकट आ जायगा तब तो मुझे बताना ही पड़ेगा।"

संज्ञा ने कहा— 'अच्छी बात है, यह कहकर वह अपने पिता विश्वकर्मा के घर चली गयी। विश्वकर्मा ने पूछा—'तू अकेली कैसे चली आयी ?"

तब इसने बताया उनका तेज मैं सहन नहीं कर सकती।

विश्वकर्मा ने कहा—"सयानी लड़की को अधिक दिनों तक पिता के घर नहीं रहना चाहिये। तू वहीं चली जा।"

पिता की बात सुनकर वह चली तो गयी किन्तु सूर्यनारायण के यहां न जाकर घोर वन में चली गयी। अपने पतिव्रत की रक्षा के निनित्त उसने घोड़ी का रूप रख लिया। घोड़ी बनकर वन में चरती रहती समय को बिताती रहती। इधर सूर्यनारायण संज्ञा की छाया को ही संज्ञा समझ रहे थे। उसके भी तीन सन्तानें हो गयीं। पहिला सावर्णी मनु, दूसरे शनिश्चरदेव और तीसरी तापी नदी।

संज्ञा के पुत्र यमराज क्रोधी स्वभाव के थे। छाया अपनी सन्तानों को तो बहुत अधिक प्यार करे, अच्छी-अच्छी वस्तुएँ खाने को दे। संज्ञा के पुत्रों की उपेक्षा कर दे। इस प्रकार का पक्षपात पूर्ण वर्ताव देखकर यमरामज को क्रोध आ गया। उन्होंने क्रोध में भरकर छाया को मारने के लिये पैर उठाया। इस पर छाया ने यमराज को शाप दे दिया।

तब यमराज ने अपने पिता से सब वृत्तान्त बताकर कहा— 'पिताजी ! प्रतीत होता है यह हमारी यथार्थ माता नहीं। माता अपने पुत्र को शाप कभी नहीं देती।"

तब सूर्यदेव ने उसे धमकाकर डांटते हुए पूछा—तब उसने सब समाचार सत्य-सत्य बता दिये।

अब सूर्यदेव को संज्ञा की चिन्ता हुई वे अपनी ससुराल विश्वकर्मा के यहां गये। और जाकर संज्ञा के मम्बन्ध के सभी समाचार पूछे।

विश्वकर्मा ने कहा—'हाँ वह आयी तो थी किन्तु मैंने फिर उसे तुम्हारे पास ही भेज दिया था।"

सूर्यनारायण ने कहा—"अच्छी बात है, मैं उसे खोजता हूँ।" यह कहकर वे संज्ञा को खोजने गये। देखा वह घोर अरण्य में घोड़ी बनी घूम रही है, तब सूर्यनारायण ने भी घोड़ा का रूप रख लिया। वहीं अश्विनीकुमारों का जन्म हुआ। तब सूर्यनारायण संज्ञा को लेकर विश्वकर्मा के समीप आये। विश्वकर्मा ने एक आदित्य के बारह आदित्य बना दिये और सूर्यनारायण का तेज भी कम कर दिया। इससे सूर्यनारायण को ग्लानि हुई, उन्होंने यहां नर्मदा किनारे आकर दस सहस्र वर्ष तक तप किया। इससे प्रसन्न होकर शिवजी ने इन्हें पुनः तेज प्रदान किया और वरदान दिया कि आपके इस सूर्य कुण्ड में स्नान करके जो लोग जप, तप, पूजा पाठ दान आदि शुभ कर्म करेंगे वे सब कर्म पूर्ण सफल होंगे। यहां रविवार को स्नान का विशेष माहात्म्य है। यदि सप्तमी रविवार को पड़ जाय तो उसका और भी अत्यधिक माहात्म्य है, यहाँ ब्रह्मभोज तथा गायत्री पुरश्चरण विशेष फलदायक होता है। [रे०खं० ४२ अ०]

२२४—सूर्यकुण्ड के समीम ही **मातृका तीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है, जब देवताओं के कार्य के निमित्त षडानन श्रीस्वामी कार्तिकेय का जन्म हुआ तब ५ कृत्तिकाओं ने उन्हें अपना पुत्र मानकर दूध पिलाया था। किन्तु कृत्तिकाओं के दूध से उनकी तृप्ति नहीं होती थी, उनका पेट नहीं भरता था। तब वे बड़ी चिन्तित हुई इतने में ही वहां नारदजी आ पहुँके। कृत्तिकाओं ने अपनी चिन्ता नारदजी के सम्मुख प्रकट की और अपनी शंका का समाधान पूछा। तब नारदजी ने कहा—"तुम नर्मदा किनारे जाकर तपस्या करो, तभी तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।" मातृकाओं ने नारदजी की सम्मति मानकर यहाँ तपस्या की तथा अपने इष्ट की सिद्धि प्राप्त की। और इस तीर्थ में सर्वकर्म सिद्ध होंगे। इस बात का भी वरदान प्राप्त किया।

२२५—मातृकातीर्थ से दो मील पर उत्तराज ग्राम के सन्निकट **उत्तरेश्वर तीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है—प्राचीनकाल में एक राजर्षि शशि विन्दु नाम के राजा थे, उनके पुत्र तो लाखों थे, किन्तु कन्या एक ही थी। कन्या बड़ी ही सुन्दरी गुणवती थी उसके लिए महाराज ने बहुत से वर खोजे किन्तु उसके

उपर्युक्त एक भी वर नहीं मिला। राजा को बड़ी चिन्ता हुई। तब ऋषियों ने कन्या से कहा—"बेटी ! तुम तपस्या करो। 'तपसा किं न सिद्ध्यति' तपस्या से कौन-सा ऐसा कार्य है जो सिद्ध न हो।"

ऋषियों की आज्ञा पाकर कन्या यहां नर्मदा किनारे आकर तपस्या करने लगी। उस समय पृथ्वी से स्वयंभूलिंग प्रकट हुआ। और स्वयं साक्षात् शिवजी भी उसके सम्मुख प्रकट हुए। शिवजी ने कहा—"बेटी तुम्हारी तपस्या सफल हुई। महाराज तृणविन्दु के पुत्र से तुम्हारा विवाह होगा।" शिवजी की वाणी सफल हुई। तभी से यह तीर्थ भक्तों की मनोवाच्छा को पूर्ण करने लगा।

२२६—उत्तरेश्वर के समीप ही सीरा ग्राम में **नर्मदेश्वरतीर्थ** है। इसकी कथा सुनिये। शिवजी नर्मदाजी के प्रत्येक पत्थर में विराजमान रहकर नाना नाना प्रकार की क्रीड़ाओं को करते रहते हैं। एक बार शिवजी ने एक बूढ़ बैल का वेष बना लिया और नर्मदाजी के किनारे-किनारे विचरण करने लगे। कभी नर्मदाजी के इस तट पर आ जायँ, कभी उस तट पर चले जायँ। इस प्रकार विचरण करते हुए इस सुन्दर स्थान पर आये। नर्मदाजी ने देखा ये तो मेरे पिता शङ्करजी हैं। इसलिए जल में से तुरन्त परम दिव्य सुन्दर स्वरूप धारण करके शिवजी के समीप आई और उनकी विधिवत् पूजा की।

इनकी पूजा से प्रसन्न होकर शिवजी ने नर्मदाजी से वर मांगने को कहा, तव नर्मदाजी ने यही माँगा कि आप इस तीर्थ में सदा विराजमान रहें। और जो भक्त आकर आपकी पूजा करें उनकी मनोकामना पूर्ण करते रहें। शिवजी ने तथास्तु कहकर नर्मदाजी की इच्छा पूरी की। (रे. खं. १६५, १६८ अ.)

२२७—नर्मदेश्वर से दो मील आगे मोठिया नामक ग्राम के समीप **मातृ-तीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है—"पूर्व कल्प में जब ब्रह्माजी को सृष्टि करने की भगवान् की आज्ञा हुई तो उन्होंने सर्वप्रथम मन से ही दश पुत्र पैदा किये। ये ब्रह्माजी के दश मानस पुत्र कहलाते हैं। उन दश में एक दक्ष प्रजा-पति थे। उन्होंने ५० कन्यायें पैदा की थी। उनमें से १३ कन्यायें कश्यप महर्षि को दी। कश्यपजी सृष्टि बढ़ाने का उपक्रम करने लगे, तब माताओं ने कहा—भगवन् ! तपस्या द्वारा ही सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं, अतः पहिले हमें तप करना चाहिये।" कश्यपजी के अनुमोदन करने पर इन माताओं ने यहाँ नर्मदा किनारे पर आकर कुण्ड बनाया और उस कुंड में नर्मदाजी का जल भर लिया और उसके किनारे पर दिव्य सौ वर्षों तक तपस्या की। यहाँ तपस्या करने से ही उन्हें शिद्धि प्राप्त हुईं। तब वे स्थावर जंगम सभी प्रकार के प्राणियों को उत्पन्न करने में समर्थ हुई और सम्पूर्ण जगत् की मातायें हुईं। यह तीर्थ बहुत

ही उत्तम है। यहाँ सभी कामनायें सिद्ध होती हैं। विशेषकर सन्तान की इच्छा वालों को इस मातृतीर्थ में स्नान पूजन जप अनुष्ठान करना चाहिये।

[रे० खं० १६९ अ०]

२२८—मातृतीर्थ से दो मील आगे सुप्रसिद्ध **हासोट नाम का** ग्राम है। उसमें **हंसेश्वर तीर्थ** है। उसकी कथा सुनिये—मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्षादि समस्त प्राणी प्रजापति कश्यपजी की ही सन्तान हैं। कश्यपजी की एक पत्नी से कांतिशिखा नामक हंस हुआ। उसे ब्रह्माजी ने अपना वाहन बना लिया। ब्रह्माजी जब प्रजापति दक्ष के यज्ञ में जाने लगे तो इनके वाहन हंस अपने कर्त्तव्य से च्युत हो गये। वे शिवगणों से वाद-विवाद करते रह गये। समय पर अनुपस्थित रहे। समय पर अपना वाहन न आवे तो क्रोध आना स्वाभाविक ही है। ब्रह्माजी को क्रोध आ गया उन्होंने कान्तिशिखा हंस को शाप दिया—"तू ब्रह्मलोक से च्युत होकर मनुष्य लोक में चला जा।"

यह सुनकर हंस अत्यन्त दुखी हुआ उसने ब्रह्माजी की बहुत अनुनय-विनय की। तब ब्रह्माजी ने कहा—"तू नर्मदा तट पर जाकर तपस्या कर इससे तुझे पुनः ब्रह्मलोक की प्राप्ति हो जायगी।" तब हंस ने ऐसा ही किया। यहाँ हंसेश्वर शिवलिङ्ग की स्थापना करके तपस्या की। जिससे उसे पुनः ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुई। तभी से यह तीर्थ हंसेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहां सभी शुभ कर्म सफल होते हैं। [रे० खं० १७५ अ०]

२२९—हंसेश्वर के समीप हासोट में ही **तिलादेश्वर** तीर्थ है। इस तीर्थ की भी कथा सुनिये। एक जाबालि नाम के ऋषि थे। संगदोष से दुष्कर्म करने लगे। पीछे उन्हें पश्चात्ताप हुआ। वे अपने पातकों की निवृत्ति हेतु समस्त तीर्थों में घूमे किन्तु उनके पापों का अन्त नहीं हुआ। दैववशात् घूमते-घामते वे रेवातट पर यहाँ आ पहुँचे। यहां तप का अत्यन्त माहात्म्य सुनकर केवल तिल खाकर तपस्या करने लगे। वह नित्य प्रति एक-एक तिल घटाते गये और उनके पाप भी तिल-तिल घटते गये। ७२ वर्ष तक इस प्रकार तपस्या करके वे निष्पाप हो गये। उन्होंने तिल खाये थे अतः उनका नाम तिलाद (तिलान् अत्तीति = तिलाद) पड़ गया। इसी अपने नाम से उन्होंने तिलादेश्वर शिवलिङ्ग की स्थापना की। यहां तप करने का बड़ा माहात्म्य है।

२३०—तिलादेश्पर से एक मील आगे वासनोली ग्राम में **वासवतीर्थ है।** जब अष्टवसुओं को पितरों का पृथ्वी पर जन्म लेने का शाप हुआ तो उन्होंने वासवेश्वर शिवलिंग की स्थापना करके इस स्थान पर तपस्या की और उसी से सिद्धि प्राप्त की। ×

२३१—वासवेश्वर से एक मील पर कतपुर ग्राम के समीप **कोटेश्वर** नामक तीर्थ है। जिस समय सरित् प्रवरा रेवा का समुद्र से संगम हुआ उस समय उनके दर्शनों को करोड़ों देवता, गन्धर्वादि आये और संगम के दर्शनों से सभी ने सिद्धि प्राप्त की। यहाँ सदा सर्वदा शिवजी का निवास रहता है और यहाँ किये जप, तप, दान, धर्मादि पुण्यकर्मों का करोड़ों गुना फल होता है। (रे० खं० अ० १७५)

२३२—कोटेश्वर से एक मील आगे **अलिकातीर्थ** है। गन्धर्वों के राजा चित्रसेन की लड़की की लड़की का नाम अलिका था। उसके पिता का नाम रत्नवल्लभ गन्धर्व था। अलिका स्वेच्छाचारिणी बन गयी। उसने माता-पिता से बिना पूछे ही विद्यानन्द नामक एक ऋषि से विवाह कर लिया। उनके साथ वह दश वर्ष रही। फिर उनको छोड़कर वह अपने पिता के समीप गयी। पिता ने ऐसी पुत्री को अपने पास रखना उचित न समझकर उसे अपने घर से निकाल दिया। अब उसे अपने दुष्कर्मों पर पश्चात्ताप हुआ। वह ब्राह्मणों की शरण में गयी और अपने पाप का प्रायश्चित्त पूछा। ब्राह्मणों ने उसे नर्मदा किनारे तपस्या करने की सम्मति दी। ब्राह्मणों की सम्मति मानकर उसने इस स्थान पर घोर तपस्या की। अपने नाम से उसने अलिकेश्वर नामक शिवलिंग की स्थापना की। शिवजी की पूजा अर्चा तथा तप के प्रभाव से वह निष्पाप हो गयी। तब वह अपने पिता के घर गयी। अब उसके पिता ने उसका अत्यधिक आदर किया। यहाँ तपस्या करने से सर्व कर्म सुफल होते हैं।

(रे० खं० १७५ अ.)

२३३—अलिकेश्वर तीर्थ से आगे **विमलेश्वर तीर्थ** है। यह नर्मदाजी के दक्षिण तट का रेवासागर संगम के समीप अन्तिम तीर्थ है। यहाँ बड़े-बड़े पातकी अपने पातकों से विमल बन गये हैं।

महर्षि त्वष्टा का पुत्र त्रिशिरा हुआ। जो कुछ दिनों को देवताओं का पुरोहित बन गया था। इन्द्र ने जब देखा यह तो हमारे शत्रु असुरों से मिला है, उनका पक्ष लेता है तो देवेन्द्र ने उसका सिर काट लिया। इससे इन्हें ब्रह्महत्या लगी। इन्द्र ने यहाँ आकर तप किया तो उनकी ब्रह्महत्या का पाप यहाँ आकर मिट गया। सूर्य को जब निज कन्या पर कुदृष्टि करने पर कुष्ट रोग हो गया तो वह भी यहाँ तपस्या करते से मिट गया।

विभाण्डक मुनि के पुत्र श्रृंगीमुनि जब महाराज का पुत्रेष्टि यज्ञ कराने आये थे तो बहुत दिनों तक राजगृह में रहने से राज्यान्न खाने से जो दोष लगा था, वह यहाँ तपस्या करने से मिट गया।

कहाँ तक कहें देवता, ऋषि, मुनि गन्धर्वादिकों को जो भी दोष लगे वे सब यहाँ तपस्या करने से मिट गये। यह बड़ा ही विमल तीर्थ है यहाँ षष्ठी तथा चतुर्दशी के स्नान करने का विशेष माहात्म्य है। विमलेश्वर में मन्दिर नाममात्र का ही है। खपरैल का टूटा-फूटा गुफा की भाँति नीचे मकान सा है इसमें शिव जी हैं उनकी पूजा भी नियमित होती है या नहीं सन्देह है। नौका लगने का कोई घाट नहीं। घुटने-घुटने कीच में चलकर कठिनता से नौका में चढ़ना पड़ता है। रहने का प्रबन्ध नहीं जलका प्रबन्ध नहीं। एक तालाब है लोग उसी में नहाते हैं कूवा है उसला जल भी खारा है। दिन भर नौकाओं की बाट जोहना पड़ता है। हासोट से चिट्ठी भी लाना उसके लिए आवश्यक रहता है। यहीं से परिक्रमा के यात्री नौका में बैठकर उस पार जाते हैं। यहाँ दक्षिण तट की परिक्रमा समाप्त होती है उत्तर तट की यात्रा का वृत्तान्त अगले अध्यायों में पढ़िये।

विमलेश्वर से उस पार रेवासागर संगम को पार करके हरी धाम में पहुँचना होता है। हरी के धाम क्या पहुँचे मानों भवसागर पार करके भगवत् धाम में पहुँच गये यह यात्री अनुभव करते हैं।

उत्तरतट-हरिकाधाम रेवासागर संगम

हरी के धाम में स्थान अच्छा है, शिवजी का मन्दिर है। कई नये मन्दिर बने हैं, श्रीशुकदेवजी की मूर्ति स्थापित हुई है। द्वारका के श्रीशङ्कराचार्यजी के करकमलों द्वारा इन मन्दिरों की प्रतिष्ठा हुई थी। अब इसका नाम शुकदेवाश्रम हो गया है।

विमलेश्वर से हरि के धाम तक तो चाहें पैदल जाओ या वाहन से जाओ सभी को नौका द्वारा ही हरि के धाम तक आना होगा।

१—हरि का धाम—जहाँ इस पार नोंका से उतरते हैं, वहाँ से हरि का धाम लगभग मील भर है **रेवासागर संगम** यही स्थान है। रेवाजी तो यहाँ से दूर खाड़ी में ही समुद्र से मिल गयी है, किन्तु रेवासागर संगम इसी को कहते हैं। यहाँ समुद्र स्नान करते हुए प्रार्थना करते हैं—"हे समुद्रदेव! आप सूर्य के तेज हैं, जल ही आपकी देह है भगवान् विष्णु के आप वीर्य हैं और अमृत की नाभि हैं।" मार्कण्डेयजी धर्मराज से कह रहे हैं—"हे पांडुपुत्र! इस प्रकार श्रुति के वाक्य को कहकर नदियों के पति समुद्र में स्नान करना चाहिये। रेवासागर संगम तीर्थ में स्नान का बहुत बड़ा माहात्म्य है। इस पवित्र तीर्थ में स्नान करने के निमित्त देवलोक से देवतागण सदैव आया करते हैं यहाँ समुद्र को दर्भ का स्पर्श नहीं कराते हैं। यहाँ का दान पुण्य धर्म कर्म सभी चिरस्थायी हो जाता है।

२—रेवासागर संगम के समीप ही लोहरया ग्राम है उसके निकट **जमदग्नि तीर्थ** है, यह स्थान ग्राम से बाहर है। कहते हैं जिस समय परशुरामजी शिवजी की तपस्या में तल्लीन थे, उस समय उनके माता-पिता महर्षि जमदग्नि जी तथा माता रेणुकाजी यहाँ रहे थे उन्होंने यहाँ रहकर तपस्या की थी। इसलिए इस तीर्थ का विशेष माहात्म्य है।

३—जमदग्नि तीर्थ के समीप ही **रामतीर्थ** है जब परशुरामजी ने सहस्रबाहु सहित समस्त क्षत्रियों का विनाश किया था, तब यहाँ भी नर्मदा किनारे आकर माता-पिता की आज्ञा से रक्त द्वारा अपने पितरों का तर्पण किया था। इसीलिये यह स्थान नर्मदा तीर का कुरुक्षेत्र माना जाता है। यहाँ के दान धर्म स्नानादि का फल कुरुक्षेत्र के सदृश ही समझा जाता है। (रे० खं० १७४ अ०)

४—रामतीर्थ से कुछ दूर चलकर **लुण्ठेश्वर** तीर्थ है इसकी कथा इस प्रकार है। आदि सत्ययुग में जब नर्मदा मैया समुद्र से मिलने आ रही थीं तभी दूर से समुद्र ने नर्मदा मैया को आते हुए देखा। ये भी अत्यन्त प्रेम में निमग्न होकर-हर्ष विह्वलित होकर बालुका में लुण्ठन करते हुए-लोटते हुए-नर्मदाजी के समीप पहुँचे। तभी वहाँ एक शिवलिंग प्रकटित हो गया। वहाँ नन्दी खड़े थे उनका किसी कारण से पैर शिवलिंग पर पड़ गया। इससे शिवलिंग गोमुख के आकार के हो गये। तुरन्त नर्मदाजी उस शिवलिंग में प्रवेश कर गयीं। उस शिवलिंग के भीतर के जल का आचमन करते है, इसके पान से सोमपान करने का फल बताया है। यहां कार्तिक मास का तथा सभी पूर्णिमाओं का विशेष फल बताया गया है। यहां के स्नान दान पुण्य का अक्षय फल बताया है। [रे० १७४ अ०]

५—लुण्ठेश्वर से समुद्र के किनारे-किनारे ३ मील आगे **भूतनाथ** नामक स्थान है। शिवलिङ्ग के तीन मन्दिर हैं। किन्तु यहां मीठा जल नहीं है। इससे यात्री ठहरते नहीं। ६—भूतनाथ से लगभग तीन मील आगे देज ग्राम के समीप दधीचि ऋषि का आश्रम है, यहां **दूधनाथ महादेवजी** का स्थान है। समीप ही **भगवतीदेवी का मन्दिर** है।

७—दूधनाथजी से दो मील आगे अमलेठा नाम का ग्राम है, इसके बीच में ही **नीलकंठेश्वर, सोमनाथ** और **अमियानाथ** के मन्दिर हैं, इनके दर्शन करते हुए नर्मदा किनारे-किनारे आगे बढ़ते जायँ।

८—अमलेठा ग्राम से एक मील आगे **चन्द्रमौलेश्वर** शिवजी का मन्दिर है। कहते हैं कोई चन्द्रसेन नामक राजा हुए थे, उन्हीं के द्वारा स्थापित यह शिवलिङ्ग है। ९—चन्द्रमौलेश्वर से चार मील आगे मुवा ग्राम है यहाँ **सोमेश्वर** शिवजी का मन्दिर है। इनके दर्शन करते हुए नर्मदा के उत्तर किनारे आगे बढ़ते जायँ।

१०—सोमेश्वर से तीन मील आगे **कोल्याद** नामक ग्राम है। इसके समीप ही **कपिलेश्वर तीर्थ** है इसकी कथा इस प्रकार है—एक समय महर्षि कपिल रेवासागर संगम की यात्रा के निमित्त यहां आये। शान्त एकान्त मनोरम स्थान को देखकर रम गये और तपस्या करने लगे। तपस्या द्वारा उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई। यहाँ कपिला गौ के दान का विशेष माहात्म्य है।

११—कपिलेश्वर के सन्निकट ही **एरण्डी नदी का संगम** है इसकी कथा इस प्रकार है। प्राचीन काल में एरण्ड नामक मुनि थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी। अतः सन्तान के निमित्त उन्होंने भगवती जगदम्बा की आराधना की। इससे प्रसन्न होकर भगवती स्वयं ही इनके घर में कन्या रूप से प्रकट हुई। उनका नाम रखा गया एरण्डी। कन्या अत्यन्त ही सुन्दरी सुशीला तथा गुणवती थी। जब वह विवाह के योग्य हुई तो ऋषि ने उसका किसी सुयोग्य वर के साथ विवाह करना चाहा। किन्तु एरण्डी ने स्पष्ट कह दिया—"मैं विवाह नहीं करूँगी।" वह अपना घर छोड़कर यहाँ समुद्र के किनारे आकर तपस्या करने लगी। समुद्र ने उसके साथ संगम करना चाहा, तब वह नदी रूप होकर समुद्र में मिल गयी। नर्मदाजी पहिले ही समुद्र से मिल चुकी थीं। दोनों का संगम यहीं हुआ। यहां पर जो भी एरण्डी तथा नर्मदा की पूजा करते हैं उनके मनोरथ सिद्ध होते हैं। [रे० खं० १७३ अ०]

१२—एरण्डी संगम से एक मील आगे बैगणी ग्राम है उसमें **बैजनाथजी** का मन्दिर उससे दो मील आगे १३—**कपालेश्वरतीर्थ है**। शिवजी जब कपाल को लेकर सब तीर्थों में घूमे तो यहाँ आकर उन्होंने अपना कपाल रख दिया था। यह परम पुण्यप्रद तीर्थ है। यहां का शिवलिङ्ग उसी कपाल में से प्रकट हो गया। कपालेश्वर के स्मरणमात्र से अन्न कष्ट नहीं होता।

१४—कपालेश्वर के समीप ही **मार्कण्डेश्वर** तीर्थ है। यह तीर्थ कुजा ग्राम में है। श्रीनारदजी से नर्मदाजी की तथा शंकरजी की प्रशंसा सुनकर महर्षि मार्कण्डेय यहां पधारे और उन्होंने यहां पर अपने नाम की लिङ्ग स्थापित की। इसका भी अनन्त माहात्म्य है।

१५—इसी कुजा ग्राम में तीन शिवलिङ्ग और हैं उनके नाम १–**आषाढीश्वर**, २–**शृङ्गीश्वर** और ३–बल्कलेश्वर हैं। स्यात् आषाढ़ के मास में शिवजी यहां पधारे होंगे, जहाँ पर उन्होंने अपना दंड रखा वहां आषाढ़ेश्वर लिङ्ग उत्पन्न हो गया। शिवजी शृंगी बजाते हैं, जहां पर उन्होंने अपनी शृंगी रखी वहां शृङ्गेश्वर शिवलिंग प्रकट हुआ। शिवजी को एक लिंग और प्रकट हुई। शिवजी वहां अवधूत दिगम्बर वेष में फिर रहे थे। उसी समय एक वल्कल

वस्त्रों का व्यापारी वहां आ गया। शिवजी ने कहा—"इस शिवलिङ्ग को तू वल्कल से ढक दे।" उसके पास जितने भी वस्त्र थे सभी उढ़ा दिये किन्तु शिव लिङ्ग इतना बढ़ गया कि वह ढका ही नहीं गया। उसकी भक्ति से शिवजी इतने प्रसन्न हुए कि मालामाल कर दिया। वह शिवजी बल्कलेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुए। [रे० खं० १७३ अ०]

१६—कुञ्जग्राम के समीप ही कासवा नाम का ग्राम है, उसमें **कंथेश्वरतीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है—नर्मदा तीर का कण-कण कैलाश पति कपर्दी कपाली की क्रीड़ा स्थली है। किसी समय कापलिक वेष में शिवजी अपने भूत-पिशाच, डाकिनीं, योगिनियों के साथ क्रीडा करते हुए इस स्थान पर आ पहुँचे। यहां उन्होंने अपनी कथा रख दी थी। वहीं शिवलिङ्ग प्रकट हो गया। वे ही कन्थेश्वर के नाम से विख्यात हो गये।

१७—कंथेश्वर से एक मील आगे मेगाव की खाड़ी में **गणिता तीर्थ** है। यह भगवती शक्ति का सिद्ध पीठ है। यहां पर शिवजी और उसकी शक्ति भगवती सृष्टि के गणित करने के कर्म में तल्लीन हो गये। दोनों अपनी-अपनी महिमा का गान करने लगे। अन्त में शिबजी हार गये उन्होंने शक्ति की महिमा की श्रेष्ठता को स्वीकार कर लिया। इसलिए यह भगवती पराशक्ति की स्थली है। इसकी महिमा सुनकर संख्या करने वाले सांख्य शास्त्री यहां आये और उनका भ्रम दूर हुआ। यह बड़ी महिमा वाली शक्ति स्थली है।

१८—गणितातीर्थ के सन्निकट ही मार्कण्डेश्वर तीर्थ है। दीर्घजीवी मार्कण्डेय मुनिकी तपःस्थली नर्मदाजी ही हैं। स्थान-स्थान पर उनके स्थापित लिंग हैं। जब रेवासंगम की यात्रा को मार्कण्डेय मुनि वहां आये थे, तव बहुत से ऋषियों के साथ उन्होंने यहां तपस्या की थी। तब स्वयं साक्षात् शंकरजी ने प्रकट होकर इन्हें वरदान दिया था। इस तीर्थ में भक्तों की समस्त कामनायें पूर्ण होती हैं। [रे० खं० १७२ अ०]

१९—मार्कण्डेश्वर से कुछ ही दूर पर मुना ग्राम से **मुन्यालयतीर्थ** है। प्राचीनकाल में समस्त ऋषि मुनियों ने यहां एकत्रित होकर सबने अपना इसे आलय-स्थान-बनाया और सबने मिलकर तपस्या की तभी से यह मुन्यालयतीर्थ प्रसिद्ध हुआ। जो यहां शुद्ध चित्त से सदाचारपूर्वक सत्य का आश्रय लेकर तपस्या करता है वह सत्यलोक-मुनियों के लोक-को जाता है।

२०—मुनाड ग्राम के समीप ही **अप्सरेश्वर तीर्थ** है। किसी समय सरिद्‌ प्रवरा नर्मदाजी के दर्शनों के लिए स्वर्ग से अनेकों अप्सरायें आयीं। उन सबने बड़ी भक्ति भाव से इस तीर्थ की स्थापना की। यहां भक्तिभाव से दान धर्म तपस्या करने से गन्धर्व लोक की प्राप्ति होती है।

२१—अप्सरेश्वर तीर्थ के समीप ही **डिंडीश्वर तीर्थ** है। इसकी कथा सुनिए—एक समय औघड़दानी आशुतोष भगवान् शंकर अपनी डिंडी डमरू बजाते हुए भिक्षुक के रूप में इस ग्राम में आये। यह देखने के लिए कि ग्राम के लोगों में प्राणियों के प्रति दया के भाव हैं या नहीं। घर-घर भिक्षा माँगने लगे, किन्तु किसी ने भी इनको भिक्षा नहीं दी। जिस घर में जाते वहाँ भिक्षा न पाते तो वह घर जलने लगता। इस प्रकार ग्राम के बहुत से घर जल गए। अब लोगों ने जाना। यह साधु कोप का प्रतिफल है। अतः सब मिलकर साधु की शरण में गये और प्रार्थना की। आशुतोष भगवान् उन पर प्रसन्न हुए और उन्हें अपना डमरू दिया कि इसे बजाते जाओ। जिस घर के सम्मुख बजाते वह जैसा का तैसा ही बन जाता। इस प्रकार पूरा-का-पूरा गाँव पूर्ववत् बन गया। तभी से यह तीर्थ प्रसिद्ध हुआ। यह डिंडीश्वर स्वयम्भू लिंग है। शिवजी भक्तों की मनोकामना पूर्ण करते हैं। (रे० खं० १७३ अ०)

२२—डिंडीश्वर के समीप ही समनी ग्राम में **शुन्डीश्वर तीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है--लीलाधारी शिवजी एक बार गलित कुष्टी विप्र का वेष बनाकर इस स्थान में आए। उस समय एक ब्राह्मण के यहाँ श्राद्ध हो रहा था। बहुत से ब्राह्मण बैठे हुए भोजन कर रहे थे। कोढ़ी रूप में शिवजी ने भी भोजन की याचना की। इस पर यजमान ने तथा श्राद्धीय विप्रों ने उन्हें भोजन नहीं दिया उलटे उनका तिरस्कार किया। निराश होकर वे वन में चले गये। तब सब ब्राह्मणों ने अपनी पत्तलों पर देखा परसे हुए पदार्थों में कीड़े-ही-कीड़े भरे पड़े हैं।

अब तो ब्राह्मण समझ गये उन्होंने यजमान से कहा—"हम लोगों ने जो अतिथि का तिरस्कार किया है, यह उसी का फल है। अतिथि रूप में वे भगवान् ही थे। चलो उन्हें खोजें।" यह कहकर सब-के-सब वन में उन्हें खोजने चले। बड़ी कठिनता से वे मिले। सब उन्हें सत्कारपूर्वक ग्राम में ले आए। सबने उन्हें प्रेमपूर्वक भोजन कराया और उनकी स्तुति की। तब भगवान् ने कहा--"देखो! जो भूखा अभ्यागत अपने यहाँ आ जाय उसे भोजन देने में बिलम्ब नहीं करना चाहिए। यही सारातिसार उपदेश है।" ऐसा कहकर भोजन करके वे उसी कुष्टी रूप में वहीं निवास करने लगे।

एक बार ग्राम में बनभोज का आयोजन हुआ। सब लोग घर से अच्छे-अच्छे पदार्थ बनाकर बन में खाने के लिए ले गए। शुन्डी रूप में शिवजी वहीं बन में विराजमान थे, तथापि इन लोगों ने उन्हें भोजन के लिए आमन्त्रित नहीं किया। जब ये अपने ही निमित्त बनाए हुए पदार्थों को अपने ही आप खाने को बैठे तो वे सब पदार्थ क्रमियुक्त दिखायी दिए। तब सबको बोध हुआ। अब

उन शुन्डी रूप शिव के समीप गए। वहाँ जाकर देखते हैं कि शुन्डी तो वहाँ हैं नहीं। एक सुन्दर शिवलिंग वहाँ प्रकाशित हो रही है। सबने मिलकर उसका पूजन किया। तभी से यह तीर्थ शुन्डोश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कार्तिक की पूर्णिमा यदि कृत्तिका नक्षत्र युक्त हो तो उसका यहाँ काशी के सदृश माहात्म्य है। वैसे प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी का यहाँ स्नान दान का विशेष माहात्म्य है।

२३—शुन्डीश्वर से आगे ६ मील पर अमलेश्वर नामक ग्राम है। उसमें **अमलेश्वर तीर्थ** है। इसकी भी कथा सुनिये–एक बार नाना रूपधारी कौतुकी कैलाशपति शंकर बारह वर्ष के बालक का वेष बनाकर बहुत से बालकों के साथ आँवले के पेड़ के समीप क्रीड़ा करने लगे। आप स्वयं आँवले के पेड़ पर चढ़ गये और आँवला तोड़-तोड़कर चारों ओर फेंकने लगे। बालकों से कहने लगे—"आँवला बीनो।" बच्चे आंवलों के फलों को बीनने लगे। लड़के जब चारों ओर से आँवले बीनकर सब वृक्ष के नीचे एकत्रित हुए तो वहाँ फल तोड़ने वाले बालक को न पाकर वृक्ष के नीचे एक शिवलिङ्ग को देखा, तभी से ये अमलेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हो गये। यह परम पावन तीर्थ है।

(रे० ख० १७२ अ०)

२४—अमलेश्वर से पाँच मील आगे **भारभूतेश्वर तीर्थ** है। इसकी भी कथा सुनिये—प्राचीन काल में विद्वान पंडितों के यहाँ गुरुकुल में विद्यार्थी पढ़ने को आया करते थे। कुछ गुरुकुलों में विद्यार्थी बनी बनाई भिक्षा माँगकर गुरु के अर्पण कर देते थे। कुछ गुरुकुलों के छात्र सूखी भिक्षा माँग लाते और पारी-पारी से भोजन बनाकर सबको पवाते थे। विद्वान लोग छात्रों को पुत्रवत् पालते थे और प्रेमपूर्वक पढ़ाया करते थे। ऐसे ही एक विद्वान् पंडित विष्णु शर्मा नामक ब्राह्मण यहां रहते थे। यह रैवत मन्वन्तर के सत्ययुग समय की बात है। विष्णु शर्मा के समीप बहुत से विद्यार्थी पढ़ते थे। वे स्वयं शिलोंच्छ वृत्ति से निर्वाह करते। उनके आश्रम के समीप जो भी अतिथि अभ्यागत आ जाता, उसका वे भगवत् बुद्धि से सत्कार करते। अन्न दान से चारों ओर कीर्ति यश फैल जाता है। विष्णु शर्मा की अन्नदान के कारण चारों ओर कीर्ति फैल गई।

एक बार हमारे कौतुकी शंकर उनके यश की ख्याति के निमित्त स्वयं एक वटु विद्यार्थी का वेष बनाकर विष्णु शर्माजी के समीप विद्या पढ़ने की विनय करने लगे। विष्णु शर्मा ने कहा—'देखो भैया ! विद्या गुरु की सेवा से प्राप्त होती है, तुम्हें सेवा करनी होगी।"

शंकरजी ने कहा—"आप जो भी आज्ञा करेंगे मैं वही सेवा करूँगा।"

इस पर उन्होंने वटु वेषधारी विश्वेश्वर को अपने आश्रम में रख लिया। एक दिन इन शंकर वटु की भोजन बनाने की पारी आई। गुरु सहित और सब विद्यार्थी तो नर्मदा स्नान को चले गये। शंकर वटु भोजन बनाने को रह गये। उन्होंने अपने योग बल से कामधेनु को बुलाया और पल भर में ही नाना प्रकार के व्यञ्जन बनवाकर थालों में परोसकर आसनों के सम्मुख रखकर, ये भी नर्मदा किनारे पहुँच गये।

सब विद्यार्थियों ने कहा—"क्यों भाई ! तुम यहाँ कैसे आ गये। भोजन कौन बनावेगा, तुम बड़े कामचोर हो ?"

शंकर वटु ने कहा—"तुम्हें आम खाने या पेड़ गिनने ?" समय पर तुम्हें भोजन बना बनाया मिलेगा।"

विद्यार्थियों ने कहा—"तुम तो यहाँ चले आये हो। भोजन कौन बनावेगा ? समय पर कैसे भोजन मिल जायगा ?"

शंकर वटु ने कहा—"बहुत बक-बक करने की आवश्यकता नहीं। यदि जाते ही तुम्हें आसन पर बैठते ही तुरन्त सुन्दर परसा हुआ भोजन न मिले तो तुम मुझे जो चाहो सो दण्ड देना। यदि जाते ही तुरन्त भोजन मिल जायगा तो मैं तुम सबको नर्मदाजी में फेंक दूँगा।" सबने यह बात स्वीकार की। गुरु सहित सब विद्यार्थी आश्रम पर पहुँचे तो क्या देखते हैं। सुन्दर आसन लगे हुए हैं। उनके सामने थालों में भाँति-भाँति के पक्वान्न परसे हुए हैं। सबने प्रेमपूर्वक प्रसाद पाया।

दूसरे दिन सब विद्यार्थियो के साथ शंकर वटु नर्मदा स्नान को गये। स्नान करके बोले—"देखो भाइयो ! कल मैंने जो प्रतिज्ञा की थी वह पूरी हो गई। अब मैं तुम सबको नर्मदाजी में फेकता हूँ।" यह कहकर सबको गठरी (भार) में बांधकर नर्मदाजी में फेंक दिया और आकर गुरुजी से सब समाचार बता दिया।

गुरुजी ने कहा—"अरे भैया ! यह ती तुमने बहुत बुरा काम किया। तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। सभी को एक गठरी में बांधकर नर्मदाजी में फेंक दिया। वे सब मर गये होंगे। तुम्हें पाप लगेगा। तब शंकरजी ने अपने योग बल से गठरी में बँधे सभी विद्यार्थियों को गुरु के समीप उपस्थित कर दिया। वे सब-के-सब मृतक थे।"

गुरुजी ने कहा—"जैसा तुमने इन्हें नर्मदाजी से मांग लिया है, वैसे ही इन्हें जीवित भी कर दो, नहीं तो सब लोग तुम्हें भी मार डालेंगे।"

तब शंकर वटु हँसने लगे और वहीं अन्तर्धान हो गये। जहां पर सब मृतक लड़कों की बँधी (भारभूत) गठरी रखी थी, वहाँ एक दिव्य शंकर लिंग प्रकट

हो गई और बँधे हुए मृतक छात्र जीवित हो गये। तभी से यह लिङ्ग भारभूतेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हो गई। यहाँ के स्नान दान तप से अनेकों हत्यारे हत्या के दोष से मुक्त हो जाते हैं. इस सम्बन्ध की भी एक कथा है। वह इस प्रकार है—

प्राचीन काल में एक व्यापारी नौका के द्वारा जा रहा था। उसी नौका में एक सोमशर्मा नामक ब्राह्मण बैठा था। उसके पास द्रव्य था। उस द्रव्य के लोभ के कारण व्यापारी वैश्य ने उसकी हत्या करके उसका सब द्रव्य ले छिया और उसे मारकर समुद्र में फेंक दिया। ब्रह्महत्या, मित्र द्रोह आदि घोर पापों के कारण मारकर उसे नरकों में अनेक प्रकार की यातनायें भोगनी पड़ीं। फिर पृथ्वी पर कूकर शूकर आदि योनियों में होकर उसे बैल की योनि प्राप्त हुई।

एक राजा के यहाँ बोझ से भरी गाड़ी को खींचने लगा। जब कार्तिकी पूर्णिमा का पर्व आया तब राजा भारभूतेश्वर तीर्थ में अपने परिवार सहित स्नान करने गाड़ियों में आया। एक गाड़ी में जुतकर यह बैल भी आया। सबने नर्मदाजी में स्नान किया। इस बैल को भी स्नान कराया। स्नान करते ही इसका शरीर नर्मदाजी में छूट गया और देवदूत इसे वैकुण्ठ को ले गये। यह ब्रह्महत्या दोष से निर्मुक्त बन गया। इसी प्रकार इस तीर्थ के माहात्म्य से अनेक प्राणी हत्यादि के दोष से निर्मुक्त हो गये। इस तीर्थ में कार्तिकी पूर्णिमा तथा शिबरात्रि का विशेष माहात्म्य है। वैसे तो प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी का यहाँ पर्व है। वैशाख मास में अधिक है। (रे॰ खं० १७१ अ०)

२५—भारभूतेश्वर से कुछ ही दूर पर वरुआ नामक ग्राम में **ऋणमोचन तीर्थ** है। सभी मनुष्यों पर देवऋण, पितृऋण तथा ऋषिऋण तीन ऋण रहते हैं। यज्ञ द्वारा देवऋण, सन्तान द्वारा पितृऋण और अध्ययन अध्यापन द्वारा ऋषि ऋण से छुटकारा होता है। प्राचीन काल में दुश्चवन नाम के एक राजा थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी। अतः पुत्र कामना से उन्होंने यहां नर्मदा किनारे आकर तपस्या की। सात महीने पश्चात् शिवजी प्रसन्न हुए और राजा को प्रत्यक्ष दर्शन देकर पुत्र होने का वरदान दिया। तभी राजा तीनों ऋणों से निर्मुक्त हो गया। ऋणों से मुक्त होने की इच्छा से इस तीर्थ में जप, तप, दान धर्म करना चाहिए।

२६—ऋणमोचन तीर्थ के सन्निकट ही टिंबी नामक ग्राम में सुवर्ण **बिन्देश्वर तीर्थ** है। प्राचीन काल में एक धनिक वैश्य ने करोड़ों सुवर्ण के विन्दु यहाँ ब्राह्मणों को दान किये थे इससे उसे वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति हुई। इस तीर्थ में सुवर्ण दान का विशेष माहात्म्य है। (रे. खं. १७०, अ.)

२९—सुवर्णविन्देश्वर से आधा मील के लगभग एक **दशकन्या तीर्थ** है। इसकी भी कथा सुनिये—प्राचीन काल में दश ब्राह्मण विरक्त वेष से यहाँ नर्मदा किनारे तप कर रहे थे। वे सांख्य शास्त्र के अनुयायी थे। शिवजी भ्रमण करते हुए यहाँ पहुँचे। उनके मनोगत भावों को जानने के लिये उन्होंने अत्यन्त ही सुन्दरी दश कन्यायें बनायीं और स्वयं वृद्ध ब्राह्मण का वेष बनाकर इन तपस्वी ब्राह्मणों के समीप पहुँचे और उनसे कहने लगे—"हे ब्राह्मणो ! मैं बूढ़ा हो चुका हूँ। मेरे दो पत्नियाँ हैं और ये दश कन्यायें हैं। पुत्र कोई नहीं है। इस शरीर का क्या भरोसा मैं इन कन्याओं का विवाह कर देना चाहता हूँ आप तपस्वी हैं, वैराग्यवान्, आप इन कन्याओं को स्वीकार कर लें तो बड़ी कृपा हो।"

वे प्रकृति पुरुष का विवेचन करते हुए तपस्या कर रहे थे। किन्तु कन्याओं के रूप लावण्य तथा सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो गये और उन्होंने विवाह कर लिया। इस प्रकार इस तीर्थ को स्वयं साक्षात् शंकरजी ने ही निर्माण किया है। जिनका विवाह न होता हो वे यहाँ आकर तपस्या करें उनका अवश्य हो जायगा।(रे. खं. १७० अ.)

भृगुक्षेत्र भड़ौच

२८—इस तीर्थ से लगभग एक मील पर **भृगुक्षेत्र भड़ौच** है। इस क्षेत्र में बहुत से तीर्थ हैं किन्तु **४६ बहुत प्रसिद्ध तीर्थ हैं**, उनका अत्यन्त संक्षेप में यहाँ वर्णन किया जाता है।

ढोंढेश्वर तीर्थ अथवा क्षेत्रपाल तीर्थ—ढुंढा एक राक्षसी है, जो बच्चों को खाती है। एक ढुंढा एक अग्निहोत्री ब्राह्मण के बालक को खाने के लिए जा रही थी। उसी समय संयोगवश वहां देवदूत आ गये। उन्होंने कहा—देखो, आज से इस ग्राम में कभी मत आना। यहां ढुंढेश्वर शिवजी हैं। तब ढुंढा ने मान लिया। यहाँ शिवजी के दर्शन करने से ढुंढ़ा राक्षसी का तथा भूत, प्रेत, पिशाचों का भय नहीं होता। (रे. खं. १६४ अ.)

कुररी तीर्थ —प्राचीन समय में एक कुररी का जोड़ा यहां नर्मदाजी में गिरकर मर गया। उसे शिवलोक की प्राप्ति हुई। ब्रह्मेश्वर तीर्थ—जब ब्रह्माजी को अपूज्य होने का शाप मिला, तब उन्होंने यहाँ तप करके सिद्धि पाई। कोटि तीर्थ—यहाँ नर-नारायण ऋषियों ने तप किया। करोड़ों ऋषियों ने यहाँ कोटेश्वर की स्थापना की। शिखि तीर्थ—महराज वसु ने सौ वर्ष तक गज की सूँड़ की धारा के समान निरन्तर घृत से यज्ञ किया। इससे अग्नि को मन्दाग्नि हो गयी। यहाँ तप करने से रोग दूर हुआ। यहां तप करने से मन्दाग्नि नहीं होती। [रे० खं० १६४ अ०]

देवतीर्थ—जब भृगुपुत्री लक्ष्मी का नारायण से विवाह हुआ तो उसी उपलक्ष में सब देवों ने **देवतीर्थ** स्थापित किया। मत्स्येश्वर तीर्थ—मत्स्यावतार में शङ्खासुर को मारने के निमित्त मत्स्य भगवान् ने यहाँ तप किया था। मातृ-तीर्थ—लक्ष्मीजी के विवाह के उपलक्ष में सभी देवियों ने इस मातृ तीर्थ की स्थापना की। नर्मदेश्वर तीर्थ—भृगुजी ने तपस्या करके नर्मदाजी को प्रसन्न करके इन नर्मदेश्वर की स्थापना की।

बालखिल्य तीर्थ—यहाँ बालखिल्य ऋषियों ने तपस्या करके सिद्धि प्राप्त करके इस तीर्थ की स्थापना की। सावित्री तीर्थ—यहाँ ब्रह्माजी ने सूर्य-पुत्री सावित्री से विवाह करके तपस्या द्वारा सृष्टि करने की शक्ति पाई। गोना गोनी तीर्थ—यहाँ शिवजी ने गौरी के साथ विवाह किया। यहाँ विवाह करने से आयुष्मान् सन्तति होगी।

अश्विनी तीर्थ—अश्विनीकुमार बैद्य थे उन्हें देव भाग नहीं मिलता था। यहां तप करने से वे देव भाग के भागी बने। दारुकेश्वर तीर्थ—श्रीकृष्ण के सारथी दारुक ने यहाँ तपस्या करके सिद्धि पाई। अन्य सिद्धों ने भी सिद्धि पाई। सरस्वती तीर्थ—वृहस्पति सहित सभी देवों ने शंकरजी की आराधना करके यहाँ विद्या प्राप्त की थी। शूलेश्वर और शूलेश्वरी देवी—माण्डव्य ऋषि की शूली पर जो देवी थीं ये वे हैं। १०८माता में से हैं। ब्रह्मभोज का माहात्म्य है। भृग्वेश्वर तीर्थ—भृगु ऋषि ने दिव्य सहस्र वर्षों तक गायत्री तप द्वारा सिद्धि प्राप्त की। वेदोक्त कर्मो का बड़ा माहात्म्य है। अट्टहासेश्वर—एक ऋषि तप कर रहे थे। उसके गर्व को देखकर शिवजी ने अट्टहास किया। देवों ने इसे स्थापित किया। कण्ठेश्वर—ब्रह्म पुत्र कण्ठ ने सब शास्त्र कण्ठस्थ करके दिव्य सौ वर्ष तक तप किया। सिद्धि प्राप्त की। यहाँ सर्व कर्म सिद्ध होते हैं। भास्कर तीर्थ—महर्षि भृगु ने सूर्य की आराधना करके सिद्धि प्राप्त की। यहाँ प्रत्येक रविवार तथा शुक्ल सप्तमी का माहात्म्य है।

प्रभा तीर्थ—यहाँ सूर्य की प्रभा ने तपस्या की। यहाँ स्नान दान धर्म से चक्षु रोग नष्ट होते हैं। हंस तीर्थ—यहाँ हंस ने तपस्या करके ब्रह्माजी का वाहन बनने का वर प्राप्त किया। देवतीर्थ—समस्त देवताओं ने मिलकर इसे स्थापित किया। यह वैष्णवों का परम तीर्थ है। ग्रहण का विशेष माहात्म्य है। चौल तीर्थ—लक्ष्मीनारायण के विवाह के अनन्तर जलक्रीड़ा करते हुए चुल्ली फेंकी। देवों ने इसे तोर्थ बनाया। मूल श्रीपति तीर्थ—भृगु-पुत्री लक्ष्मी को विश्वरूप दिखाकर विष्णु भगवान् ने उसके साथ विवाह किया। पवित्र तीर्थ है। नारायण तीर्थ—नर-नारायण की तपस्या भङ्ग करने का इन्द्र ने प्रयास किया। सफल न हुए तब नारायण ने यहाँ तप किया। विश्वरूप तीर्थ–भगवान्

नारायण ने भृगुजी को विश्वरूप दिखाकर ज्ञान दिया। यहाँ गीता पाठ का माहात्म्य है।

त्रिविकेश्वर तीर्थ—राजा बलि का सर्वस्व हरण करके उसे पाताल भेजा तो फिर उसने यहाँ आकर तप किया। कपिलेश्वर तीर्थ—कपिलजी ने सब तीर्थों से इस भृगु क्षेत्र की नारदजी से प्रशंसा सुनकर यहाँ तपस्या की है। सिद्धेश्वर तीर्थ—यहाँ सिद्धेश्वरी देवी है। यह स्वम्भू लिंग है। सिद्धेश्वरी देवी इस क्षेत्र का संरक्षण करती हैं। द्वादशादित्य तीर्थ-बारह आदित्यों ने सूर्य पद प्राप्ति हेतु यहाँ तप करके सिद्धि प्राप्त कर ली। चन्द्रप्रभास तीर्थ—चन्द्रमा ने समस्त सिद्धों के सहित परम प्रसन्नता के साथ स्थापित किया। ग्रहण स्नान का माहात्म्य है। उत्तीर्ण बराह तीर्थ—पांचवें कल्प में यहाँ बराह भगवान ने पृथ्वी का उद्धार किया था। ज्येष्ठ शुक्ल ११ का विशेष माहात्म्य है। सोमेश्वर तीर्थ—सोम का क्षय रोग प्रयाग संगम पर नष्ट हुआ। फिर सोम ने यहाँ ७ वर्ष तप करके स्वलोक प्राप्त किया।

शालग्राम तीर्थ—नारदजी द्वारा शालग्राम स्थापित है। एकादशी का विशेष माहात्म्य है। वैष्णवों का यह परम तीर्थ है। ज्वालेश्वर तीर्थ—पृथ्वी पर राक्षसों के उत्पात बढ़ने पर ज्वाला उत्पन्न हुई। राक्षसों का वध करके पृथ्वी में समा गई स्वयम्भू लिङ्ग रह गये। कनखल तीर्थ—गरुड़जी ने देवों की उपासना करके यहाँ हरि वाहन और पक्षीन्द्र का वर पाया। यह सिद्धदा देवी हैं। सब देवी यहाँ रहती हैं। एरंडी तीर्थ—एरंड मुनि की पुत्री एरंडी ने तप करके यहाँ सिद्धि प्राप्त की। अब तक वह क्षेत्रपाल के रूप में रहकर क्षेत्र की रक्षा करती हैं। धूप पाप तीर्थ—नन्दीश्वर ने धूतेश्वरी देवी की स्थापना की। यहाँ शिवजी ने नन्दी से भृगुजी की रक्षा की। यहाँ ब्रह्महत्या नष्ट होती है। केदार तीर्थ-भृगुजी ने ब्राह्मणों की रक्षार्थ इस स्वयम्भू लिङ्ग की स्थापना की। यहाँ शिव पूजन का केदारनाथ के समान फल है। सौभाग्य सुन्दरी देवी—श्रीलक्ष्मीजी १८ दुर्गा, १६ क्षेत्रपाल, ११ रुद्र, १२ आदित्य, १२ गणेश, २१ वसु, ८ नागों सहित यहाँ रहती हैं। यहीं बृषखात कुण्ड है नन्दी के खुर से उत्पन्न हुआ है।

दशाश्वमेध तीर्थ—राजा प्रियव्रत ने यहाँ दश अश्वमेध यज्ञ किये थे। यहां सरस्वतीजी रहती हैं। संन्यास लेने का माहात्म्य है। गौतमेश्वर तीर्थ—गौतम ऋषि ने पुत्रेच्छा से यहाँ सहस्रों वर्ष तप किया था। कश्यप ऋषि द्वारा प्रशंसित पुण्य तीर्थ है।

गङ्गावाह एवं शङ्खोद्धार तीर्थ—गङ्गाजी यहां तप करके निष्पाप हुयीं। यहाँ स्नान करने से सर्व तीर्थमयी गङ्गा का फल मिलता है। महारुद्र स्थान—

सँधवा देवी एवं शाक्त रूप—यहां योगिनी क्रीड़ा करती है। शाक्तकूप में नर्मदा जल है। पुण्य तीर्थ है। पिंगलेश्वर एवं भूतेश्वर—शिवजी द्वारा और सब ऋषियों द्वारा समस्त तीर्थों के जल से यह तीर्थ स्थापित है।

इस प्रकार भृगुक्षेत्र (भड़ौच) में अनेकों तीर्थ हैं। यहाँ भृगु ऋषि की तपस्थली है। इस नगरी ने संसार के बहुत से उलट फेर देखे हैं। पहिले यह सनातनी आर्य हिन्दु राजाओं की सदा से राजधानी रही। ग्यारहवीं शताब्दी में सिद्धराज जयसिंह ने नर्मदा किनारे बड़ा भारी किला बनवाया था। उसके ध्वंसावशेष अभी तक विद्यमान है। फिर मुसलिम शासन आया। बहादुरशाह और औरङ्गजेब ने इस किले का जीर्णोद्धार कराया। सन् १३०० से लगभग साढे चार सौ वर्ष यह मुसलमानों के अधीन रहा। अंगरेजी कम्पनी ने उनसे छीन लिया ११ वर्ष उसके अधीन रहा। उनसे मराठों ने छीन लिया। २० वर्ष मराठों के अधीन रहा। मराठों से अंगरेजों ने छीन लिया लगभग १५० वर्षों तक अंगरेजों के अधीन रहा। स्वराज्य होने पर यह भारत सरकार के अधीन है। यहाँ प्रायः नित्य ही ज्वारभाटा आते हैं और रामपुर ग्राम तक जाते हैं, जो यहां से २५ मील होगा।

२९—भृगुक्षेत्र (भड़ौच) से थोडी दूर आगे **घोड़ेश्वर तथा बैद्यनाथ तीर्थ** है। यहां घोड़े के मुख को धारण करके अश्विनी कुमार आये। यहां उन्होंने तप करके सिद्धि प्राप्त की। यहां वैद्यविद्या फली भूत होती है।

३०—घोड़ेश्वर से कुछ दूर पर तबरा ग्राम के निकट **कपिलेश्वर तीर्थ** हैं। सगरपुत्रों को भस्म करने के पातक निवारणार्थ कपिलदेव ने यहां तप किया था। ज्येष्ठ शुक्ल १४—अंगार चतुर्थी नवमी, अमावास्या पूर्णिमा को यहाँ का विशेष माहात्म्य है।

३१—कपिलेश्वर के सन्निकट कलोद ग्राम में **गोपेश्वर तथा कोटेश्वर तीर्थ** है। मथुरा के नन्द गोप शुक्लतीर्थ दर्शन करके कोटेश्वर आये। प्रति दिन दश करोड़ आक के पुष्पों से शिवजी की पूजा करने से वे शिवजी के गणों में हो गये। उन्हीं के स्थापित ये गोपेश्वर हैं।

एककोटि ऋषियों ने बाणासुर निर्मित इस कोटेश्वर लिंग का दर्शन करके सिद्धि प्राप्त की। यहां गायत्री जप का विशेष माहात्म्य है। वैशाख तथा अधिकमास में यहां कोटिलिंग उत्पन्न होते हैं।

३२—कोटेश्वर से ३ मील आगे **शुक्लतीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है—प्राचीन काल में इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न अवन्ती नरेश राजर्षि चाणक्य बड़े ही बुद्धिमान तथा पराक्रमी थे। उन्होंने प्रतिज्ञा करली थी कि जिस समय कोई मुझे धोखा दे देगा, उसी समय मैं अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगा। इस

पर अनेक देवताओं ने उन्हें धोखा देने की चेष्टा की, किन्तु वे सफल न हो सके।

सुन्द और उपसुन्द नाम के दो भाई दैत्य थे। वे ब्रह्मशाप से कौआ योनि को प्राप्त हो गये थे। उन्होंने किसी प्रकार महाराज चाणक्य को धोखा दिया। अब महाराज को प्राण त्यागना ही था। किन्तु वे ऐसे तीर्थ में प्राण त्यागना चाहते थे, जहां प्राण त्यागने से मुक्ति हो। उन्होंने धर्मराज से इस बात की जिज्ञासा की। धर्मराज ने बताया–"जिस तीर्थ में काला सूत शुक्ल वर्ण का हो जाय, वहीं मरने से मुक्ति होगी। महाराज काला सूत लेकर अनेकों में गये, किन्तु वह शुक्ल नहीं हुआ। चलते-चलते महाराज जब रेवा किनारे–इस तीर्थ में आये तो वह काला सूत शुक्लवर्ण का हो गया। तभी से यह शुक्ल-तीर्थ के नाम से विख्यात हुआ। इस तीर्थ में समस्त तीर्थों का प्रभाव है, ब्रह्महत्या भी नाश हो जाती है। सूर्य-चन्द्र ग्रहण, कार्तिक, वैशाख, आषाढ तथा माघ की पूर्णिमा का विशेष माहात्म्य है।

३३—यहां से एक मील पर–**मंगलेश्वर तीर्थ** है। शुक्लतीर्थ के समीप ही **हुंकारेश्वर तीर्थ** है। इसकी भी कथा सुनिये। प्राचीनकाल में कुछ ब्राह्मण रेवा के तट पर ध्यान पूजन कर रहे थे। नर्मदा जी ने मन में सोचा–देखें इन्हें क्रोध आता है या नहीं। यह सोचकर नर्मदाजी बढ़ने लगी। इनके टाट कमंडलु पानी में बहने लगे। ब्राह्मणों ने तो कुछ नहीं किया। भगवान् ने ब्राह्मणों की रक्षार्थ हुँकार की। इससे नर्मदाजी एक कोश दूर गयी। तभी से यह अत्यन्त पवित्र हुँकार स्वामी विष्णुतीर्थ प्रसिद्ध हुआ। इस तीर्थ में सम्पूर्ण धर्म कर्म सफल होते हैं। (रे. खं. १४२, १४३, अ.)

हुँकारेश्वर से सन्निकट ही **रवितीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है। प्राचीनकाल में सत्ययुग में एक जाबाली नामक बड़े धर्मात्मा थे। उनकी धर्मपत्नी जब मासिक धर्म से निवृत्त हो गयी। तब पुत्रेच्छा से अपने पति के समीप गई। उसके पति ब्राह्मण ने उसका तिरस्कार किया। इससे उसे बड़ी ग्लानि हुई और सौ उपवास करके उसने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया। इस पाप के कारण ब्राह्मण के शरीर में कुष्ट हो गया। उसने ब्राह्मणों से प्रायश्चित्त पूछा तो सबने शूल पाणेश्वर जाने को कहा। उस ब्राह्मण ने यहाँ शुक्लतीर्थ के समीप सहस्र वर्षों तक घोर तपस्या करके सूर्यदेव को प्रसन्न करके सिद्धि प्राप्त की। तभी से यह रवितीर्थ प्रसिद्ध हुआ। यहाँ आदित्येश्वर में तपस्या करने से सर्व कर्म सफल होते हैं। रविवार का विशेष माहात्म्य है। तप से रोग नाश होते हैं।

रवितीर्थ के समीप **भार्गलेश्वर** हैं। कश्यप पुत्र भार्गल ने तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की, शिवगण बन गया।

भार्गलेश्वर से कुछ ही दूर निकोरा ग्राम में **श्वेतवाराह तीर्थ** है। पृथ्वी का उद्धार करके वाराह भगवान् ने इसे कलियुगी जीवों के उद्धारार्थ बनाया।

श्वेतवाराह तीर्थ के सन्निकट ही **अंकोल** और **लिंकेश्वर तीर्थ** हैं। हिरण्याक्ष को मारकर वह वराह भगवान् ने अंकोल वृक्ष के नीचे विश्राम किया। देवों ने लिंकेश्वर की स्थापना करके पूजा की तभी से यह पुण्य तीर्थ हुआ।

३४—लिंकेश्वर के समीप ही अंगारेश्वर ग्राम में **अंगारेश्वर तीर्थ** है। इस तीर्थ को मंगल ने तप करके स्थापित किया। तभी मंगल ग्रह बने। मंगल की चतुर्थी का माहात्म्य है। मंगल ग्रह शान्ति होती है। (रे० खं० १३९ अ०)

३५०—अंगारेश्वर से आगे धर्मशाला ग्राम में अमाहक (पितृतीर्थ) है। रामसोम द्वारा स्थापित हैं। अमावस्या को पितरों को पिंड देने का माहात्म्य है। यहीं नर्मदाजी में **बह्नितीर्थ** है। एवं **ब्रह्मशिला** है। शुक्ल वस्त्र से तप करने से सौ कन्या दान का फल है।

३६—धर्मशाला से तीन मील आगे **रुक्मिणीतीर्थ** है। इसके समीप ही १. रामकेशव तीर्थ, २. शिवतीर्थ, ३, जयवाराह तीर्थ और ४. चक्रतीर्थ ये चार तीर्थ और है।

रुक्मिणी तीर्थ—में श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के साथ विवाह किया था। यह प्रयाग कुरुक्षेत्र तथा प्रभास के सदृश है। रामकेशव तीर्थ—नर-नारायण, राम-कृष्ण तथा सभी अवतारों द्वारा पूजित परम पावन तीर्थ है। शिवतीर्थ—हिरण्याक्ष वध के पश्चात् वाराह भगवान की यहाँ शिवजी ने स्वयं पूजा की थी। जयवाराह तीर्थ—हिरण्याक्ष को मारकर वराह ने तप किया था। चक्र-तीर्थ—हिरण्याक्ष वध करके वराह ने चक्र धोया था।

३७—रुक्मिणी तीर्थ से दो मील नादग्राम में **नन्दातीर्थ** है। यहाँ नन्दादेवी है। महिषासुर वध के पश्चात् आनन्दित होकर देवी ने यहाँ आकर शिवजी की पूजा की। नर्मदाजी ने देवी की पूजा की। यहाँ नन्दाह्लद, भैरव, केदार और रुद्रमहालय ये चार तीर्थ हैं। नन्दादेवी के पूजन से सन्तान वृद्धि होती है।

३८—नन्दातीर्थ के निकट दिलवाड़ा ग्राम में **सोमतीर्थ** है चन्द्रमा का गुरु-तल्पग का दोष यहीं निवृत्त हुआ। यहाँ **शक्रतीर्थ** और **कर्कटेश्वर** तथा **ओज** ये तीन तीर्थ और हैं।

१. शक्रतीर्थ—अहल्या के कारण गौतम ऋषि का दिया इन्द्र का शाप यहीं मिटा। इन्द्र ने १०० यज्ञ किये। २—कर्कटेश्वर—पूर्वकाल में काशिराज जयन्त

बड़ा पापी था, मरकर वह कुलीर पक्षी हुआ। पक्षिराज ने उसे मारकर यहाँ नर्मदा किनारे फेंक दिया। तभी शिवलिंग प्रकट हो गयी। पक्षिराज ने पूजन किया। बालखिल्य ऋषियों ने भी यहाँ पूजा की। (रे० खं० १३६ अ०) ३— ओज (अयोध्यापुरी) अहिल्या तीर्थ को श्रीरामजी जब नर्मदा किनारे आये तो उनके मन में संकल्प हुआ। नर्मदा किनारे भी हमारी अयोध्या होनी चाहिये। तभी उन्होंने यहाँ अयोध्याजी का निर्माण किया। यहाँ स्नान दान दान धार्मिक कार्यों का अयोध्या के सदृश फल होता है।

३९—ओज से ही कुछ दूर कोरल ग्राम में **कुबेरतीर्थ** है। इसके अतिरिक्त १–वरुणेश्वर २–वायवेश्वर और ३–याम्येश्वर ये तीन तीर्थ और हैं।

यहाँ कुबेर, वरुण, वायु और यम इन चारों लोकपालों ने तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की। कुबेर धनद और यक्षेश्वर बन गये। वरुण जलाधिपति हुए। वायु सर्वत्रगामी हुए। यम दंडाधिकारी हुए। यहाँ ब्राह्मण भोजन का विशेष माहात्म्य है। लोकपाल कह गये हैं ब्राह्मण राजारूपी बृक्ष के मूल के सदृश हैं। राजा के सेवक भृत्य वृक्ष के पत्तों के सदृश हैं। मन्त्री मानों उसकी शाखा हैं। इसलिये मूल का यत्नपूर्वक संरक्षण करना चाहिएं। यदि मूल गुप्त हो जायगा तो बृक्ष का नाश हो जायगा। यहाँ अमावस्या पूर्णिमा का विशेष माहात्म्य है। कोरल ग्राम में इतने तीर्थ और हैं। १–आशापुरी देवी, २–आदि-वाराह तीर्थ, ३-कोटितीर्थ, ४–ब्रह्मप्रसादज तीर्थ, ५–मार्कण्डेय तीर्थ, ६–भृग्वी-श्वर तीर्थ, ७–पिंगलेश्वर तीर्थ. ८–अयोनिज तीर्थ, ९–रवितीर्थ धौरादित्य। वायु पुराण रेवाखण्ड के १३३, १३२ अध्यायों में इनकी पृथक-पृथक् कथायें हैं।

४०—कोरल से कुछ दूर साया ग्राम में **सागरेश्वर तीर्थ** है। समुद्र ने तीर्थ निन्दा दोष नष्ट करने के निमित्त शिवजी की आराधना करके सिद्धि प्राप्त की। यहाँ शुभ कर्म का फल समुद्र सदृश होता है।

४१—सागरेश्वर के समीप सायर ग्राम के पास **कपर्दिकेश्वर तीर्थ** है। यहाँ गणेशजी ने त्रिपुरासुर का वध करने के निमित्त विष्णु भगवान् की आज्ञा से तप किया था। यहाँ दोनों पक्ष की चतुर्थी का विशेष माहात्म्य है।

४२—कर्पादिकेश्वर के सन्निकट फत्तेपुर घाट के समीप **नर्मदेश्वर** अथवा **नारेश्बर तीर्थ** है। इसकी कथा भी सुनिये—प्राचीन काल में शिवजी पार्वतीजी के सहित घूमते-फिरते इस स्थान में आए। शिवा सहित शिव को स्वयं अपने समीप आया देखकर नर्मदाजी जल में से अपने दिव्य स्वरूप से निकलीं और उन्होंने दोनों की विधिवत् पूजा की। शिवजी ने वर माँगने को कहा तो नर्मदा-जी ने यही वर माँगा कि "आप यहाँ सदा सर्वदा विराजमान रहकर भक्तों के

मनोरथों को पूरा करते रहे।" तब से यहां नर्मदेश्वर विराजकर सबकी इच्छा पूर्ण करते हैं।

पहिले यहाँ कपर्दीश्वर का ही मन्दिर था। वह नर्मदाजी के तट पर था। प्रत्येक चतुर्मास को वर्षा में प्राचीन मन्दिर गिरते-गिरते एक बार की बाढ़ में पूरा गिर गया। बहुत दिनों तक वह गिरा रहा। मुसलमानी शासन समाप्त होने पर पेशवाओं के अधीन यह प्रदेश आया। यहां के राजपाल एक नारोपन्त हुए। वे शिव भक्त थे। कपर्दीश्वर शिवजी ने एक बार स्वप्न दिया कि मेरी मूर्ति इस गिरे हुए मन्दिर के नीचे दबी है। इसका जीर्णोद्धार करो। तब उन्होंने मलवा हटवा कर शिवलिंग निकलाकर उसकी प्रतिष्ठा की, उन्हीं के नाम से ये नारेश्वर प्रसिद्ध हुए।

तब यहाँ घोर जंगल और स्मशान था। भाग्यवश श्री दण्डी स्वामी श्री वासुदेवानन्दजी सरस्वती के शिष्य श्री रंग अवधूत स्वामी यहाँ नर्मदाजी की परिक्रमा करते हुए आ गये और यहीं रहकर तपस्या करने लगे। फिर तो जंगल में मंगल होने लगा। बड़ा भारी आश्रम बन गया है।

आपने कई ग्रंथ लिखे। संन्यास लेने पर "अवधूत आनन्द" नाम की पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें हिन्दी, गुजराती और मराठी के आपके भजनों का संग्रह है। संस्कृत के स्तोत्रों का संग्रह "रंगहृदयम्" के नाम से प्रकाशित हुआ आपका एक गुजराती में बड़ा ग्रन्थ "गुरुलीलामृत" भी प्रकाशित हुआ है। अपने गुरुदेव श्रीस्वामी वासुदेवानन्दजी के अनन्य भक्त थे। आपके ही शिष्य श्रीस्वामी नर्मदानन्दजी हैं, जिन्होंने तीन वर्ष में श्री नर्मदाजी की परिक्रमा करके गुजराती में दो भागों में 'हमारी नर्मदा परिक्रमा" पुस्तक लिखी है। श्री रंगअवधूत स्वामी का शरीरान्त सन् १९६८ नवम्बर की १९ ता. में हुआ। गुजरात के ये प्रसिद्ध महात्मा थे।

नारेश्वर के समीप ही **कोहनेश्वर तीर्थ** है, जिसकी स्थापना कोहन ऋषि ने की। यहां मृत्युञ्जय तथा रुद्री पाठ का विशेष माहात्म्य है।

(रे० खं० १३० अ०)

४३—कोहिनेश्वर के समीप ही कोटिया ग्राम में **चन्द्रप्रभास तीर्थ** है। जहां चन्द्रेश्वर शिवजी हैं। ये चन्द्रमा द्वारा स्थापित हैं। चन्द्रदेव तो नित्य हैं, कल्प-कल्प में इनकी भिन्न-भिन्न स्थानों से उत्पत्ति होती है। प्रथम चन्द्रमा की उत्पत्ति ब्रह्माजी के मन से हुई। फिर ब्रह्माजी द्वारा सोमबल्ली से प्रकट हुए। फिर समुद्र से निकले। वराह कल्प में अत्रि से अनसूया में ब्रह्माजी के अंश से उत्पन्न हुए। इसी कल्प में गुरुपत्नी गमन का दोष लगने पर महाकाल की आज्ञा से इस कोहिन तीर्थ में आकर तवस्या की। प्रसन्न होकर शिवजी ने

अपने मस्तक पर धारण करके शिरोभूषण बनाया। यह परम पावन तीर्थ है। चन्द्रग्रहण, संक्रान्ति, व्यतिपातादि पुण्य पर्वों पर यहाँ विशेष माहात्म्य है।

४४—चन्द्रेश्वर के निकट ही राणापुर ग्राम में **कंबुकेश्वर तीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है—हिरण्याक्ष असुर के वंश में कंबुक नामक एक असुर हुआ। उसने विष्णु भगवान् के भय से मुक्त होने के निमित्त इस स्थान पर एक अर्बुद वर्ष तक तपस्या की। इसके तप से प्रसन्न होकर शिवजी ने प्रत्यक्ष होकर इससे वर माँगने को कहा। उस समय उसकी जिह्वा पर सरस्वती बैठ गयी। अतः इसने यही वर माँगा कि "विष्णु भगवान् को छोड़कर और कोई मुझे मार न सके।" शिवजी ने तथास्तु कह दिया। उसी के द्वारा स्थापित ये कम्बुकेश्वर शिवलिङ्ग हैं। कालान्तर में यह लिङ्ग गुप्त हो गया। कुछ समय के पश्चात् ऋषि पुत्रों ने इसे सीपो के ढेर में प्राप्त किया। यहाँ गायत्री जाप का विशेष माहात्म्य है। यहाँ शंख जल से शिवजी का अभिषेक तथा सङ्कल्पादि करना चाहिए।

४५—कम्बुकेश्वर के अति निकट ही दिबेल ग्राम में कपिलेश्वर और त्रिलोचन तीर्थ हैं। **कपिलेश्वर** की कपिल ऋषि ने और **त्रिलोचन** की, महाराज पुण्डरीक के पुत्र त्रिलोचन ने स्थापना की। दोनों ही शिवप्रिय हुए।

(रे० खं० १२६-:२५)

४६—कपिलेश्वर के समीप ही **मालसर ग्राम** में **पांडुतीर्थ** है। यहीं अंगारेश्वर और अयोनिज तीर्थ है। महाराज पांडु ने मृगया के समय मैथुन धर्म में प्रवृत्त मृगरूपी ऋषि का वध किया था। उस पाप से मुक्त होने को उन्होंने यहाँ तपस्या की और पाप मुक्त हुए। तब उनके पाँच पांडव पुत्र हुए, परम पवित्र तीर्थ है। रेवातट पर परम रमणीक स्थल हैं। यहीं परमहंस माधवदासजी महाराज का सुन्दर आश्रम है।

४७—पांडुतीर्थ के सन्निकट ही कँटोई ग्राम में **कोटीश्वर तीर्थ** है। करोड़ों ऋषियों ने स्कन्द के देव सेनापति बनने के उपलक्ष्य में स्थापना की। समीप में ही **आंगिरस तीर्थ** है। अङ्गिरा मुनि ने १२ वर्ष तपस्या करके इसकी स्थापना की।

४८—कोटीश्वर के समीप ही **सीनोर ग्राम** है जिसे सेनापुर भी कहते हैं। यहाँ आठ तीर्थ मुख्य हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—

१. धूतपापेश्वर—स्कन्द स्वामी ने देव सेनापति बनकर असुरों का संहार किया। वे यहाँ निष्पाप बने। (रे० खं० १२६-१२५) २. मार्कण्डेश्वर—स्कन्द को विजय प्राप्त कराने के निमित्त मार्कण्डेय मुनि ने इनकी स्थापना की।

३. निष्कलंकेश्वर—परशुरामजी को क्षत्रिय वध का जो कलंक था वह यहाँ तप करके दूर हुआ। ४. केदारतीर्थ—एक दैत्य के भय से भागकर बद्री केदार यहाँ नर्मदा किनारे आ गये थे। ५. भोगेश्वर—स्कन्द के सेनापति बनने पर देवों ने शिवजी को नाना भोग अर्पित किये। ६. उत्तरेश्वर—स्कन्द की तपस्थली है। ७. चक्रतीर्थ—स्कन्द की प्रार्थना पर भगवान् ने चक्र से दैत्यों का वध करके चक्र को नर्मदा में डाल दिया। ८. रोहिणेश्वर तीर्थ–नारदजी की आज्ञा से चन्द्र को वश में करने को रोहिणी ने यहाँ तप किया। यहाँ स्त्री दान धर्म करें तो पति उनके वश में होते हैं। कन्या दान का माहात्म्य है। (रे० खं० १२३-१२४)

४९—सीनोर के समीप ही दावापुर ग्राम में **धनदेश्वर तीर्थ** है। यहाँ धनदकुवेर ने तपस्या करके देवों का कोषाधिकार पुष्पक विमान और अलका-पुरी प्राप्त की। यह तीर्थ विशेषकर वैश्यों का है। जिसका दिवाला निकल गया हो या व्यापार में घाटा हो यहाँ तप करने से तत्काल फल मिलता है। दीपावली का यहा विशेष माहात्म्य है। नित्य पूजा करने वाले की धन वृद्धि होती है।

५०—धनदेश्वर के सन्निकट ही कंजैठा ग्राम में **सौभाग्य** सुन्दरी माता हैं। अरुंधती के कहने से ख्याति ने पुत्र प्राप्ति के हेतु तप किया। जिससे पुत्र प्राप्ति हुई। यहाँ दान धर्म पूजा करने से स्त्रियों को पुत्र प्राप्ति होती है।

१–यहीं **नागेश्वर** हैं त्वष्टा पुत्र पुण्डरीक नाग ने इन्द्र शाप मिटाने को तप किया। यहाँ सर्पभय नहीं होता। २–भरतेश्वर—शकुन्तला सुत भरत ने यहाँ अनेकों यज्ञ, अगणित दान धर्म किये। दान धर्म पुण्य पद है। ३–करंजेश्वर करंज ऋषि बाल ब्रह्मचारी थे, उन्होंने घोर तप किया। बाल ब्रह्मचारियों को मिष्ठान्न भोजन कराने का विशेष माहात्म्य है। (रे. खं. १२२ अ.)

५१–कंजैठा ग्राम से आगे अंबाली ग्राम में **अम्बिकेश्वर तीर्थ** है। काशिराज की पुत्री अंबिका ने उत्तम पति पाने के निमित्त तप किया। यहाँ पाठ पूजा करके कुमारियों को भोजन करावे तो उत्तम पति की प्राप्ति होती है।

५२—**सुवर्ण शोला तीर्थ,** सुवर्णशीला ग्राम में है। यहाँ अनेक ऋषि घोर तपस्या करते थे। शिवजी ने उनकी परीक्षार्थ बड़ी सुन्दरी सुवर्ण शीला सुकुमारी बनाकर भेजा। किन्तु ऋषियों का चित्त विचलित नहीं हुआ। तभी उस शीला के स्थान में शिवलिङ्ग उत्पन्न हो गया। यहाँ समीप में ही **एरंडी संगम** है। इसे हत्याहरण तीर्थ भी कहते हैं। गौतमवंशीय एक ब्राह्मण की पत्नी ने पति सेवा के पीछे पुत्र के प्राणों को भी चिन्ता न की, पुत्र की मृत्यु हो गई। उसके शरीर में कीड़े पड़ गये। इससे पति पत्नी को हत्या का पाप

लगा। उन्होंने यहाँ आकर तपस्या की शिवजी की और अनसूया सती की पूजा की। यहाँ दोनों नवरात्रों की सप्तमी अष्टमी का विशेष माहात्म्य है।

५३--यहीं नर्मदा के बीच में **अनसूया माताजी** हैं अपने पति अत्रि की आज्ञा से अनसूया देवी ने पुत्र प्राप्ति के लिये तप किया। तब ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवों के अंश से क्रमशः चन्द्रमा, दत्तात्रेय और दुर्वासा ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। यहां स्त्रियों की सन्तान कामना पूर्ति होती हैं।

५४-एरंडी संगम से कुछ दूर झांझर के ह्रद में **मन्मथेश्वर तीर्थ** है। शिवजी के कोप से जब काम भस्म हो गया तब उसने छाया रूप से यहां तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की। यहां तपस्या करने से नपुंसकता नष्ट होती है। स्त्रियों को सन्तान प्राप्त होती है। चैत्र शुक्ल पक्ष का विशेष माहात्म्य है।

५५-झांझर ग्राम में ही **जनकेश्वर तीर्थ** है। महाराज जनक ने तपस्या करके शिवजी को प्रसन्न किया। बहुत से यज्ञ, याग, दान धर्म किये। यहां दान धर्म का बड़ा माहात्म्य है। (रे. खं. १२० अ.)

५६-जनकेश्वर तीर्थ से आगे बरकाल के समीप यज्ञवट के मध्य में **संकर्षण तीर्थ है**। यहां ययाति पुत्र यदु ने तपस्या करके पिता के शाप के मुक्ति पाई। यहां ही बलरामजी ने यात्रा काल में तप किया था। उन्होंने ही संसार के कल्याणार्थ इस तीर्थ का निर्माण किया। सब मास की शुक्ला एकादशी का विशेष माहात्म्य है। यहां पिण्ड दान भी होते हैं।

५७--पास में ही **प्रभा तीर्थ है**। सूर्य पत्नी प्रभा ने तपस्या करके सूर्य सान्निध्य प्राप्त किया। कन्यादान का माहात्म्य है।

५८—प्रभा तीर्थ से कुछ दूर नर्मदाजी के बीच द्वीप में **व्यासेश्वर तीर्थ** है। पराशर मुनि के पुत्र व्यासजी यहाँ नर्मदा किनारे दक्षिण तट पर रहकर तपस्या करने लगे। एक समय बहुत से ऋषि आये। जब उनसे प्रसाद पाने को कहा तब उन्होंने कहा—हम नर्मदा के दक्षिण तट पर प्रसाद न पाकर उत्तर तट पर पायेंगे। तब व्यासजी की प्रार्थना पर नर्मदाजी बीच से बहने लगीं। व्यासजी का आश्रम उत्तर तट पर हो गया। तभी से व्यासजी की सर्वत्र बड़ी ख्याति हो गई। यहाँ गायत्री पुरश्चरण का अनन्त माहात्म्य है। सभी शुभ कर्म सफल होते हैं। (रे. खं० ११५)

५९—व्यासेश्वर से कुछ आगे मालेथा ग्राम में **कोटेश्वर तीर्थ** है। व्यासजी के आश्रम पर जो बदरिकाश्रम के अनेक ऋषि आये थे उन्होंने इस तीर्थ को स्थापित किया। (रे. खं० ११६ अ०)

६०—कोटेश्वर से लगभग मील भर आगे नन्दोरिया ग्राम में **बदरिकाश्रम अथवा नर नारायण तीर्थ** है। यहाँ नर नारायण ने रेवा तट पर तपस्या की थी। यह स्थान कनखल हरिद्वार के महामण्डलेश्वर श्री स्वामी महेश्वरानन्द जी ने तथा उत्तराधिकारी श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी. म. म. ने अत्यन्त समृद्ध शाली बना दिया, घाट का भी निर्माण कराया।

६१—यहीं **नन्दीकेश्वर तीर्थ** है। नन्दीश्वर तपस्या करके पार्वतीजी के शाप से मुक्त हुए।

६२—नन्दोरिया से कुछ दूर पर काल्होड़िका (गंगनाथ) तीर्थ है। पापियों के पाप से पीड़ित गंगाजी यहाँ आयीं और नर्मदा में स्नान करके पाप मुक्त हो गयी। यहाँ (१) मित्रद्रोह, (२) कृतघ्नता, (३) विश्वासघात (४) स्वामिद्रोह और (५) गुरुद्रोह ये जो महापातक हैं, वे सब यहाँ तपस्या करने से नष्ट हो जाते हैं। यहाँ के स्नान की तीर्थराज प्रयाग के समान, पुष्करराज के समान माहात्म्य है। गंगनाथ नर्मदा तट पर बहुत ऊँचे पर बड़ा ही सुन्दर रमणीक स्थान है। नर्मदाजी पर पक्का घाट है। पास में ही श्री आनन्दमयी माँ का आश्रम है, यह भी बड़ा रमणीक स्थल है। पंचवटी है, नर्मदा की अपूर्व शोभा है। गङ्गनाथजी का दर्शन किया। वैद्यनाथ के सुप्रसिद्ध स्वामी श्री बालानन्द ब्रह्मचारी के गुरुदेव यहीं रहते थे।

६३—गङ्गानाथजी से कुछ ही दूर पर **चाँदोद नगर** है। इसके पास ही **यमहास तीर्थ** है। इसे यमराजजी ने स्थापित किया था। जो लोग यहाँ स्नान करते हैं उन्हें यमलोक नहीं देखना पड़ता। चाँदौद नगर में सात तीर्थ हैं।

१—चंडिका देवी—सूर्य भगवान् नें चंड मुंड को वरदान दिया कि स्त्री को छोड़कर तुम्हें कोई भी नहीं मार सकेगा। तब पराशक्ति ने शिवजी को प्रसन्न किया। तब भगवान् काली देवी द्वारा व्यवस्था करके उनका नाश कराया। यहाँ अष्टमी नवमी और चतुर्दशी का विशेष माहात्म्य है। देवी के दर्शनों से समस्त शुभ कर्म सफल होते हैं। (रे. खं. ११२)

२—**चण्डादित्य**—यहाँ चण्ड और मुंड आदि दैत्यों को इन्द्र ने परास्त किया। तब उन्होंने आदित्य भगवान् की उपासना की सूर्य ने प्रसन्न होकर वर दिया कि दो देवों को छोड़कर तुम्हें कोई परास्त न कर सकेगा।

(रे. खं. १११ अ०)

३—**चक्रतीर्थ** अथवा जलशायी नारायण तीर्थ—तालमेघ दैत्य का शेषशायी भगवान् ने चक्र से वध किया। फिर उस चक्र को नर्मदाजी में धोया। नर्मदाजी को क्षीरसागर मानकर भगवान् ने उसमें शयन किया। यहां [illegible] चतुर्दशी और प्रत्येक एकादशी का विशेष माहात्म्य है।

(रे. खं. ११० अ०)

४-कपिल तीर्थ-कपिलजी ने तीर्थयात्रा के समय यहां तप किया था। कपिल गौ के दूध की खीर ब्राह्मणों को खिलाने का माहात्म्य है।

५-ऋणमोचन तीर्थ-यहां ६ महीने रहकर देवर्षि पितृ तर्पण करने से तीनों के ऋण से उऋण हो जाता है। इसे ब्रह्मर्षियों ने इसी निमित्त बनाया था।

६—पिङ्गलेश्वर तीर्थ—शिवजी के कोप से अग्निदेव का मुख पिङ्गल वर्ण का हो गया था। यहां तपस्या करके अग्नि ने मनोवांछित फल पाया।
(रे. खं. १०९ अ०)

७—नन्दाह्लद--नन्दादेवी ने शिवजी की प्रेरणा से दैत्यों का नाश किया। फिर शिवजी ने नन्दनी तीर्थ की स्थापना की। कश्यप ऋषि नें भी तपस्या करके यहां सिद्धि प्राप्त की। यहां अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी का विशेष माहाप्म्य है। यहां सामने **ओर नदी** का संगम है। चांदौद से नौका द्वारा संगम में जाया जाता है। संगम के सामने ही हनुमन्तेश्वर का मन्दिर है। संगम का दृश्य बड़ा ही सुन्दर है।

६४—चाँदौद से लगभग एक मील दूरी पर **कर्नाली** ग्राम में **सोमेश्वर तीर्थ** है। यहां चन्द्रमा ने तपस्या की और अपने नाम से तीर्थ की स्थापना की। इसकी कथा इस प्रकार है। प्रजापति दक्ष ने अपनी ६० कन्याओं में से अश्विनी, भरणी आदि सत्ताईस कन्यायें चन्द्रमा को दीं। किन्तु चन्द्रमा रोहिणी से ही अधिक प्रेम करने लगा। तब सबने यह बात अपने पिता दक्ष से कही। यह सुनकर दक्ष-राजक्ष्मा-रोग हो जाय।" यह सुनकर चन्द्रमा दुखी हुए, तब से वे सब में समान भाव से रखने लगे। फिर उन्होंने यहाँ नर्मदा किनारे आकर ओर नदी और नर्मदा के तट पर घोर तपस्या करके सिद्धि पायी। यह ओर नर्मदा संगम सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है। नर्मदा जी वैसे तो सर्वत्र पवित्र है, किन्तु अमरकंटक, ओर नर्मदा संगम और रेवासागर संगम इन तीन स्थानों में अत्यन्त दुर्लभ है। यहाँ पर कण्व महाराज की ब्रह्महत्या इस तीर्थ के प्रभाव से छूट गयी। यहां चन्द्र ग्रहण अष्टमी चतुर्दशी और रविवार को शुक्ला सप्तमी का विशेष माहात्म्य है। यहां हमारे श्री स्वामी विद्यानन्दजी महामण्डेश्वरद्वारा स्थापित गीता मन्दिर है। अन्य प्राचीन मठ मन्दिर भी है

६५—सोमेश्वर के समीप ही **कुवेरेश्वर तीर्थ** है। कुवेरजी से एक पतिव्रता का कुछ अपराध बन गया था। पतिव्रता ने शाप दिया—तुम जराग्रस्त हो जाओ। जब कुवेरजी ने अनुनय विनय की तो सती ने कहा—"नर्मदा किनारे सोमेश्वर तीर्थ में तप करो बृद्धावस्था के दोष से छूट जाओगे।" तब कुवेरजी

ने अपने नाम से कुबेरेश्वर शिवलिंग की स्थापना करके नपस्या की तब वे सती के शाप से मुक्त हुए। यहाँ नर्मदाजी के जल में खड़े होकर सुवर्ण दान का विशेष माहात्म्य है। नर्मदा किनारे का यह एक प्रकार से कनखल तीर्थ है।

(रे. खं. १०५ अ.)

६६—कुबेरेश्वर के सन्निकट ही **पावकेश्वर तीर्थ** है भृगुजी की पत्नी की सगाई पहिले किसी असुर से हो गई थी। पीछे उसके पिता ने उसका विवाह भृगु ऋषि के साथ कर दिया। एक दिन जब भृगु ऋषि आश्रम में नहीं थे तो वह असुर वराह का रूप रखकर आश्रम में आया। उस समय यज्ञशाला में अग्निदेव प्रज्वलित हो रहे थे। गर्भवती भृगु पत्नी वहां बैठी थीं। उस असुर ने अग्निदेव से कहा—"देखो, अग्नि! तुम देवताओं के मुख हो। सत्य बताओ, इस स्त्री की पहिले मेरे साथ सगाई हुई थी या नहीं?"

अग्नि ने सत्य बात बता दी कि "हाँ हुई थी।" तब वह असुर, भृगुपत्नी का हरण कर ले गया। वह रोती हुई जा रही थी। भय के कारण उसका गर्भ च्यवित हो गया। उससे बड़ा तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। च्यवित होने से उनका नाम च्यवन ऋषि हुआ। उनकी दृष्टि मात्र से ही वह असुर जलकर भस्म हो गया। जब बच्चे को लेकर रोती हुई भृगुपत्नी आश्रम में आई तब तक ऋषि आ चुके थे। सब वृत्तान्त सुनकर ऋषि ने पूछा—"असुर को यह बात बतायी किसने थी?"

तब भृगुपत्नी ने कहा—"अग्निदेव ने बताई थी।"

इतना सुनते ही ऋषि ने शाप दिया—"अग्निदेव! तुम सर्वभक्षी हो जाओ।"

इस पर अग्नि ने अपना कार्य बन्द कर दिया। ब्रह्माजी ने आकर अग्नि को समझाया। तब अग्नि ने यहाँ नर्मदा तट पर अपने नाम से पावकेश्वर शिवलिङ्ग की स्थापना करके तप किया, इससे उनका दोष निवृत्त हुआ। यहाँ स्नान दान भजन पूजन से अभक्ष्य भक्ष्य का दोष मिट जाता है। वन्हि सूक्त के पाठ से दारिद्र दुःख दूर हो जाता है।

६७—पावकेश्वर के पास ही **वरुणेश्वर तीर्थ** है। यहाँ वरुण तपस्या करके लोकपाल बन गये।

६८—वरुणेश्वर के सन्निकट नक नामक ग्राम में **नंदिकेश्वर तीर्थ** है। शिवजी से बिना पूछे दधि-मधु क्षेत्र से नन्दीश्वर कैलाश चले गये। इस पर शिवजी ने उन्हें पृथ्वी पर बैल बनने का शाप दिया। उन्हीं की आज्ञा से यहाँ तप करके वे शाप मुक्त हुए।

६९-७०—**दधि स्कन्ध** तथा **मधु स्कन्ध तीर्थ** नर्मदाजी में हैं। इसकी कथा इस प्रकार है। एक गोप दधि का मटका लेकर दही बेचने जा रहा था। एक वैश्य एक घड़े में मधु बेचने जा रहा था,· दोनों यहाँ नर्मदा किनारे आकर घड़ों को रखकर नर्मदाजी में स्नान करने लगे। उस समम एक व्याघ्र ने इनका पीछा किया। ये भय के कारण गिर पड़े गिरने से इनके घड़े फूट गये। दधि और मधु बहने लगे। उसी समय वहां से दो शिवलिंग प्रकट हुए। घड़ों के फूटने का शब्द सुनकर व्याघ्र भाग गया। तब इन दोनों ने, उन दोनों लिंगों की विधिवत् पूजा की। शिवजी ने प्रसन्न होकर इन दोनों को अपना लोक दिया। यहाँ दधि, मधु दान का विशेष माहात्म्य है। (रे. खं. १०३, १०४, अ.)

७१—दधि स्कन्ध के पास ही **नारदेश्वर** तीर्थ है यहाँ नारदजी तथा अन्य बहुतसे देवों ने तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की।

७२—नारदेश्वर से आगे चूड़ेश्वर ग्राम में ही **अश्वपर्णी संगम** है। यह चन्द्रकावाह अश्वपर्ण की तपस्थली है। इसकी कथा इस प्रकार है—समुद्र मन्थन के समय उच्चैश्रवा नाम का अश्व उत्पन्न हुआ। उसके (१) अश्वपर्ण, (२) सुपर्ण, (३) मधुपर्ण और मरुद् गति ये चार पुत्र हुए। इसमें अश्वपर्ण चन्द्रदेव का वाहन हुआ। जब चन्द्रदेव ने यहाँ तप किया तो उसके वाहन अश्वपर्ण ने भी आहार परित्याग करके घोर तप करना आरम्भ किया। जब कुछ काल के पश्चात् भूख के कारण अश्व भूमि पर गिर पड़ा। तब वटु रूप में शङ्करजी ने प्रकट होकर उसे सरूपता प्रदान की। जहाँ वटु रूप शिवजी प्रकट होकर उसे सरूपता प्रदान की। जहाँ वटु रूप शिवजी प्रकट हुए वटवीश्वर शिवजी हैं। उसी अश्व के नाम से अश्वावती यह नदी है।

७३—अश्वपर्णी संगम के समीप चन्द्रघाट में **चन्द्रेश्वर तीर्थ** है। इसे गुप्त प्रयाग भी कहते हैं। चन्द्रमा को मयूर कल्प में जब राजयक्ष्मा होने का शाप लगा, तब उसने यहीं तप करके सिद्धि प्राप्त की। यह गुप्त प्रयाग है। यहाँ समस्त कार्य तीर्थराज प्रयाग के सदृश ही किए जाते हैं।

७४—चन्द्रेश्वर से कुछ ही दूर पर **तिलक बाड़ा** ग्राम में **मातृ तीर्थ** है। सप्तमातृकायें यहीं शापमुक्त अहल्या को लेकर गौतम ऋषि के समीप आईं। तभी से सप्तमातृका यहाँ रहकर क्षेत्र का कल्याण करती हैं। अष्टमी, नवमी तथा चतुर्दशी का यहाँ विशेष माहात्म्य है। यहाँ पूजा करने से स्त्रियों का वन्ध्यापन नष्ट होता है। (रे० खं० ९८, ९७, ९६, अ०)

७५—मातृ तीर्थ के सन्निकट ही **गौतमेश्वर तीर्थ** है। प्राचीन काल में महर्षि गौतम ने यहाँ घोर तप किया था। इनके तप से प्रसन्न होकर शिवजी

प्रकट हुए और वर माँगने को कहा :—

तब गौतम ऋषि ने कहा—"भगवन् ! पत्नी के बिना न तो यज्ञ याग ही होते हैं, न गृहस्थी के ही कोई कार्य सम्पन्न होते हैं। अतः मुझे एक मनोरमा पत्नी प्रदान कीजिए।"

यह सुनकर शिवजी हँसे और बोले—"मुनिवर ! धैर्य धारण कीजिए। अभी शीघ्रता न करें। त्रेतायुग में जब रामावतार होगा तब तुम्हें ऐसी त्रिभुवन सुन्दरी पत्नी प्राप्त होगी जिसमें तनिक हल (पाप) न होगा अहल्या उसका नाम होगा।" यह सुनकर गौतमजी फिर तपस्या करने लगे। जब त्रेता में अहल्या मिली और उसे पाषाण होने का शाप हुआ और श्रीराम द्वारा उसका उद्धार हुआ तो यहीं मातृका उन्हें लेकर गौतम ऋषि के समीप आई थीं। तभी उनके नाम से यह **गौतमेश्वर तीर्थ** विख्यात हुआ। जिनका विवाह न होता हो वें आकर तपस्या करें तो निश्चय ही पत्नी की प्राप्ति होगी।

७६—गौतमेश्वर के सन्निकट ही में **तिलकेश्वर** है इनके भिन्न-भिन्न मन्वन्तरों में, उन-उन मनुओं के नाम से प्रियव्रतेश्वर, चैत्रेश्वर, अजस्रेश्वर, शान्तीश्वर, सत्यकेश्वर, शतद्युम्नेश्वर आदि नाम हुए। जब वैवस्वत मनु के पुत्र तिलक ने गौतमजी द्वारा इनकी महिमा सुनी तो इन्होंने तिलकेश्वर नाम से इनकी पूजा की और यहाँ तपस्या की। यहाँ सब समय तपस्या की जा सकती है। तिल दान का विशेष माहात्म्य है।

७७—तिलकेश्वर के समीप ही मणिश्वर नामक ग्राम में **मणि नागेश्वर तीर्थ** है। जब कद्रू ने अपने पुत्रों को राजा जनमेजय के यज्ञ में जल जाने का शाप दे दिया तब मणि नाग ने यहाँ तप किया। शिवजी ने उसे अपने कण्ठ का हार बना लिया।

७८—मणिनागेश्वर से कुछ ही दूर पर वासणा ग्राम में **कपिलेश्वर तीर्थ** है। महर्षि कपिल ने जब सगर के पुत्रों को अपनी दृष्टि से भस्म कर दिया तो यहां तपस्या करके शान्ति प्राप्त की।

७९—कपिलेश्वर से कुछ ही दूर पर **कामेश्वर तीर्थ** है यह गण तीर्थ है। गणेशजी ने यहां तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की है। मार्गशीर्ष की अष्टमी का विशेष माहात्म्य है गौरी गणेश की यहाँ पूजा की जाती है।

८०—**रवीश्वर तीर्थ** भी यहीं है। भानुमती नाम की कन्या के प्रति सूर्य का मानसिक दोष होने से रवि ने यहां तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की। यहाँ तप करने से सबकी मनोकामना पूर्ण होता है। (रे० खं० ९५-९४, ९३, ९२ अ०)

८१—रवीश्वर तीर्थ से आगे अगस्तेश्वर नामक ग्राम में **केदारेश्वर तीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है—आन्ध्र प्रदेश का रहने वाला एक शांडिल्य

गोत्रिय ब्राह्मण केदारनाथ की यात्रा के लिए चला ! चलते-चलते वह यहां नर्मदाजी के किनारे आया। पैदल चलने से थका हुआ था। भूख-प्यास से व्याकुल होकर यहां आ गया। तब स्वप्न में नर्मदाजी और केदारनाथ आये इससे बोले—"हे ब्राह्मण ! मैं तेरो भक्ति से प्रसन्न होकर यहीं आ गया हूँ तू उठकर भोजन कर।" जब उसकी आंखें खुली तो उसे विश्वास नहीं हुआ। तभी उसके सिर के नीचे से एक शिवलिंग प्रकट हो गयी। तब उसने उनकी केदारेश्वर की भावना से विधिवत् पूजा की। (रे० खं० ८५ अ०)

८२—इसी अकतेश्वर (अगस्तेश्वर) ग्राम में **अगस्तेश्वर** नाम के शिवजी हैं। एक बार विन्ध्याचल ने सूर्य से कहा—"तुम जैसे सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हो, वैसी ही मेरी भी प्रदक्षिणा किया करो। सूर्य ने कहा–हमें तो ब्रह्माजी की सुमेरु प्रदक्षिणा की ही आज्ञा है। इस पर विन्ध्याचल बढ़ने लगा। सब देवता ब्रह्माजी के समीप गये। ब्रह्माजी ने कहा–वह जड़ है, हमारी बात न मानेगा। अगस्त्य उसके गुरु हैं, उन्हें ले चलो। अगस्त्य जी को मनाकर ले गये। गुरु को देखकर विन्ध्याचल ने साष्टाङ्ग दण्डबत की। साष्टाङ्ग दण्डवत का यह नियम है कि जब तक गुरु उठने की आज्ञा न दे तब तक उठे नहीं। दण्ड की भांति लेटा ही रहे ! तब अगस्त्य मुनि ने कहा—"बे ! जब तक हम लौटे नहीं तब तक ऐसे ही लेटे रहना।" अगस्त्यजी आगे बढ़ गये। देवताओं ने प्रार्थना की—महाराज ! आप दक्षि में ही रहिये। तब से अब तक बिन्ध्याचल लेटा ही हुआ है। यहां अगस्त्यजीं ने अपने नाम अगस्तेश्वर शिवजी की स्थापना करके पूजा की तभी से यह तीर्थ अगस्तेश्वर के नाम से विख्यात हुआ। यहां कार्तिक की चतुर्दशी का विशेष माहात्म्य है। (रे० खं० ८३ अ०)

गरुड़ेश्वर से कोटेश्वर

नर्मदाजी के किनारे पर ८३—**गरुड़ेश्वर** बहुत ही भव्य एकान्त शान्त अनुष्ठान करने योग्य सुन्दर स्थान है। प्राचीन काल में कुमार स्वामी ने यहाँ तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की है। यहाँ कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी का विशेष माहात्म्य है। **कुमारेश्वर** की स्थापना कार्तिकेय स्वामी ने की। इसके समीप ही ८४—**करोटीश्वर** तीर्थ है इसकी भी कथा सुन लीजिए—प्राचीन काल में यहाँ एक असुर गज के रूप में रहता था। उसका नाम गजासुर था। गरुड़जी यहाँ जल पीने के लिए आए होंगे। उन्हें भूख लगी। वे इस गजासुर को लेकर उड़ गए और समीप के पर्वत शिखर पर बैठकर उसका भक्षण करने लगे। भक्षण करते समय इसकी करोटी (खोपड़ी) नर्मदाजी में गिर पड़ी। नर्मदाजी के जल का स्पर्श होते ही उस गजासुर दैत्य का दिव्य रूप हो गया। उसी

दिव्य रूप से उसने तपस्या की। शिवजी उस पर प्रसन्न हुए, वर माँगने को कहा। तब उसने यही वर माँगा कि आप मेरे चर्म को धारण करें और जहाँ मेरी करोटी (खोपड़ी) गिरी है, वहां रहकर आप भक्तों की मनोकामना पूर्ण करें। तभी से शंकरजी यहां करोटीश्वर के रूप में रहकर भक्तों की मनोकामना पूर्ण करते हैं। यहां गजछाया पर्व, व्यतीपात, संक्रान्ति, कृष्णा अष्टमी, चतुर्दशी ग्रहणादि में स्नान का विशेष माहात्म्य है। यहां दान धर्म किए हुए का लक्ष गुणा माहात्म्य है।

पहिले यह गरुड़ेश्वर ग्राम बहुत छोटा था इसकी महिमा भी इतनी नही थी। जब से श्री स्वामी वासुदेवानन्दजी सरस्वती यहां आकर रहने लगे तब से इसकी ख्याति विशेष हुई। अब तो गरुड़ेश्वर आधुनिक साधनों से सम्पन्न छोटा-मोटा नगर ही बन गया है। यहां तक बड़ौदा से डबोई होकर पक्की सड़क है। बड़ी गाड़ियां बसें चलती हैं, पाठशाला, डाकघर, पुलिस घर सभी हैं। स्वामीजी द्वारा स्थापित दत्त भगवान् का भव्य मन्दिर है।

आपने उज्जैन में विराजमान श्री नारायण स्वामी द्वारा संन्यास की दीक्षा लेकर दण्ड धारण किया था। फिर आप तीर्थ यात्रा करते हुए देश में पर्यटन करते रहे। सन् १९१३ में गरुड़ेश्वर पधारे तब यह स्थान घोर निर्जन था। स्वामीजी एक पेड़ के नीचे विराजमान हुए। फिर भक्तों ने फूँस की कुटिया बना दी। शनैः-शनैः चारों ओर आपकी ख्याति फैल गयी। आप संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे, ज्योतिष तथा आयुर्वेद भी जानते थे। संस्कृत तथा मराठी में आपके लिखे २०-२२ ग्रंथ हैं।

सम्वत् १९७० में आपके सङ्कल्प से यहां भगवान् दत्तात्रेय के मन्दिर की स्थापना हुई। उसी समय आपने न्यास (ट्रस्ट) बनाकर उसका प्रबन्ध न्यासियों (ट्रस्टियों) को सौंप दिया। उसी वर्ष सम्वत् १९७० में ज्येष्ठ वदी अमावस्या को आपने अपने इस नश्वर शरीर का त्याग कर दिया। यहीं नर्मदा किनारे आपकी भव्य समाधि बनी है। वहां गुफा है। चित्रकारों ने वहां दत्त भगवान् के, स्वामीजी के बड़े ही सुन्दर चित्र अङ्कित किये हैं। इन्दौर की महारानी ने वहां बड़ा ही सुन्दर पक्का घाट बनवा दिया है। दत्त मन्दिर में भगवान् दत्तात्रेय के सम्पूर्ण जीवन के बड़े ही सुन्दर भावमय भित्ति चित्र अङ्कित हैं। यहां मार्गशीर्ष पूर्णिमा को दत्तात्रेय जयन्ती तथा आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा को स्वामीजी की पुण्य तिथि बड़ी धूम धाम से मनाई जाती है।

८५–गरुड़ेश्वर में जो करोटीश्वर तीर्थ है उससे कुछ दूर भीमकुल्या संगम है। यहाँ संगमेश्वर शिवजी का मन्दिर है। भीम रूपी शिवजी ने देवताओं के साथ इस तीर्थ को स्थापित किया है।

८६—भीमकुल्या संगम के सन्निकट बागड़िया ग्राम में **आदित्येश्वर तीर्थ** है। इसकी कथा इस प्रकार है—प्राचीनकाल में एक बार घोर आकाल पड़ा। उस समय सप्तर्षि तथा उनके साथ और भी बहुत से ऋषियों ने यहाँ नर्मदा किनारे आकर नर्मदा मैया का आश्रय लिया। उस समय ऋषिगण क्या देखते हैं कि एक भयंकर रूप वाली राक्षसी लाल वस्त्र पहिने ऋषियों की ओर आ रही है उसके साथ में भयङ्कर वेष वाले चार राक्षस भी हैं। उनकी भयङ्कर मूर्ति को देखकर समस्त ऋषिगण भयभीत हो गये। वे भगवान् आदित्येश्वर के निकट जाकर भाव विह्वल होकर स्तुति करने लगे। उन सबने भगवती नर्मदा की भी स्तुति की। तब नर्मदाजी ने उन्हें अभय प्रदान की। उन पाँचों ने तुरन्त अग्नि में प्रवेश किया। अग्नि में प्रवेश करते ही बैकुण्ठ से विमान आया और उसमें बैठकर दिव्य रूप धारण करके बैकुण्ठ चले गये। तब ऋषियों ने इस परम पावन तीर्थ की महती महिमा जानी। यहाँ रविवार की सप्तमी का विशेष माहात्म्य है, क्योंकि यह आदित्य श्रीसूर्यनारायण सम्बन्धी तीर्थ है।

८७—आदित्येश्वर के समीप में **कम्बलेश्वर** तीर्थ है। यहाँ कम्बल दान का विशेष माहात्म्य है। (रे० खं० ७८, ७९ अ०)

८८—कम्लेश्वर के सन्निकट ही **पुष्करिणी तीर्थ** है। यह सूर्य द्वारा स्थापित तीर्थ है। इसमें सूर्यनारायण सदा निवास करते हैं। यह नर्मदा के तीर्थों में कुरुक्षेत्र के सदृश तीर्थ है। सूर्य तथा चन्द्रग्रहण में यहाँ के स्नान का विशेष माहात्म्य है।

८९—पुष्करणी तीर्थ से कुछ दूरी पर **विमलेश्वर तीर्थ** है। प्राचीनकाल में यहाँ गोपाल नाम का एक ग्वाला रहता था। उससे किसी कारणवश सवत्सा गौ की हत्या हो गयी। तब उसने यहाँ नर्मदा किनारे आकर घोर तप किया, इससे वह गो हत्या के दोष से छूटकर विमल बन गया और शिवजी का विमलेश्वर नाम का गण बन गया। उसी के द्वारा स्थापित यह परम पुण्य पद तीर्थ है। (रे० खं० ७६ अ०)

९०—विमलेश्वर से तीन मील आगे **कपिल तीर्थ** है। उस पार सामने शूलपाणि तीर्थ है। इस पर उस पार यह शूलपाणि की घोर झाड़िया हैं। जहाँ विशेषकर वनबासी कोल भील रहते हैं। कपिलेश्वर तीर्थ में कपिल महर्षि ने तपस्या की थी। यह सिद्धि स्थली है।

९१—विमलेश्वर के समीप ही एक **पुष्करिणी तीर्थ** है शूलभेद तीर्थ की महिमा जानने के निमित्त जब शिवजी ने शूल उठाया था, तब वह शूल सूर्यनारायण के रथ के घोड़ों में लगा। इससे सूर्यनारायण के रथ के घोड़े विदुक गये और सूर्यनारायणजी को भी सम्भ्रम हो गया, वे चौंक पड़े कि यह क्या

हुआ। उसी दशा में उनके हाथ का कमल यहाँ गिर गया उसी से यह पुष्करिणी प्रकट हुई। यहाँ दान, धर्म, जप, तप, ब्राह्मण भोज का लक्षों गुणा माहात्म्य है। रविवारी सप्तमी का विशेष पर्व है। (रे० खं० ६२ अ०)

९२—पुष्करिणी तीर्थ के आगे मार्ग अत्यन्त ही संकीर्ण है। नर्मदा यात्रा में सबसे कठिन भयावह यही मार्ग है। इस पार और उस पार पर्वत श्रेणियों से संयुक्त एकान्त ऊँचा नीचा, जन शून्य मार्ग है। नगर बहुत ही कम हैं। दश मील चलने पर **माकर खेड़ा** गाँव पड़ता है। उस पार दक्षिण की ओर सिंदूर-नदी का संगम है। यहाँ से १२ मील आगे घोर झाड़ियों और बड़े-बड़े पाषाणों से परिपूर्ण कठिन मार्ग को पार करने के अनन्तर पापली घाट आता है। पापली घाट से कुछ दूर पर देवदी ग्राम है। उसी के समीप **बाणगंगा संगम** है। इस संगम के स्नान का विशेष माहात्म्य है।

९२—बाणगङ्गा संगम से ८ मील की दूरी पर **हापेश्वर तीर्थ** है। यह आठ मील का मार्ग घोर जङ्गल का मार्ग है। कहीं-कहीं बनवासियों के छोटे-मोटे ग्राम पड़ते हैं विकट मार्ग है। हापेश्वर को हन्सेश्वर या हप्येश्वर कहते हैं। यह स्थान छोटा उदयपुर राज्य में था। मन्दिर २२ खम्बों का बहुत ही भव्य बना है। छोटा उदयपुर राज्य की ओर से यहाँ नर्मदा परिक्रमा के यात्रियों को सदावर्त भी मिलता था। घोर वन में यह दर्शनीय स्थान है। इसकी कथा भी सुन लीजिये—

जब इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी तो ब्रह्माजी ने पृथ्वी, वृक्ष, स्त्रियों तथा जल इन चारों को बाँट दी। जल के स्वामी वरुण हैं उनको भी एक भाग मिला। अतः उन्होंने इस स्थान पर आकर घोर तपस्या की। शंकरजी ने प्रसन्न होकर इन्हें शान्ति प्रदान की। यह वरुणदेवजी द्वारा स्थापित तीर्थ परम पवित्र और पुण्य प्रद है। (वशि० सं० ३४ अ०)

९४—हापेश्वर से आगे कठिन मार्ग है, पर्वतों की कठिन चढ़ाई है। निर्जन मार्ग है। इस शूलपाणि की झाड़ियों में होते हुए २५ मील दूरी पर **हतनी संगम** है। कहते हैं वनबास के समय में यहाँ पाण्डवों ने यज्ञ किया था। और भी बहुत से राजाओं ने यहाँ घोर वन में यज्ञ किये थे। सुनते हैं अब भी यहाँ यज्ञ की भस्म निकलती है। हतनी संगम में स्नान दान तपस्या का विशेष माहात्म्य है। यहाँ वैजनाथ शिव हैं।

९५—हतनी संगम से आगे वैसे ही वन पर्वत तथा झाड़ियों को लाँघते हुए कठिन मार्ग से **कतखेड़ा** घाट मिलता है। यह स्कन्द कार्तिकेय स्वामी का स्थापित तीर्थ है।

९६—कतखेड़ा घाट से ११ मील वैसे ही भयंकर झाड़ी मार्ग से **हरणफाल** घाट आता है। सामने दक्षिण तट को भी हरणफाल घाट ही कहते हैं। उस पार के विवरण में हम बता ही चुके हैं।

९७—हिरणफाल से ४ मील ऐसे ही विकट मार्ग से **धर्मराय तीर्थ** आता है। यह पाण्डवों की तपस्थली है। धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने नाम से इस तीर्थ की स्थापना की थी।

९८—धर्मराय से तीन मील आगे अरण्य के मार्ग से **मेघनाद तीर्थ** है। यह रावण के पुत्र मेघनाद द्वारा स्थापित तीर्थ है। समीप ही रावण कुम्भकर्ण की भी तपस्थली बतायी जाती है।

९९—मेघनाद तीर्थ से १ मील आगे **कोटेश्वर तीर्थ** है। इसे कुण्डेश्वर भी कहते हैं। कुबेर के पुत्र कुण्डदानव ने इसे स्थापित किया। यहाँ गौदान का विशेष माहात्म्य है। यहाँ पर समस्त शुभ कार्य शीघ्र ही सफल होते हैं। (रे० खं० ६० अ०)

शूलपाणि की जो कठिन झाड़ी बतायी जाती है, वह यहाँ आकर समाप्त हो जाती है। यहाँ से आगे अब कोई कठिनाई नहीं। साधारण मार्ग है।

कोटेश्वर से महेश्वर

१००—कोटेश्वर से ७ मील आगे **चिखलदा पंचकुण्ड** तीर्थ है। मार्ग सर्वथा साधारण है। आगे न तो मार्ग ही शूलपाणि की झाड़ी के सदृश दुखद है और न अब किसी प्रकार का भय ही है। यहां पर नीलकण्ठेश्वर हरिहरेश्वर और अग्निश्वर शिव हैं। यह अग्निदेव प्रधान तीर्थ है। यहाँ सप्तर्षियों ने तप किया था, अग्निदेव का यहां नित्य निवास बताया गया है। प्राचीन काल में समस्त ऋषि मुनियों ने अग्निदेव को ब्रह्मस्वरूप मानकर उनकी स्तुति की। तब अग्निदेव ने प्रसन्न होकर वरदान दिया--जो यहां आकर विधिपूर्वक श्रद्धा से यज्ञ करेंगे, वे विमुक्त बन जायँगे। तभी समस्त ऋषि मुनियों ने मिलकर अग्नीश्वर शिवजी की स्थापना की। यहां पर यज्ञ, तप, दान तथा अन्यान्य धार्मिक कार्यों का तथा ब्रह्मभोज का विशेष माहात्म्य है। (रे० खं० ४५ अ०)

१०१—चिखलदा पंचकुण्ड तीर्थ से आगे चलकर चिखलदा और बोध बाड़े के बीच में **देवमय तीर्थ** है। यह तीर्थ देवताओं द्वारा स्थापित है। प्राचीन काल में जब देवताओं ने नर्मदा परिक्रमा आरम्भ की थी, तब सब देव यहीं एकत्रित हुए थे। तभी उन्होंने इस तीर्थ की स्थापना की। यहां स्नान, दान, स्तुति पूजा, तप, उपवास, कुशा के अग्रभाग से सोमपान करके इसके पश्चात्

नर्मदा जी के जल का एक विन्दुपान करने का माहात्म्य है। इस तीर्थ में तपादि के शुभ कर्मों से सौभाग्य की प्राप्ति होती है। [रे० खं० ४५ अ०]

१०२—देवतीर्थ के आगे बोध बाज्ञा ग्राम के निकट **देवपथ लिंग** तीर्थ है। देवताओं ने मिलकर यहीं से नर्मदा परिक्रमा आरम्भ की थी और यहीं आकर उसे समाप्त भी किया। परिक्रमा आरम्भ करने पर उन्होंने यहाँ देवमय शिवलिंग की स्थापना की थी। जब परिक्रमा समाप्त हो गयी, तब यहाँ आकर देवगय लिंग की तथा नर्मदा मैया की पूजा की थी। यहां चैत्र की कृष्णा और शुक्ला दोनों चतुर्दशियों का विशेष माहात्म्य है। [रे० खं० ४७ अ०]

१०३—देवमय लिंगतीर्थ से चार मील आगे **बगाड़ संगम** है। यहाँ बगाड़ नदी आकर नर्मदा में मिली है। संगम के समीप ही गांगलादेघाट है यहां शिवजी के नन्दी ने तपस्या की थी और अपने नाम से नन्दिकेश्वर शिवजी की स्थापना की थी।

१०४—बगाड़ संगम से आगे तीन मील पर **बागीश्वर तीर्थ** है। प्राचीन काल में आदि सतयुग के समय सूर्यवंशी ब्रह्मदत्त नाम के राजा हो गये है। वे अत्यन्त ही दानी महाराजा थे। उन्होंने इस स्थान पर सोने के स्तम्भ वाले बड़े-बड़े सौ यज्ञ किये थे। और सौ बार सुबर्ण से अपनी शरीर को तौलकर तुलादान किये थे। उन्होंने दान द्वारा आगन्तुक सभी याचकों को परितृप्त किया। उनके यज्ञों में वसिष्ठ पराशरादि सभी ऋषि मुनि समुपस्थित हुए थे।

यहाँ बागु नदी का नर्मदाजी के साथ संगम है। यहां चामुंडा देवी का सर्वदा निवास रहता है। यहाँ पिंडदान, पितृतर्पण, ब्रह्मभोज का विशेष माहात्म्य है। (रे० खं० ४६ अ०)

१०५—बागीश्वर तीर्थ से दो मील आगे सेमरदा घाट के समीप **दीप्तिकेश्वर तीर्थ** है। यह तीर्थ ब्रह्मा, बिष्णु, महेश त्रिदेवों द्वारा स्थापित है यहाँ असुरों के भय से भयभीत देवताओं को भगवान् ने अभय प्रदान की। यहाँ दीप्तिकेश्वर, नर्मदेश्वर, अमरेश्वर शुक्लेश्वर आदि शिवलिङ्ग हैं। यहाँ पर यज्ञ यागादि सभी शुभ कर्म सफल होते हैं। (रे० खं० ४८ अ०)

१०६—दीप्तिकेश्वर तीर्थ से कुछ ही दूरी पर पेरखेड़ ग्राम में **कांकड़िया संगम विष्णु तीर्थ** हैं। प्राचीन काल में यहाँ ब्रह्माजी ने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया था। यज्ञ में सदा से असुरगण विघ्न किया ही करते है। बहुत से असुर ब्राह्मणों का वेष बनाकर यज्ञ में घुस आये। वे उन ब्राह्मणों को कष्ट देने लगे जो यथार्थ याज्ञिक ब्राह्मण थे। यज्ञ में जिस द्रव्य को भी देखें उसी का हरण

करने लगे। ब्रह्माजी तो दीक्षित थे। दीक्षित को क्रोध करना निषेध है. अतः उन्होंने भगवान् विष्णु का स्मरण किया। भगवान् विष्णु की सहायता से उन ब्राह्मण बने दैत्यों को मार भगाया। तभी से यह विष्णुतीर्थ के नाम से विख्यात हुआ। यहाँ पर सभी जप, तप, यज्ञ यागादि काय सफल होते हैं।

(रे० खं० ४९)

१०७—विष्णु तीर्थ से कुछ ही दूर पर बड़ा वर्धा घाट में **वराहेश्वर तीर्थ** है। वराह कल्प में एक जटासुर नाम का दैत्य था। उसने घोर तप करके शिवजी से अपराजित होने का वर प्राप्त कर लिया था। इससे उसका अभिमान अत्यधिक बढ़ गया था। वह सदैव अपने साथ दस करोड़ दैत्यों को रखता था। उसने अपने बल प्रताप से समस्त देवताओं को जीत लिया था और पृथ्वी सहित समस्त वेदों को वह पाताल में ले गया था। देवताओं की प्रार्थना पर भगवान् ने वाराह रूप धारण करके पाताल में जाकर दैत्य का वध किया और पृथ्वी सहित वेदों का उद्धार करके ले आए। यहां आकर उन्होंने वाराहेश्वर शिवजी की स्थापना की। यहाँ देवशयनी (आषाढ़ में) और देवोत्थापिनी (कार्तिक में) दोनों एकादशियों का विशेष माहात्म्य है उपवास करके शिवजी का पूजन करे, रात्रि जागरण करे। दूसरे दिन ब्रह्मभोज करावे तो अनन्त गुणा फल होता है। [रे० खं० ४६ अ०]

१०८—वराहेश्वर तीर्थ से एक मील आगे **ऋद्धेश्वर तीर्थ** है। इसे देवताओं की माता अदिति देवी ने आदि कल्प में यहां दिव्य सहस्र वर्ष तपस्या करके स्थापित किया था। इसीलिए इसे अदितीश्वर तीर्थ भी कहते हैं। इसी तपस्या के प्रभाव से उनके सूर्य और चन्द्र पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। यह परम पावन तपस्थली है। यहाँ तपस्या करने का विशेष माहात्म्य है।

[रे० खं० ४६ अ०]

१०९—ऋद्धेश्वर से दो मील जंगल के मार्ग से चलकर आगे **मान संगम** है। यहां मान नाम की नदी आकर नर्मदा जी में मिली हैं।

११०—मानसंगम से आगे वन मार्ग से ३ मील पर **शुक्लेश्वर सौर तीर्थ** है। प्राचीनकाल में कुश नामक ऋषि ने बहुत दिनों तक यहां सूर्य भगवान् की उपासना की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर सूर्य भगवान् उनके सम्मुख प्रकट हुए और वरदान मांगने को कहा। ऋषिजी ने यही वरदान मांगा कि आप यहां सदैव निवास करके आर्तजनों के दुःखों को निवारण करते रहें। यह सूर्य भगवान् सम्बन्धी तीर्थ है। अन्ध, बधिर, कूबड़े, तथा कुष्टरोग से पीड़ित सूर्योपासना करके इच्छित फल को प्राप्त करेंगे। यहाँ संन्यासी की मृत्यु हो तो मुक्ति प्राप्त होती है [रे० खं० ५५]

१११—शुक्लेश्वर से ४ मील आगे हतनोर में **दारुकेश्वर तीर्थ** है। यहां प्राचीन काल में दारुक नाम वाले ऋषि यहाँ आजीवन रहकर तपस्या करते रहे। वे यहाँ वानप्रस्थाश्रम का पालन करते हुए कन्द मूल फलों पर ही निर्वाह करते रहे। यहां जो फलाहार करके वर्णाश्रम धर्म के अनुसार तपस्या करेंगे उन्हें स्तोत्रापणी यज्ञ का फल प्राप्त होगा। यहाँ जप तपादि सकाम भाव से शुभ कर्म करने वालों का राजकुल में जन्म होता है। यह यज्ञस्थल है। अब तक यज्ञीय भस्म यहां निकलती है। (रे० ख० ५२ अ०)

११२—दारुकेश्वर तीर्थ से २ मील आगे खुजा नाम के ग्राम में **कुब्जा सङ्गम विल्वाम्रक तीर्थ** है। यहाँ पर कुब्जा कुण्ड है और नागेश्वर तथा विष्णु भगवान् की ५ मूर्तियाँ हैं। यहां रेवाजी के बीच में धर्मपुरी नामक द्वीप है। उसमें **विल्वाम्रक तीर्थ** है। इस स्थान में राजर्षि दधीचि तपस्या किया करते थे। एक समय देवता और असुरों का युद्ध हुआ। उसमें देवता पराजित हुए। देवता दधीचि मुनि के समीप आये और प्रार्थना की–महाराज! ये दिव्य अस्त्र-शस्त्र हैं। इन्हें आप न्यासभूत धरोहर की भाँति रख लें। ऋषि ने वे रख लिए। अब सब देवता नारदजी के समीप गये। उनसे अपनी विजय के लिए आग्रह किया। नारद दधीचि मुनि के समीप आए और उनसे प्रार्थना की—'भगवान्! देवताओं की विजय कैसे हो इसका उपाय बतावें।"

तब दधीचि मुनि ने कहा—"देखो, नारदजी रेवा किनारे तपस्या करते-करते मेरी हड्डियाँ वज्र के सदृश बन गयी हैं। देवताओं से कहिये मेरी हड्डियों का वज्र बनावें, तभी उनकी विजय हो सकती है।"

नारदजी ने यह बात जाकर देवताओं से कही। तब सब इन्द्रादि देव मिलकर दधीचि मुनि के आश्रम आये। कामधेनु से जीवित महर्षि के शरीर को चटवाकर हड्डियों को विशुद्ध करके उसका वज्र बनाया। उसी वज्र से वृत्रासुरादि दैत्यों का वध करके देवताओं ने असुरों पर विजय प्राप्त की। तभी से दधीच की तपोभूमि कुब्जा संगम की सर्वत्र महिमा फैल गई। कुब्जा संगम का नाम विल्वाम्रक तीर्थ क्यों पड़ा? इसकी भी कथा सुनिये।

प्राचीन काल में पार्वतीजी की १०८ कन्यायें सखी थीं। किसी बात पर इन कन्याओं की पार्वतीजी से अनवन हो गई। तब ये सब पार्वतीजी का परित्याग करके यहाँ रेवा तीर पर आकर तपस्या करने लगीं। इन्होंने शिवजी का एक करोड़ विल्व पत्र तथा एक करोड़ आम्र पत्तों से पूजन किया। इससे शिवजी प्रसन्न हुए और इनको मनोवांछित फल प्राप्त हुआ। तभी से शिवजी का नाम विल्वाम्रक हो गया। ये कन्यायें ही देवी बनकर हरिद्वार में चण्डिका, काशी

में विशालाक्षी, नैमिषारण्य में लिङ्गधारिणी, प्रयाग में ललितादेवी, गन्धमादन पर्वत पर कामुका तथा मानसरोवर में क्रमदा के नाम से विख्यात हुई।

यहाँ पर मेघवन यज्ञ पर्वत के राजा रन्तिदेव ने अपने पाप मिटाने को यज्ञ किया था। समस्त याज्ञिकों को यथेष्ट दक्षिणा दी उनके समस्त पाप छूट गये। पितरगण प्रसन्न हुए। जिस स्थान पर यज्ञ कलश रखा गया वहाँ कुब्जेश्वर शिवजी प्रकट हुए। संगम के चारों दिशाओं में एक कोस तक सवा करोड़ शिवलिङ्ग है यह शिव क्षेत्र परम पावन तीर्थ है। यहाँ सभी शुभ कर्म सिद्ध होते हैं। कार्तिकी पूर्णिमा और सोमवती अमास्या का यहाँ विशेष माहात्म्य है। प्रयागराज के समान फल है। (रे० ख० ४१ अ०)

११३—कुब्जा संगम से ८ मील आगे **मांडवगढ़ रेवाकुण्ड** की परिक्रमा के पगारा ग्राम में वक्रतुंड गणेशजी का स्थान है। रेवाकुंड के कारण कोई-कोई नर्मदा परिक्रमा वाले यहाँ अते हैं। यह नर्मदाजी से ८ मील है। उत्तर दिशा में पद यात्रियों को नियमानुसार नर्मदाजी से ७ मील आगे नहीं जाना चाहि । अतः मांडवगढ़ किला में नर्मदाकुंड परिक्रमा करने कोई-कोई ही जाते हैं मांडवगढ़ में नीलकण्ठ शिवजी का स्थान है यहाँ रेवाकुण्ड, कमालकुण्ड, वावड़ी, श्रीरामचन्द्रजी का मन्दिर, नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर हैं। मांडवगढ़ सुप्रसिद्ध जम्बे राजा का किला है। जहाँ जम्भ राजा के साथ ऊदल की लड़ाई हुई थी। यहां से लोहारया ग्राम सुन्दरेल ग्राम होकर १८ मील की दूरी पर नर्मदाजी का **खलघाट** है।

खलघाट—खुजा गांव के समीप धर्मपुरी नाम का नगर है। धर्मपुरी से खलघाट तक पक्की सड़क गयी है। धर्मपुरी से खलघाट ७ मील है। जो लोग मांडवगढ़ न जाना चाहें वे धर्मपुरी से इसी पक्की सड़क द्वारा खलघाट आ सकते हैं। यहाँ नर्मदाजी पर पक्का पुल है। आगरा से जो बम्बई को पक्की सड़क गयी है, वह यही नर्मदाजी को पार करती है।

११४—खलघाट अच्छी बस्ती है। यहां पर **कपिल तीर्थ** भी है। इसकी भी कथा सुन लीजिये—प्राचीनकाल में यहां नर्मदा तट पर ब्रह्माजी ने एक बड़ा भारी यज्ञ किया। उस यज्ञ के कुंड से एक कपिला गौ प्रकट हुई। समस्त देवताओं ने गौ माता की स्तुति की। तब कपिला गौ ने प्रसन्न होकर देवताओं से पूछा—देवगण ! तुम्हारी इच्छा क्या है ? सबने कहा—माताजी ! तुम मृत्युलोक में जाकर विश्व का कल्याण करो। तब कपिला ने इस स्थान पर नर्मदा किनारे आकर घोर तप किया। तब नर्मदाजी ने प्रसन्न होकर उन्हें जगत् माता बना दिया। इस तीर्थ में गौदान का विशेष माहात्म्य है और स्थानों से यहां किये हुए जप का कोटि गुण फल बताया है। [रे. ख. ५८ अ.]

११५—खलघाट से तीन मील की दूरी पर कारम और बूटी दो नदियां आकर नर्मदाजी में मिलती हैं अतः इसे **त्रिवेंणी तीर्थ** कहते हैं।

११६—त्रिवेंणी तीर्थ से एक मील आगे वन मार्ग से जाने पर जलकोटि ग्राम के समीप **सहस्र धारा तीर्थ** आता है। यह बहुत ही पवित्र तथा रमणीक स्थल है, कहते हैं यह माहिष्मती के महाराजा सहस्रबाहु युद्धस्थल है।

११७—सहस्रधारा तीर्थ से तीन मील आगे ज्वाला नदी के संगम के समीप **महेश्वर अर्थात् माहिष्मती नगरी** है। यहाँ बहुत से तीर्थ हैं, किन्तु ज्वालेश्वर शिवजी, भर्तृहरि की गुफा, स्कन्देश्वर शिव, गणेशजी, नरसिंहजी, पंढरीनाथ ये तो महेश्वर नगर में है, नर्मदाजी के बीच में जो द्वीप है, उसमें वाणेश्वर, मातंगेश्वर, शिद्धेश्वरी देवी, राजेश्वर, काशी विश्वेश्वर तथा कालेश्वर ये मुख्य तीर्थ हैं।

ज्वालेश्वर की कथा इस प्रकार है—सत्ययुग में इस माहिष्मती नगरी में सूर्यवंशी राजा दुर्योधन था। उसने नर्मदाजी से विवाह किया उससे सुदर्शना नामकी कन्या हुई। जिसका विवाह अग्नि के साथ हुआ। इसीलिए यह अग्नि तीर्थ ज्वालेश्वर कहलाया।

मातंगेश्वर तीर्थ की कथा इस प्रकार है—यह अशोक वनि का तीर्थ प्रसिद्ध है। आदि सत्ययुग में एक भील ने यहाँ नर्मदा तट पर चिरकाल तक घोर तपस्या की। इसके प्रभाव से मृत्यु के पश्चात् वे मातंग नाम के ऋषि हुए। वे तीर्थ यात्रा करते हुए यहाँ आये। पूर्वजन्म के संस्कारवश वे यहां रह गये और सौ दिव्य वर्षों तक तपस्या करते रहे। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी प्रकट हुए और वर माँगने को कहा। तब मातंग ऋषि ने यही वर मांगा कि आपकी इस तीर्थ में नित्य सन्निधि हो। तभी से यह तीर्थ परम पवित्र माना जाता है। यहाँ कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी और दीपावली का विशेष माहात्म्य है। यहाँ जौ के सत्तू और गुड़ के पिण्डदान का तथा ब्रह्मभोज का विशेष माहात्म्य है। [रे. ख. ३८]

माहिष्मती में महाराज सहस्रार्जुन राज्य करते थे। वे दत्तात्रेय जी के भक्त तथा मातंग ऋषि के शिष्य थे। इन्होंने ही राजराजेश्वर सिद्धेश्वरीदेवी, गणेशजी और स्कन्द इन देवों की स्थापना की। स्कन्द पुराण में इस क्षेत्र की महिमा विस्तार के साथ वर्णित है। [वा. सं. २९ अ.]

महेश्वर बहुत प्रसिद्ध और ऐतिहासिक स्थान है। इसका प्राचीन नाम महिष्मती था। महाराजसहस्रार्जुन की यह राजधानी थी। उस समय इसका क्या वैभव रहा होगा? भगवान् आद्यशंकराचार्य का मण्डन मिश्र से यहीं

शास्त्रार्थ हुआ था। श्री शंकर दिग्विजय में इसका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। श्रीशंकराचार्यजी तीर्थराज प्रयाग से ही कुमारिलभट्ट के चावल की भूसी में प्रायश्चित्त स्वरूप प्राण विसर्जन के दृश्य को देखकर दिग्विजय के लिए चले। उन दिनों कर्मकांडियों में पंडित मण्डन मिश्र का बहुत नाम था। अतः सर्वप्रथम प्रयाग से ही वे मण्डन मिश्र को परास्त करने की इच्छा से चले। इसीलिए दिग्विजयकार ने वर्णन किया है—श्रीकुमारिल भट्टपाद की विष्णुपद प्राप्ति के अनन्तर श्रीमद् शंकराचार्यजी पण्डित मण्डन मिश्र को जीतने के निमित्त प्रयागराज से निकले। चलते-चलते वे मण्डन मिश्र द्वारा शोभित महिष्मती नाम की नगरी में पहुँच गये। जो नगरी रत्नों द्वारा सुशोभित है उस महानगरी को देखकर श्री शंकराचार्य पाद परम विस्मत हुए। इस नगरी के समीप ही रमणीक वन में अवतरित हुए। यह स्थान प्रफुल्लित कमलों के वन में विहार करने वाली तरंगों के मध्य में उड़ती हुई जलकी झीनी-झीनी कणों से भिजाने वाली तथा साल वृक्षों की पंक्तियों से कंपायमान तथा परिश्रम से उड़ते हुए नर्मदाजी के जल मिश्रित पावन को श्रीशंकर पाद सेवन करने लगे।

उस वन में विश्राम करके नित्य कर्म से निवृत्त होकर जब आकाश के मध्य में सूर्य नारायण आ गये, तब श्री शंकराचार्य वहाँ से चले। मार्ग में मण्डन मिश्र के घर की दासी जल भरने के लिए जा रही थीं। उनसे शङ्कराचार्यजी ने पूछा--"यहाँ पण्डित मण्डन मिश्र का घर कहाँ है ?"

जिन दासियों को श्री शंकरपाद के दर्शनों से ही अद्भुत सुख प्राप्त हुआ था और आचार्य को देखजर परम सन्तोष हुआ था, वे दासी नीचे लिखे प्रमाण से उत्तर देने लगी। जिस घर के द्वार में लटके हुए पींजड़ों में तोताओं की मातायें परस्पर कह रही हों कि श्रुति के वचन स्वतः प्रमाण हैं या परतः प्रमाण हैं, इस प्रकार जहाँ शास्त्रार्थ सम्बन्धी भाषण तोता मैना कर रहे हों, उसे ही आप मण्डन मिश्र का घर जानिये। जिस घर के द्वार पर लटके पींजड़ों में तोता मैना शास्त्रार्थ करते हुए पूछ रहे हों कि फल को कर्म देता है या ईश्वर देता है, उसे ही आप मण्डन मिश्र का घर जाने। जिस घर के द्वार पर पींजड़ों में बैठे तोता मैना इस प्रकार शास्त्रार्थ कर रहे हों कि जगत् सत्य है या असत्य है, उसे ही मण्डन मिश्र का घर जाने। (सं. शंकरदिग्विजय द्रष्टव्य है)

> स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीरांगन यत्र गिरं गिरन्ति।
> द्वारस्थनीडांतर सन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितोके:॥
> फलप्रदं कर्म फलप्रदोऽजः कीरांगना यत्र गिरं गिरन्ति।
> द्वारस्थनीडांतरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः॥

जगत्ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवंस्यात्कीरांगना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थ नीडांतर सन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥

इस वर्णन से ही आप उस समय की माहिष्मती के वैभव को जान सकते हैं। भगवान् शंकराचार्यजी ने माहिष्मतीपुरी में जाकर जिस प्रकार मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ किया और उन्हें शास्त्रार्थ में पराजित किया। तदनन्तर उनकी परम विदुषी धर्मपत्नी सरस्वती ने कहा—आपने उनके आधे शरीर पर ही विजय प्राप्त की है। अभी अर्धाङ्गिनी मैं तो शेष ही हूँ। मुझसे शास्त्रार्थ कीजिये। तब आचार्यपाद ने उससे शास्त्रार्थ किया। उसी बीच में उसने काम सम्बन्धी प्रश्न किए। तब आचार्य ने परकाया प्रवेश विद्या के द्वारा मृतक राजा अमरक के शरीर में प्रवेश करके काम शास्त्र का अनुभव करके उसे शास्त्रार्थ में हराया और मण्डन मिश्र को अपना शिष्य बनाया। यह कथा विस्तार के साथ शङ्कर दिग्विजय में वर्णित है। इस विषय के इच्छुक पाठकों को इसे शङ्कर दिग्विजय में ही देखना चाहिए।

इस प्रकार यह महेश्वर-माहिष्मतीपुरी भगवान् शङ्कराचार्य के पादपद्मों द्वारा पवित्र की हुई है। फिर धर्म संम्राज्ञी महारानी अहल्याबाई ने इसे अपनी राजधानी बनायी थी। उसके बनाये हुए घाट, उनकी छत्री, उनके बनाये मन्दिरों के समान उत्तर-प्रदेश में स्यात् ही कहीं हों। इनके बनाये पक्के घाटों की शोभा निराली है। उस पार से देखिये तो काशी की-सी छटा दिखायी देती है यहाँ पर अहल्याबाई होल्कर का एक न्यास (ट्रस्ट) है। उसी के द्वारा यहाँ का प्रबन्ध होता है।

महेश्वर से ओङ्कारेश्वर

११८—महेश्वर से कुछ ही दूर पर गादी नदी आकर नर्मदाजी में मिली है। अतः **गादी संगम तीर्थ** महेश्वर के सन्निकट ही है।

११९—गादी संगम से ५ मील की दूरी पर मंगलेश्वर स्थान आता है। यहाँ पर **मलशमनेश्वर तीर्थ** है परशुरामजी ने इक्कीस बार क्षत्रियों का वध किया। तदन्तर उन्हें पश्चाताप हुआ। अतः वे यहाँ रेवा किनारे आकर तपस्या करने लगे। उन्होंने मलशमनेश्वर शिवलिंग की स्थापना की। इससे उनका क्षत्रिय वध का जो मल था वह शमन हुआ। यहाँ तपस्या करने से सब प्रकार के पापों का शमन होता है। यहाँ ब्रह्मभोज का विशेष माहात्म्य है। (वशि० सं० ३०।३१ अ०)

१२०—मण्डलेश्वर में ही एक **गुप्तेश्वर** हैं, उनकी भी कथा सुन लीजिये-यहाँ के वन को दारुवन कहते हैं। प्राचीन काल में अनेको महर्षिगण इस दारुवन में रहकर तपस्या करके सिद्धि को प्राप्त हुए। एक बार पार्वतीजी सहित शिवजी घूमते-घामते इस दारुवन में आए। उन इतने ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों को तप में लीन देखकर पार्वतीजी ने शिवजी से पूछा—"भगवान् ! इस घोर अरण्य में इन ब्राह्मणों को ऐसी ऋद्धि सिद्धि कैसे प्राप्त हो जाती है ?"

शिवजी ने कहा—"वास्तव में यह सिद्धि तो इन ब्राह्मणों की सती स्त्रियों के सतीत्व के कारण है। सती स्त्रियाँ संसार में सब कुछ करने में समर्थ हैं। रिद्धि सिद्धि तो उनके सम्मुख तुच्छ है।"

पार्वतीजी ने कहा—"अच्छा, इन विप्र पत्नियों के सतीत्व की आप परीक्षा लें।"

शिवजी ने कहा—"देवि ! ऐसी बात मत कहो। ब्राह्मणों को जो भी कष्ट देता है उसका सर्वनाश हो जाता है।"

पार्वतीजी ने कहा—"मैं कष्ट देने को तो कहती नहीं। सतीत्व की परीक्षा लेने को कहती हूँ। मेरी यह प्रार्थना आपको अवश्य स्वीकार करनी पड़ेगी।"

शिवजी ने सोचा—"त्रियाहठ को ब्रह्माजी भी नहीं टाल सकते। पार्वतीजी अब मानेगी नहीं। अतः उन्होंने कापालिक ब्रह्मचारी का बहुत ही सुन्दर स्वरूप बनाया। दिगम्बर होकर अत्यन्त ही मधुर स्वर में वंशी बजाने लगे। इनके इतने लोकत्तर सुन्दर स्वरूप को देखकर तथा मनमोहक वंशी की सुरीली तान को सुनकर दारुवन की जितनी स्त्रियाँ थीं सब आ गयीं। जगतपति कापालिक शम्भु डमरू बजा रहे थे और ताण्डव नृत्य कर रहे थे। इनके सुन्दर स्वरूप को, नृत्य देखकर विप्रपत्नियाँ मन्त्र मुग्ध की भाँति मोहित हुई उन्हें अनुराग के साथ अवलोकन कर रही थीं। ब्राह्मणों ने देखा यह दिगम्बर ब्रह्मचारी सदाचार के नियमों के विरुद्ध नग्न नृत्य कर रहा है, तब उन्होंने शाप दिया—"जाओ, तुम्हारा लिङ्ग गिर जाय।" उसी समय शिवजी का लिङ्ग गिर गया। तब तो देवता बहुत घबड़ाये। वे ब्राह्मणों के समीप आये और बोले—'ये तो स्वयं साक्षात् शिवजी हैं।"

तब ब्राह्मणों को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। तब ब्राह्मणों ने कहा— हमारे वचन तो मिथ्या नहीं होंगे। किन्तु आज से संसार में शिवजी के लिङ्ग की पूजा हुआ करेगी और उससे समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होंगी।

तब फिर ब्राह्मणों ने शिवजी से कहा—"भगवान् ! आप यहीं इस दारुवन में विराजें। पतिव्रताओं के मन को विचलित करने का जो दोष आपको लगा

है, उसका शमन इसी क्षेत्र में होगा।" शिवजी ने इसे स्वीकार किया। वे एक गुफा में गुप्तेश्वर नर्मदेश्वर की स्थापना करके तप करने लगे। इससे उनका दोष मिट गया। यहाँ तपस्या करने से सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। गुहावासी गुप्तेश्वर के दर्शन से सर्व तीर्थों के पुण्य का फल प्राप्त होता है। (रे. खं ५७ अ.)

१२१—गुप्तेश्वर से ४ मील अरण्य के मार्ग से लेकर आगे **नान संगम** है। यहाँ नान नदी आकर नर्मदाजी में मिली हैं।

नान संगम से ६ मील आगे पथराल ग्राम के समीप **मालन संगम** है। यहाँ मालन गंगा नर्मदाजी में आकर मिली हैं।

१२२—मालन संगम से कुछ ही आगे पीतामाली ग्राम के सन्निकट**पिप्प-लेश्वर तीर्थ** है यहाँ पिप्पलद मुनि का आश्रम है। कहते है मिथिलापुरी के महर्षि याज्ञवल्क्य की विधवा बहिन ने यहाँ नियम विरुद्ध एक पुत्र उत्पन्न हो गया। वह पीपल के वृक्ष के नीचे हुआ और शनिदेव ने उसका पालन पोषण किया। वह महान तपस्वी हुआ। उसने तपस्या के प्रभाव से शनिदेव से बालकों को कष्ट न देने की प्रतिज्ञा करा ली। इसने शूलपाणि में भी जाकर तपस्या की और शिवजी को प्रसन्न किया।

१२३—पिप्पलेश्वर तीर्थ से आगे पेशवाओं द्वारा स्थापित एक **विजयेश्वर** शिव हैं, उससे आगे मैलखलग्या ग्राम के सन्निकट खुलार नदी का संगम है। संगम के समीप ही **दारुकेश्वर** शिव जो हैं प्राचीन काल में देवताओं की एक सभा हुई। उसमें वर्धमान का पुत्र दारुक दुष्ट स्वभाव का होने से ब्राह्मणों को बहुत कष्ट देने लगा। तब इन्द्र ने उसे शाप दिया—"तू मर्त्यलोक में जाकर मानव योनि में उत्पन्न हो।" इस पर दारुक ने देवराज इन्द्र की बहुत अनुनय विनय की। तब देवराज इन्द्र ने कहा—"मनुष्य योनि में तो तुझे जन्म लेना ही पड़ेगा और सूत जाति में तू पैदा होगा। किन्तु श्रीकृष्ण भगवान का सारथी होगा। रेवा तीर में तपस्या करने से तू मुक्त हो जायगा। उसी श्रीकृष्ण सारथी दारुक ने अपने नाम से इस तीर्थ की स्थापना की। यह सभी कर्मों को सुफल बनाने वाला परम पुण्यप्रद पावन तीर्थ है (रे० खं० ५६ अ०)।

१२४—दारुक तीर्थ से २ मील आगे सेमलदा ग्राम के समीप **विमलेश्वर तीर्थ** है। एक बार बहुत बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा। उस समय गंगातीर निवासी ब्राह्मणों को अभक्ष भक्षण करना पड़ा। जब दुर्भिक्ष मिट गया तब ऋषियों की सभा हुई। उसमें यही निर्णय हुआ—अभक्ष्य भक्षण दोष नर्मदा किनारे जाकर तपस्या करने से छुट सकता है। तब सब लोग इस विमलेश्वर तीर्थ में आये।

शिवजी की आराधना करने से वे विमल बन गये। यहाँ ओंकारेश्वर कुन्देश्वर भी हैं (रे० खं० ६२ अ०)।

१२५--विमलेश्वर से ३ मील आगे वन के मार्ग से **बड़वाह ग्राम** है। उसके समीप **नागेश्वर तीर्थ** है यहाँ रेवा कुण्ड में नागेश्वरनाथ का मन्दिर है, ओंकारनाथ की झाड़ी यहीं से मानी जाती है।

१२६--नागेश्वर से २ मील आगे **खेड़ीघाट** है बहुत सुन्दर रमणीक स्थान है। रेल और मोटर के पुल हैं इन्दौर-खण्डवा के लिए।

१२७--नागेश्वर से २ मील आगें वन मार्ग से **चारुसंगमेश्वर गंगानाथ तीर्थ** है। यह स्थान भी सुन्दर और एकान्त है।

१२८--चारु संगमेश्वर से १ मील आगे झाड़ी के मार्ग से **गंगा नदी संगम** है। यहीं **कोटेश्वर तीर्थ** है। दनु के पुत्र करंज दानव ने यहाँ तप करके शिवजी को प्रसन्न करके उनकी भक्ति प्राप्त की। यह परम पुण्यप्रद तीर्थ है। (रे० खं० २९ अ०)

१२९--कोटेश्वर से ४ मील आगे बीहड़ वनों में होकर ओंकारेश्वर का **चौबीस अवतार तीर्थ** है। यह स्थान नर्मदा में जो कावेरी का दूसरा संगम है उसके समीप है। यहाँ चौबीस अवतारों की मूर्तियाँ काले पाषाण की स्थित है, मन्दिर बहुत जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। इसकी चर्चा एक महात्मा कर रहे हे। इसी स्थान से परिक्रमा प्रारम्भ की जाती है क्रमशः वणंन किया था उसकी पूर्णता यहाँ हो जाने से प्रदक्षिणा क्रम में पूणं हो गया।

तीर्थ जननी नर्मदा मैया की प्रदक्षिणा तन से होगी, पुस्तक पाठ द्वारा वाणी से तथा ध्यान चिन्तन योग्य नित्य प्रति कुछ मन्त्रों का गान करने पर मनसे पूरा सान्निध्य रेवाकाप्राप्तहोगा। प्रतिदिन अतः कण्ठ करके गान करते रहने से मैया का स्वरूप साक्षात्कार भी संभव है। एतदर्थ कुछ स्तुतियाँ यहां दे रहे हैं जो पुराणादि में मंगलाचरण से निबद्ध हैं। अर्थ पाठ करते करंते अपने आप सुस्पष्ट हो जाता है।

रेवा का मंगलमय उद्गान

मज्जन-मातंग-गण्डच्युत-मदमदिरा मोद-मत्तालिजालं
स्नानैः सिद्धांगनानां कुचयुग-विगलित-कुंकुमा संग-पिङ्गम्।
सायं प्रात मुनीनां कुसु-कुसुम चयै-श्च्छन्न तीरस्थ नीरं
पायाद्वो नर्मदाम्भः करिकलभ-कराक्रान्त रंहस्तरंगम् ॥१॥
उभयतट-पुण्यतीर्था प्रक्षालित-सकललोक-दुरितौघः।
देव-मुनि-मनुज वन्द्या हरतु सदा नर्मदा दुरितम् ॥२॥

नाशयतु दुरित मखिलं भूतं भव्यं भवच्च भुवि भविनाम् ।
सकल-पवित्रित-बसुधा पुण्यजला नर्मदा भति ॥३॥
तटपुलिनं शिवदेवा यस्या यतयोऽपि कामयन्ते वा
मुनिनिवह-विहितसेवा शिवाय मम जायतां रेवा ॥४॥(रे० ख०)
रेवां पद्मपलाश-दीर्घनयनां श्यामां सुशोणाधरां
नासा-मौक्तिक-चारुहास-सुमुखीं रक्तां च रक्ताम्बराम् ।
तन्त्री-मङ्कगतां-करेण शनकै-र्न्नादयन्तीं मुहु-
र्वन्दे मेकलकन्यकां शिवपरां सर्वाङ्ग-भूषावृताम् ॥१॥
रेवे ! त्वद्वारिधारा सकल-कलिमल-ध्वान्त-विध्वंसकारा
सारा संसार चक्रे त्रिभुवन विदिता दुःख-खण्डासि धारा ।
हाराऽकारानु कारा भुव अतितरला सन्मनोरञ्जनारा
भाराज्ञानां कुरस्य प्रलसतु नितरां दृष्टिमार्गे मन्दीये ॥२॥ (रेवा लहरी)
रेवाकृपा सर्वसुखं ददाति, श्री नर्मदा ब्रह्म पदं ददाति
शिवाङ्गजा शुभ्रमतिं ददाति, रेवानुता पूज्यवरं करोति ॥१॥
नमामि रेवे तव पादपंकजं सुरासुरै-र्रचित-दिव्यरूपम् ।
भोगं च मोक्षं च ददासि मात-र्भावानुसारेण सदा नराणाम् ॥
रेवे ! मातस्त्वयि यो भक्तः, मनुजं दृष्टुं यमो न शक्तः
पतितोद्धारिणि मेकलकन्ये नरक निवारिणि सुखद तरंगे ॥
नर्मदा नर्मदा सर्वमनोरथान् ददाति वै ।
कलौ तु नर्मदा देवी कल्पवृक्षो जनार्तिहा ॥ (भवानीतन्त्रे)

× × ×

गंगा बनी तूँ, यमुना बनी तूँ, गोदावरी-सिन्धु-सरस्वती तूँ ।
बृद्धा बनी, जीवन दायिनी तूँ, कलि में अहो कल्पलता समा तूँ ॥

षडक्षर शिवमंत्र का फल

किं तस्य बहुभिर्मंत्रैः कण्ठशोषण-तत्परैः ।
येनोन्नमः शिवायेति प्रोक्तं देवस्य सन्निधौ ॥१॥
तेनाधीतं श्रुतं सर्वं, तेन सर्वमनुष्ठितम् ।
येनोन्नमः शिवायेति मन्त्राभ्यास-स्थिरीकृतः ॥२॥
न तत्फलमवाप्नोति, सर्वदेवेषु वै द्विजः ।
यत्फलं समवाप्नोति षडक्षर उदीरणात ॥३॥ (रेवा खण्ड)

वायुपुराणोक्त तीर्थ संख्या

नर्मदा माई की परिक्रमा में बार-बार एक ही नाम की पुनरुक्तियाँ बहुत हैं इसका निराकरण वायु पुराण में है। एकही नाम के कौन कितने तीर्थ हैं उसे यहाँ समझें—

मार्कण्डेश्वर १० आदित्येश्वर १० कपिलेश्वर ९ सोमतीर्थ ८ नर्मदेश्वर ८ कोटी तीर्थ ८ सिद्धेश्वर ७ नागेश्वर ७ अग्नितीर्थ ७ आवर्त तीर्थ ७ केदार तीर्थ ९ इन्द्र तीर्थ ५ वरुणेश्वर ५ धनदेश्वर ५ देवतीर्थ ५ यमेश्वर ४ वैद्यनाथ ४ बानरेश्वर ४ अंगारेश्वर ४ सारस्वत तीर्थ ४ दारुकेश्वर ४ गौतमेश्वर ३ रामेश्वर ३ कपालेश्वर ३ हंसतीर्थ ३ मोक्षतीर्थ ३ विमलेश्वर ३ सहस्रयज्ञ ३ भीमेश्वर ३ सुवर्ण विन्दू तीर्थ २ धूत पापेश्वर २ करंजेश्वर २ ऋण मोचन २ स्कन्द तीर्थ २ दशाश्वमेध २ नन्दितीर्थ २ मन्मथेश्वर२भृगुतीर्थ २ पराशरेश्वर अयोनिज २ नन्दिकेश्वर २ गोपेश्वर २ व्यास तीर्थ २ पितृ तीर्थ २ मारुतेश्वर २,ज्वालेश्वर २ शुक्लतीर्थ २ अप्सरेश्वर २ पिप्पलेश्वर २ मार्कण्डेश्वर २ द्वीपेश्वर २ उत्तरेश्वर २ अशोकेश्वर २ योधनपुर २ रोहिणी तीर्थ २ लुकेश्वर २ वाराह तीर्थ ६ चक्रतीर्थ ४ मातृ तीर्थ ७ ब्रह्मतीर्थ ४ क्षेत्रपाल तीर्थ एकही उल्लिखित हुआ।

नर्मदा तीर के देश

१. हरई टोला से कन्हैया संगम तक **मुण्डामहारण्य** वृक्ष शून्य कंकरीला प्रदेश।

२. कन्हैया संगम से मण्डला तक **महारण्य** घोर झाड़ी पर्वतीय कठिन मार्ग।

३. मण्डला से गौर संगम तक **छोटा महारण्य** रमणीय सघन वनं पर्वतीय मार्ग।

४. गौर संगम से बाँदरभान तक **गोंडवाणा** साधारण जंगल का मार्ग।

५. बाँदराभान से जोगा किला तक **भोवाणा** जंगल का रमणीय प्रदेश।

६. जोगा किले खारया की चौकी (शूलपाण तक) **नेमाड** जंगल तथा पर्वतों का मार्ग।

७. खारया की चौकी से रेवासागर संगम तक **गुजरात** शूलपाण की घोर झाड़ी और साधारण प्रदेश है। जो भी है रेवा माँ के दर्शन-अवगाहन एवं अमृत मय पयपान से यात्रियों को जो वस्तुतः रेवा भक्त हैं उन्हें वहाँ परमानन्द ही प्राप्त होता है।

नर्मदा तीर में होने वाले मेले (यात्रा)

सोमवती अमावास्या, चन्द्र-सूर्य ग्रहण, मकर संक्रान्ति इत्यादि पर्वकाल में तो मेले घाट-घाट पर लगते ही रहते हैं। उनमें विशेष उल्लेखनीय जो कई दिनों तक लगते हैं, वे समुद्र से अमरकण्टक तक क्रमशः यहाँ निर्दिष्ट किये जाते हैं।

१. **शुक्ल तीर्थ**—कार्तिक सुदी पूर्णिमा पर सात दिन रहता हैं। स्टेशन भरौंच है। वहाँ से बस का साधन सुलभ लगभग १८ मील दूर।

२. **गंगनाथ**—वैशाख सुदी ७ सात दिन, यहाँ एक दिन गंगाजी आती हैं स्नान के लिए। यहाँ पहुँचने को रेलवे स्टेशन चान्दोद, डभोई बड़ौदा आदि से आकर दो मील दूर चान्दोद से।

३. **चान्दोद कर्नाली**—चैत्र शुक्ल पूर्णिमा पर तीन दिन।

४. **कुम्भेश्वर**—श्रावण महीना राजपीपला नाँदोद स्टेशन १४ मील चान्दौद ५ मील।

५. **शूलपाणेश्वर**—चैत्री अमावास्या पर तीन दिन नाँदोदसेर ५ मील है।

६. **ओङ्कारेश्वर**—कार्तिक पूर्णिमा, शिवरात्रि, सोमवती, मकर संक्रान्ति, और अन्यपर्वों पर कई दिनों का होता है। स्टेशन-ओङ्कारेश्वर रोड खण्डवा इन्दौर के बीच।

७. **सप्तमात्रा**—नवरात्र पर नौ दिन, ओङ्कारेश्वर से ४ मील।

८ **सिद्धनाथ नेमावर**—सोमवती शिवरात्रि पितृ-अमावास्या भूतों का मेला स्टेशन हरदा मध्य रेलवे से १३ मील।

९. **आत्माराम बाबा**—मैल घाट नेमावर से एक डेढ़ मील।

१०. **आँवरीघाट**—सोमवती संक्रान्ति पर स्टेशन धर्मकुण्डी-सिवनी बानापुरा।

१०. **बाँदराभान**—कार्तिक पूर्णिमा सातदिन, होशंगाबाद से सात मील।

१२. **बगल बाड़ा**—मकर संक्रान्ति १५ दिन तक स्टेशन सोहागपुर।

१३. **केतु धान**—कार्तिक सुदी पूर्णिमा पर तीन दिन स्टेशन सोहागपुर।

१४. **ब्रह्माण**—मकर संक्रान्ति एक मास स्टेशन करेली मध्य रेलवे।

१५. **भेड़ाघाट**—मकर संक्रान्ति कार्तिक पूर्णिमा तीन दिन स्टेशन-भेड़ाघाट।

१६. **तिलवारा**—मकर संक्रान्ति जबलपुर स्टेशन से ५ मील।

१७. **मन्डला मधुपुरी**—माग शीर्ष पूर्णिमा १५ दिन स्टेशन मण्डला।

१८. **अमर कण्टक**—शिवरात्रि पर १५ दिन, सोमवती आदि पर ग्रीष्म काल में भी।

तीर्थ स्थानों का विकास और ह्रास

प्रायः प्रसिद्ध दर्शनीय बड़े-बड़े स्थानों का विकास भली-भाँति हो रहा है सब प्रकार आवास आदि की सुविधायें सन्तों के निवास योग्य आश्रम आदि भी यत्र तत्र नव निर्मित हो रहे हैं। गुजरात में अनेकों मन्दिरों का सेतुओं का भी निर्माण भव्य होने लगा है, इसके साथही प्राचीन विशाल मन्दिर तीर के कटाव होने से ध्वस्त होते जा रहे हैं।

सबसे बड़ा भय नर्मदा घाटी के विकास की योजनाएँ जहाँ विशाल बाँध बाँधने जा रही हैं, वहीं वे प्राकृतिक धावड़ी कुण्ड जैसे अद्‌भुत दर्शनीय रम्य प्रपातों को तो विलुप्त करेंगे ही साथही अनेकों प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों को, घाटों को, मन्दिरों को डुबोने में भी कोई कोर कसर नहीं करते दिखाई देते हैं। धार्मिक सांस्कृतिक तपो भूमि के सहित इन तीर्थों के तीर्थ महादेव वार्णलिंग-नर्मदेश्वर की प्राप्ति के स्त्रोतों की परिसमाप्ति से आस्तिक जगत्‌को अत्यन्त खेद होने लगा है। 'नर्मदा बचाओ' आन्दोलन भी प्रारम्भ हुआ है। अब देखना है शिवजी की क्या लीला होती है ?

नर्मदा मैया का स्वरूप

विन्दुने जब सिन्धु का रूप ले लिया तब रेवा का विराट रूप सहज ही सिद्ध हो गया। धरा पर उसका परिवेश प्रवाह में परिणत हुआ। कण-कण में अलौकिक आभा आई। प्रगट हो गये प्रत्येक अंग अपनी विशालता के परिचायक। मुखरित हुआ चरण से मस्तक तक गौरवमय गुणगान उसका। जिसमें सन्तोंने उसके सुभग अंगों की कल्पना की। वे हैं—

शिखा (१) मस्तक (२) भ्रूमध्य (३) मुख (४) हृदय (५) उदर (६) नाभि (७) कटि (८) जानु (९) पाद सन्धि गुल्फ (१०) और पाद तल (११) ये ग्यारह विशद अंग है। इनका स्थान निम्न प्रकार है। चरण नख से शिखा क्रम यहां अपनाया जा रहा है।

१. **पादतल**—मेखल पर्वत का सिंहासन-**अमर कण्टक**।

२. **गुल्फ** अर्थात् **पाद सन्धि** वह है **मण्डला**।

३. **जानु** अर्थात् **घुटने** वह है **भेड़ाघाट** जहाँ त्रिपुरासुर ने भी घुटने टेके थे।

४. **कटि-नेमावर-सिद्धनाथ** ऋद्धि सिद्धि की प्रचुर मात्रा जहाँ से विस्तृत हुई।

५. **नाभि-ओङ्कारेश्वर**-सृष्टि का उपक्रम जहाँ से हुआ, व्यष्टि-समष्टि का प्रतीक प्रणव का मूर्तिमान् आकार तथा प्रथम ज्योतिर्लिंग का प्रागट्य जहाँ हुआ।

६. **उदर** है **महेश्वर** जो माहिष्मती के नाम से प्रसिद्ध आध्यात्मिक वैभव से भरपूर, ज्वालेश्वर-कालेश्वर से अलंकृत जो पापों को भस्मसात् करने में सक्षम है।

७. **हृदय** है **शूलपाणेश्वर** देवकण्टक अन्ध का सुर का जहाँ उद्धार हुआ।

८. **मुख** वह है **कर्नाली** जहाँ से सोमनाथ आदि अनेकों देव स्थान हैं। दक्षिण प्रयाग भी जिसको कहा जाता है। और नदी का महत्वपूर्ण संगम भी जहाँ है।

९. **भ्रूमध्य भाग-कोरल** जो नर्मदा तट की काशी, जहां आशापुरी कोटि-वाराह आदि प्रसिद्ध क्षेत्र हैं। शिवजी ने स्वयं जहाँ तीर्थों की रक्षा हेतु भगवती की स्थापना करके उसका महत्व बढ़ाया।

१०. **मस्तक** है-**भृगुक्षेत्र--भड़ौच**-जहां ४६ महत्वपूर्ण तीर्थ, आदित्य-रुद्र वसु एवं गण देवता भी हैं। लक्ष्मीजी ने तीर्थ रक्षा हेतु १८ दुर्गा तथा १६ क्षेत्र पात्रों को सौभाग्य सुन्दरी आदि रूप सहित इन सबको स्थापित किया।

११. **शिखा** वह है **हरिका धाम** जहाँ परशुरामजी ने यज्ञ किया और जो रेवासागर संगम के नाम से प्रसिद्ध है।

इस प्रकार नर्मदाजी का विराट विश्वरूप यहाँ प्रगट हो जाता है। जिसमें असंख्यों कंकड़मय शिवशंकर निरन्तर निवास करें जिसके परिसर करोड़ों की क्या अगणित देवताओं की यह प्रतिष्ठा हुई, तीर्थों का जहाँ जन्म हुआ निसन्देह तीर्थ जननी नर्मदा मैया की सबसे बड़ी महिमा कही जायगी।

तीर्थों का प्रादुर्भाव

भव तरने के साधन तीर्थ कहे गये। उनमें गुरु शास्त्र एवं पवित्र देवस्थान सुरसरिताएँ भी सम्मिलित हैं। ये सभी तीर्थ कहलाते हैं। हमें यहां तीर्थ से नर्मदा मैया के पावन तट पर प्रगट हुए तीर्थों से ही सम्बन्ध जोड़ना है। पुराणों में जहां तहां इनका विस्तार से वर्णन हुआ है।

अलौकिक वस्तु प्राप्त करने के लिए अपने इष्ट देव के समक्ष दृढ़ता के साथ उनकी मांग रही, उसके लिए सब प्रकार का संयम नियम व्रत उपवास आदि से लेकर घोर तप विषयों का परित्याग भी उनका उल्लेखनीय रहा। देवताओं ने दानवों ने ऋषियों महर्षियों ने भी तपस्या की। मानव भी पीछे नहीं रहे वे

भी शक्ति सम्पादन के लिए पाप ताप की निवृत्ति के लिए तथा मनोरथों की पूर्ति के लिए तपश्चर्याकिए। वस्तुतः ब्रह्मचर्य आश्रम–वानप्रस्थ एवं संन्यास तप और त्याग के ही प्रतीक हैं। अनेकों व्यक्ति घोर पातक महापातक निवारणार्थ भी शास्त्रीय विधि अपना कर प्रायश्चित्त स्वरूप तप करते रहे। आज भी स्वधर्म पालन के लिए कष्ट सहन करना अभीष्ट सिद्धि हेतु वह भी तप माना जाता है।

'रेवातीरे तपः कुर्यात्' के आधार पर भी इन्द्रियों को, मन को वश में रख-कर साधना करना तप हो गया। जिस देव को विशेषतया देवाधिदेव महादेव को प्रसन्न करने के लिए उनकी आराधना की, वह प्रसन्न हुए वरदान देने प्रगट हुए तब अन्त में भक्त जगत् ने उनसे प्रार्थना की—कि प्रभो! आपने इस भूमि पर मेरा मनोरथ पूर्ण किया भविष्य में इस स्थान पर अन्य कोई व्यक्ति तप करे उन्हें आप सदैव वरदान देने हेतु यहां निवास करें यह पवित्र भूमि आपके नाम से या जिस हेतु आप प्रगटे उसका ज्ञापन हेतु यह तीर्थ उन्हीं उन्हीं नामों से प्रसिद्ध हो जाय। बस भक्तों की भावनानुसार भगवान् वहां अपने तेजोमय दिव्य अंशकला से मूर्तिमान् विग्रहों में प्रतिष्ठित हो गये सदा के लिये। यही है पवित्र तीर्थस्थानों के प्रगट होने का महत्त्वपूर्ण कारण।

इन तीर्थों की भी या भूमिकी भाग्य रेखा भी उसी समय खिच जाती है कितना क्या वैभव कहां तक वह स्थायी होगा प्रायः निर्णय हो जाता है। जहां देवताओं ने तपस्या की उनकी अवधि दीर्घकाल तक सुस्थायी रहती है। ऋषियों मुनियों के तप का प्रभाव भी उस स्थान को चिरस्थायी रखता है। इसी प्रकार असुरों का मानवों का तथा मूक पशुओं के तप का प्रभाव पूर्वापेक्षा न्यून न्यूनतम ही रहता है इसकी चर्चा भी रेवाखण्डों में हुई है।

अनादि काल से अभीष्ट सिद्धि के लिए सभी तप करते आ रहे हैं। नर्मदा तट इसके लिए उपयुक्त इसलिए भी है कि यहां वन अरण्य एकान्त शान्त पवित्र स्थानों की उपकरणों की भी सुविधा परिपूर्ण है। कोलाहल करने वाले जन साधारण का कहीं कहीं संचार भी नहीं हो पाता, ऐसी पवित्र भूमि साधना-नुष्ठान के लिए उपयुक्त होती है।

दूसरी बात देश काल और वस्तु अथवा व्यक्ति विशेष का भी ध्यान साधकों को रखना आवश्यक होता है इसलिए स्थान की महिमा पुराणों में माहात्म्य के रूप में अत्यधिक वर्णन की। साधकों की अभिरुचि बढ़ाने हेतु भी लाखों करोड़ों देवी देवताओं का या तीर्थों का सान्निध्य यहां है यह वर्णन जहां तहां प्रचुर मात्रा में मिलता है। इसमें सन्देह नहीं भक्तों की दृढ़ आस्था वहां सफल होती है। शास्त्र का प्रवृत्ति हेतु अर्थवाद भी अतः सार्थक माना गया।

वर्तमान काल में भी उन स्थानों की महिमा आस्तिक जगत् के लिए परम-लाभकारी सिध्द हो रही है। इसीलिए तीर्थ यात्राएँ अत्यधिक मात्रा में जन साधारण करते देखे जा रहे हैं।

नर्मदा परिक्रमा का उद्देश्य और फल

आधुनिक व्यक्ति भी देशदर्शन या प्राकृतिक सौन्दर्य की अनुपम छटा निहारने हेतु नर्मदा का पर्यटन कर रहा है उसकी आकांक्षा की पूर्ति भी होती है। किन्तु जो श्रद्धालु जगत् जगज्जननी रेवा मैया अथवा "जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ" इससे प्रभावित हुए देवाधिदेव महादेव के भक्त हैं उनके कण्ठ में हृदय में 'नर्मदे हर' यह मंगलमय ध्वनि अपना घर कर लेती है। जिससे वे नर्मदे हर की रट लगाकर अपना नाता सदाशिव या रेवा मैय्या से जोड़ लेते हैं। रेवा मैय्या शिव की प्यारी बेटी हैं। पिता और पुत्री का नाता अत्यन्त ममता मय प्यारमय है। परिक्रमा में दोनों की कृपा प्राप्त होती ही है।

विचार करें—अन्य देवी देवता का विग्रह अत्यन्त स्वल्पसा किसी मूर्ति विशेष में या मन्दिर में ही प्रगट होता है। पर नर्मदा मैय्या सहस्रों कोश तक अपनी भुजाएँ फैलाये भक्तों पर अनुग्रह करने हेतु नख से शिख पर्यन्त अपना दिव्य कलेवर भी फैलाए रखती है। भक्त जगत् पग पग पर उनकी बांकी झांकी ही नहीं निहारता, किन्तु परिक्रमा के व्याज से उनका चिरकालिक अमृतमय पय भी पान करता है, अवगाहन करता है अनुपम छटा देखकर किलोलें करती हुई मैया के साथ आनन्द में भरकर स्वयं किलोलें करता रहता है।

स्पष्ट है—पिता पुत्री-नर्मदा मैय्या का भगवान् सदा शिव का अनुग्रह प्राप्त कर लेना नर्मदा प्रदक्षिणा का परम उद्देश्य है। और उससे लौकिक या अलौकिक कौन सी वस्तु या कौन सा सुख उसे सुलभ नहीं हो जाता? जब नर्मदा यह नाम नर्म अर्थात् क्रीड़ा सुख सब प्रकार जो दे वह नर्म-दा। तभी तो प्रदक्षिणावासी गाया करते हैं—'मैया गोद खिलावत है, मैया दूध पिलावत है, नमो नर्मदा माइ रेवा, पार्वती बल्लभ सदा शिवा, भजो रे वाहि रेवा भजो मैयाहि मैया' इत्यादि।

नर्मदा परिक्रमा से हुई उपलब्धियाँ

नर्मदा जी की परिक्रमा में प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में गृही साधक मनौती करने वाले सकाम जन साधारण तथा साधु सन्त भी अल्प मात्रा में आते जाते रहते हैं। आस्तिक जनता से गीता के अनुसार—"चतुर्विधाभजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥ चार प्रकार के पुण्यशाली जन हे अर्जुन! मेरा भजन करते हैं एक तो हैं आर्त-दुखी प्राणी दूसरे

जिज्ञासु तीसरे–अर्थार्थी और चौथे ज्ञानी भी हैं। इनमें आर्त भक्त आधिव्याधि ग्रस्त आध्यात्मिक ताप से परितप्त दो प्रकार के हैं—शारीरिक व्याधियों से पीडित तथा मानसिक रोगों से सदैव व्याकुल रहने वाले। तथा अर्थ की कामना का मतलब है--धन–पुत्र–स्त्री–पद नौकरी आदि की लगने की बात संसारी सभी प्रकार के भोग पदार्थों की प्राप्ति से व्यक्ति अर्थार्थी हुआ देवी देवता या अपने इष्ट की आराधना करता है। जिज्ञासु वह हैं जो आत्मतत्व व परमात्म तत्व के वास्तविक स्वरूप को जानने की तीव्र इच्छा से गुरुजनों के पास आते हैं या इष्टदेव की प्राप्ति उनके दर्शनादि की उत्कट इच्छा रखकर उनका भजन सेवन करते हैं। ज्ञानी उन्हें अपने आत्मस्वरूप में ही पालने से उनका निरन्तर दर्शन मिलन स्मरणादि से अभेद भाव रखकर भी तत्परायण हुए रहते भक्त होते हैं।

जैसे भगवान् के भक्त इस प्रकार चारों उनके शरणापन्न होते हैं उसी प्रकार नर्मदा भक्तों की भी श्रेणियाँ समझें। अधिकांश आर्त प्राणी संसार में सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उससे कुछ ही कम या अधिक अर्थार्थी सांसारिक वस्तुओं को पाने की इच्छा रखने वाले भी यहाँ हैं। इन दोनों से कम जिज्ञासु और सबसे कम ज्ञानी-तत्वदर्शी भक्त सन्त होंगे।

अनेकों उदाहरण इन सबके हमें मिले हैं। मनौती अर्थात् मान्यता से परिक्रमा करने वाले बहुत पाये नर्मदा भक्त।

आर्त और अर्थार्थी सकाम भक्तों की भरमार

नर्मदाजी की प्रदक्षिणा साधु वृत्ति से त्याग तप की पुष्टि करते हुए निरभिमान होकर सदावर्त-अन्न क्षेत्रों से प्राप्त होने वाला सीधा सामान कच्चा पका अन्न प्रतिदिन ग्रहण करना होता है। उससे निर्वाह मात्र करके नर्मदा जी की आराधना स्नान–जलपान–आरती–पूजा–ध्यान–चिन्तन भजन कीर्तन नाम स्मरण प्रतिदिन नियम से करते हुए आठ दस मील रोज चलना यही नियम परिक्रमा में रखना होता है। मानव सदैव अपने इष्ट के बल पर बड़े-बड़े कार्य साधते हुए देखे गये। जिन किन्हीं का असाध्य रोग चिकित्सा से दूर नहीं हुआ वे नर्मदा जी को शरण में आकर निहाल हुए हैं।

अन्धों को आँखें पुत्रहीन को पुत्र की प्राप्ति तथा अन्य कोई कामना की पूर्ति नर्मदा मैया की कृपा से सर्वसाधारण को हुई। एक दो उदाहरण हम यहाँ दे रहे हैं। एक बार सीहौर जिले का (भैरोंदा का) वैश्य व्यापारी रामचन्द्र सेठ हमें मिला उसने अपना अनुभव सही सही व्यक्त किया। धन सम्पत्ति स्त्री मकान दुकान सब कुछ सामान्यतया बने रहने पर भी सन्तानहीन था। उसने मान्यता की कि हे नर्मदा माई यदि मुझे सन्तति प्राप्त हो जाय तो स्त्री पुत्र

सहित मैं आपकी एक प्रदक्षिणा करूँगा। कालान्तर में क्रमशः एक नहीं दो पुत्र प्राप्त हो गये। चलने फिरने लग गये तब चार पाँच वर्ष के पीछे स्त्री और पुत्रों के सहित प्रदक्षिणा प्रारम्भ की साथ में बच्चों के लिए एक घोड़ा सवारी हेतु रखा।

अद्‌भुत चमत्कार

बड़ा बच्चा तो लगाम पकड़कर घोड़े पर आसानी से चढ़ता बैठकर किसी का सहारा न लेकर चलता रहता। किन्तु छोटे बच्चे को घोड़े पर बैठाने पर भी उसको पकड़े रखना आवश्यक रहता। पैदल चलते-चलते कभी उसकी माता या कभी पिता सँभाल कर घोड़े के साथ-साथ चलते। इससे चलने में असुविधा ही प्रायः रहती रही। एक दिन पिता ने खीझकर कहा तू अपनी माँ को अर्थात् नर्मदा मैया को क्यों नहीं बुला लेता जो तुझे सदा संभाल कर चले एक दिन बच्चे ने कहा पिताजी छोड़ दो हमारी माँ आ गई वह मुझे सँभालने लग गई। पिता भाव विह्वल होकर बड़े कुतूहल से बच्चे से पूछता हैं तेरी माँ अर्थात् नर्मदा मैया कैसी है क्या वह कमीज पहने है। बच्चे ने तुरन्त कहा माँ कहीं कमीज पहनती है? जैसी यह माँ वैसी ही नर्मदा माई मेरी आ गई। पिता ने बच्चे की संभाल करना छोड़ ही दिया था दोनों माता पिता बच्चे की बात सुनकर आनन्द मग्न हुए यात्रा करते रहे। भले ही उन्हें नर्मदा माँ का साक्षात्कार न हुआ हो पर बच्चे को सहारा देनेवाली नर्मदा मैया तब वहाँ रही इसमें सन्देह नहीं।

(२)

दूसरा एक किसान नरसिंहपुर जिले का प्रदक्षिणा पथ में आया उससे हमने पूछा क्यों भाई तुमने प्रदक्षिणा किस लिए उठाई, उसने कहा महाराजजी मेरा एक छोटा लड़का चार पाँच साल का था उसको चेचक निकली देवी का प्रकोप जिसे माना जाता है कहीं उसे छोटी माता या बड़ी माता भी कहते हैं शरीर में सर्वांग छोटी छोटी फुड़िया निकलने लगती हैं वही मेरे बच्चे को निकली। भयंकर पीड़ा हुई कुछ दिनों में वह रोग निकल तो गया किन्तु बच्चा दृष्टिहीन हो गया। उसे अन्धा जानकर मैं अत्यन्त विकल हुआ। अनेक उपाय उपचार किए किन्तु आँखें पुनः नहीं मिलीं। एक दिन मैं दुःखी होकर रातभर नर्मदा मैया की पुकार करता रहा माँ इस बच्चे को संसार से उठा लेती देवी भगवती तो ही अच्छा था इस अन्धे का जीवन कैसे पार लगेगा। माँ तुझसे मेरी यही गुहार है कि तू इसे आँखें दे। दृष्टि यदि इसे आ जाय तो मैं आपकी एक प्रदक्षिणा सहर्ष करूँगा। यह सब प्रार्थना का परिणाम हुआ प्रातः काल उठकर बच्चे की जब साज संभाल की तो देखा बच्चे की आँखें पूर्ववत् दृष्टि सम्पन्न हो

गई मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा और अपनी उस मनौती के अनुसार मैं नर्मदा मैया की परिक्रमा में निकल पड़ा। (३)

एक बार कश्मीर से एक महात्मा नर्मदा स्नान के लिए आए। उन्हें आदेश हुआ स्वप्न में या तन्द्रावस्था में-कि तुम मेरी प्रदक्षिणा करो। महात्मा ने कहा—मैं वृद्ध हूँ कैसे तुम्हारी प्रदक्षिणा नंगे पैर से १७०० मील की कर सकूँगा। तब फिर कहा गया चिन्ता न करो तुम सब कर लोगे। महात्मा को श्रद्धा तो थी ही उसने संकल्प लिया परिक्रमा प्रारम्भ हुई।

अनेकों विलक्षण प्रसंग नर्मदा मैया के तब उसने देखे। जहाँ कहीं भिक्षा भोजनादि की सम्भावना नहीं थी, वहाँ गाँव न रहने पर गाँव दिखाई दिया। झोपड़ी दिखी वृद्धा माँ ने भिक्षा (बना बनाया) भोजन कराया। एकदिन मार्ग में चलते-चलते रास्ता रोककर एक भैंस बार बार सामने खड़ी हो जाती। विवश होकर मैंने उसका दूध दुहा और पिया तब वह हटी यह सब महात्मा ने अपने अनुभव सन्तों के समक्ष व्यक्त किए। वृद्ध महात्मा की वाणी में कोई बनावटी बात नहीं पाई। इस प्रकार के प्रसंग अन्य महात्माओं के भी देखे सुने गये।

(४)

किसी समय प्रदक्षिणा करते हुए एक वृद्ध असक्त साधक को ज्वरादि की पीड़ा हुई। चिकित्सार्थ उसे मार्ग में रुकना पड़ा पीछे परिक्रमा में वह आरूढ़ रहा। और भी कुछ बीमारी उसे हुई थी उसकी भी चिकित्सा कराई। व्याधि पूर्णतया ठीक न होने पर भी परिक्रमा मेरी खण्डित न हो जाये इससे शीघ्र ही अस्वस्थ रहते हुए भी चल पड़ा परिक्रमा करने। उसका पथरी का इलाज हुआ था अण्डकोष में पीड़ा होती थी अचिकित्स्या सी बीमारी सुना वह थी ऐसी स्थिति में अस्पताल से निकल भागा और अपनी परिक्रमा रूप साधना में पुनः लग गया। अचानक एक स्थान पर पके हुए बैर की गुठली की तरह दोनों अण्डकोष बाहर निकल गये। उसे सहसा न कोई पीड़ा और न कोई घाव ही वहाँ रहा।

(५) अनुसुइया माता के स्थान पर वर्तमान महन्त ब्रह्मचारी जी ने भी अपना निजी अनुभव के आधार पर मुझे बतलाया अनुसूयानन्दन दत्त भगवान के एक बार दर्शन हुए। 'श्री पाद्‌राजं शरणं प्रपद्ये' दिव्य शिला पर अंकित हुए नाम से अपना परिचय देकर उन्होंने अनुग्रह किया और आदेश भी दिया कि यहाँ से जाना नहीं। जबकि वहाँ से वह पूर्व अधिकारी गुरुजनों का व्यवहार उनको पसन्द नहीं था। साधु की सेवा की कमी देखकर वह खिन्न होकर जाने लगे थे उन्हे यह भी आत्रेय भगवान् ने कहा थोड़े ही समय में इसकी मृत्यु हो जायगी और हुआ भी वैसा तभी वह चले जाने के बाद भी वहाँ आए। समस्त

वातावरण भगवत्कृपा से उनके अनुकूल हो गया। यह सब उन्होंने एकान्त में हमें सुनाया।

निजानुभूति

पच्चीस वर्ष पूर्व नर्मदाजी परिक्रमा का संकल्प लेकर ब्रह्मचारी शिवराम जो अभी शिवानन्द या शिवचैतन्य के नाम से वृन्दावन में नर्मदा कुटी बनाकर निवास करते हैं। वह प्रथम शीलकण्ठ मढी के समीप नर्मदाजी के उत्तर तट पर रहा करते थे उनको साथ लेकर प्रदक्षिणा हमने प्रारम्भ की थी प्रतिदिन नर्मदाजी का स्नान अवश्य ही होना चाहिए नियम रखा था। अनेकों कठिनाइयों के आने पर भी नियम का निर्वाह होता रहा।

शूलपाण की घोर झाड़ी में भिल्ल मामाओं की लूटने की बात भी अत्यन्त रोचक रही दोनों व्यक्ति सदावर्त के अन्न या भिक्षा पर निर्भर रहते हुए अपूर्व आनन्द प्राप्त किए। दक्षिण तट दस दिन में पार करके उत्तर तट पर हापेश्वर में आकर ठहरे। किनारे-किनारे चलने का भी हम लोगों का आग्रह रहा। घोर झाड़ी के मध्य वह भव्य स्थान है एक दिन विश्राम करके वहाँ से चलने लगे तब वहाँ सन्त सेवी महात्मा मोहनदासजी ने बड़े आग्रह से एक दो दिन के निर्वाह लायक आटा सोधा सामान साथ में रखने को हम लोग बाध्य हो गये जबकि कभी कुछ सामग्री अन्नादि बाँधकर नहीं चलते थे।

उनका आदेश रहा हथनी संगम के पूर्व इसका उपयोग कर लेना आगे फिर मामा लोग तंग करेंगे छीन-छान लेंगे। यह बात मानकर हम दोनों हथनी संगम कुछ ही दूर प्रातः विश्राम करने लगे। एक नीम छाया में किनारे जो कुछ ही दूर टेकरी पर था वही दैनिक पूजा पाठ करके टिक्कड़ सेकने लगे सुन्दर सभी आटा वहाँ समाप्त कर दिए प्रसाद पाकर विश्राम करने लगे। मध्याह्न का समय था धूप अत्यधिक तेज थी। ग्रीष्म काल होने से और आज का गन्तव्य स्थान समीप ही है समझकर पड़े थे।

उस समय विचार भिल्ल मामाओं का खूब चला। सामने दक्षिण तट पर हमलोग लुट चुके थे। अब फिर वही बारी आने वाली है विचार चल रहा था आते समय भरौंच में महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीकृष्णानन्द जी महाराज ने हमारी कृशकाय देखकर ब्रह्मचारी को कुछ रुपये दिए थे मार्ग में कुछ घृतादि का उपयोग कर लेना कहकहकर उन्होंने बड़े आग्रह से वह दिए थे जबकि हम दोनों पास में कभी कोई पैसा टका नहीं रखते थे, तथापि पूज्य स्वामीजी का आग्रह नहीं टाला जा सका। वह थोड़ी सी निधि थी इससे चिन्ता यह हुई अब मामा लोग वह सब छोड़ेंगे नहीं जो अभी कुछ वस्त्र तन ढकने को मिले हैं वे तो

वह लेंगे ही इससे शरीर में कुछ तितिक्षा तो रखनी ही होती है अतः सोच रहे थे।

ब्रह्मचारी शिवराम नित्य रामायण का पाठ करते थे उनके पास अतः रामायण का गुटका था। प्रथम लूट में वह भी मामाओं ने यद्यपि ले लिया था फिर जब उनसे कहा मामा यह हमारी पूजा पाठ की पुस्तक नवाह्न रामायण है पाठ मुझे अभी इससे करना है। तू क्या करेगा मुझे दे-दे तब उसने भली भांति देखभाल कर लौटा दी थी। चिन्ता का विषय था यह कि हथनी संगम से आगे किनारे किनारे जाय अथवा ऊपर के मार्ग से मामाओं से बचकर निकल जायँ किन्तु ऊपर के मार्ग से जाने पर एक दो दिन नर्मदाजी स्नान दर्शनादि छूट जायगा चिन्ता यही थी कैसा किया जाय। समाधान रामशाला का प्रश्न से किया जाय तुरन्त ही सींक रखकर प्रश्न का अर्थ निकाला तब उसमें यही आया 'हुइ है वही जो राम रचिराखा। को कर तर्क बढ़ावहि शाखा॥' जिसका अर्थ भगवान् के भरोसे पर रहो जो होना है वही होगा। इस सन्देहात्मक स्थिति से अब और भी मन में विचार उठे।

उसी समय एक वृद्धा माई अपना रास्ता छोड़कर हम दोनों के पास आकर बैठ गई और कहने लगी–क्यों यहाँ पड़े हो आगे जाओ चलो यहाँ से। यह सुनकर उसके स्वरों में एक आकर्षण भी था और प्यार भी झलक। हम दोनों ने कहा माइ अभी धूप बहुत है कुछ समय पीछे जायँगे थोड़ी दूर ही तो आज जाना है। यह सुनकर बह चुप तो हुई पर मुस्कराते हुए अपना हाथ दिखलाने लगी अच्छा बतलाओ मैं कब मरूँगी बुढिया के मुख में दाँत नहीं थे सहन ही मुस्कराहट दिखलाई दी।

हमने मन में सोचा और धीमे स्वर से कहा तू तो नही मरने वाली नर्मदा प्रतीत होती है। ब्रह्मचारी ने कहा-माई तूँ कहाँ रहती है उसने कहा–भिताड़ा, तेरे कितने लड़के बच्चे हैं ? बुढिया बोली कोई नही।

उसकी भाषा वहाँ के भिल्लों जैसी नहीं थी सुस्पष्ट बोलती थी वह। तब वह फिर बोली–'अच्छा जाओ अब यहाँ से, और देखो तुम यहाँ से हथनी संगम जाना पर धर्मशाला मन्दिर में नहीं ठहरना वहाँ भैया लोग तुम्हें तंग करेंगे। तुम वहाँ टेकरियों पर बनी बनिये की दुकान पर जाके ठहरना वह सेवा भी तुम्हारी करेगा घी खिलायेगा। तुम प्रातःकाल सबेरे शीघ्र ही वहाँ स्नान कर लेना और वहाँ से चलना ऊपर के मार्ग से वहाँ पहले अमुक ग्राम फिर अमुक आयगा तब सायं 'डही' नाम के ग्राम में जाके ठहर जाना और रात्रि व्यतीतकर प्रातःकाल 'धर्मराय' में जाके कूद पड़ना वहाँ नर्मदा स्नान तुम्हारा हो जायगा।

यह पूरा पूरा यात्रा समाधान बुढ़िया के मुख से सुनकर हमलोग अत्यन्त प्रसन्न भी हुए और साथही चकित भी थे कि इसने हमारे मन की सभी बातें बतलाई जिससे नर्मदा स्नानादि की एवं मामाओं से बचने की बात सुस्पष्ट हो गई।

बुढिया ने फिर कहा—'अच्छा अब चलो' यहाँ मत पड़े रहो। माँ की बात अब हम लोग क्यों टालें ? तुरन्त ही उठ खड़े हुए और साथ ही चलने की बात सोचकर चल भी पड़े। बुढिया एक हाथ में एक घास काटने का दराता साथ लिये वह साथ-साथ चलने लगी। हम दोनों विचारने लगे यह कहती है हम भिताड़ा गाँव में रहते हैं जो सम्भव है पीछे रहा पर यह हमलोगों के साथ आगे ही जा रही है। बुढिया माँ कुछ दूर साथ चली फिर बोली–अच्छा तुम्हारे पैर धूप से सन्तप्त शिलाओं पर तपते होंगे तुम किनारे-किनारे कुछ ठण्डी बालू में चलो ताप से वच जाओगे।

हम दोनों उसे छोड़कर किनारे चलने को उद्यत ही हुए थे दो चार कदम ही चले होंगे तब क्या देखते हैं–बुढ़ियाँ एक फलाँग आगे खड़ी होकर पुकार कर कह रही देखो यह है हथनी संगम का रास्ता।'

यह दृश्य देख सुनकर दोनों भौंचक्के से हुए अरे ! यह तो पीछे थी इतनी जल्दी आगे कैसे पहुँच गई ! बस यह बुढिया माई कोई भिल्लनी नहीं साक्षात् नर्मदा माई ही मार्ग दर्शन कराकर चली गई।

उस समय हृदय और आनन्द विभोर भी था, साथ ही पछता रहा था अरे ! माई को पहचान न पाए. उसके चरण नहीं पकड़ सके। अस्तु।

हम दोनों चलते-चलते हथनी संगम पहुँच गये। सचमुच जिसे हमलोग पास समझ रहे थे वह दूर ही निकला यदि माँ के साथ उस समय न चलते तब सांझ का अँधेरा हो जाना था। निर्देशानुसार बनिये की दूकान पर जा पहूँचे झाड़ी में विरले ही ठिकाने ऐसे ठहरने को मिलते हैं।

उसने प्रेमभरे स्वरों से आने का स्वागत किया। भोजन बनाने का आग्रह भी। यद्यपि परिक्रमा में प्रायः एक ही बार भोजन बनाते थे और पाते भी एक ही बार तथापि झाड़ी में यह अपवाद स्वरूप ही रहा; जहाँ कि अन्न मुट्ठी भर मिलना दुर्लभ प्राय रहता है।

बनिया बोला–क्या बनावगे ? जो इच्छा हो बनाओ खाओ सामान ले लो।

नर्मदा तट पर परिक्रमा वासियों की सेवा प्रायः सबलोग करते हैं व्यापारी वर्ग भी सदाव्रतों के रूप में ,कहीं-कहीं अन्नदानादि से सेवा करते हैं। उसी आशय से वह सामग्री देना चाहा। हमारे शिवरामजी ने खिचड़ी बनाने की

इच्छा व्यक्त कर दी। तुरन्त ही उसने दाल चावल घृत मसाला आदि दिया तैयार हो जाने पर फिर उसने कहा घी और ले लो। तब पुनरावृत्ति घी की विशेष की। प्रातः उसने भी ग्रामान्तर जाने की बात कहकर नर्मदा स्नान के लिए लालटैन ले जाकर हम सबको सूर्योदय के पूर्व ही स्नान करवा दिया स्नान करके चलते समय एक महात्मा ने पुकार कर हम दोनों को बुला लिया वह वहीं मन्दिर में था। उसने कहा इतनी शीघ्रता क्यों ? कुछ प्रसाद ग्रहण करके ही जाँय तुरन्त सुन्दर हलुआ बनाकर यथेष्ट खिलाया। प्रसाद पाकर बुढिया माँ के निर्देशानुसार ग्रामों में विश्राम करते हुए "डही" ग्राम में पहुँच गये। वहाँ भी यथेष्ट स्वागत हुआ प्रातः दशमील चलकर माँ के निर्देशानुसार धर्म राय नामक स्थान में आकर स्नानादि नित्य विधि की।

इस प्रकार नर्मदा मैया का 'परोक्ष प्रिया हि देवाः' के अनुसार परोक्ष-रूपेण दर्शन संभाषणादि हो गया। जिसने हम लोगों के संकल्पानुसार समग्र यात्रा भी समय पर पूरी करा दी। अनेकों वार नर्मदा मैया का उसमें परिचय मिला।

अनेक आस्तिक भक्त आज भी आकृष्ट हुए नर्मदा तीर पर आकर भ्रमण करते हैं प्रदक्षिणा भी। जिसमें यह भी एक उद्देश्य रहता है साधना के योग्य कौन सा स्थल कहाँ है। जल, जमीन, जंगल, जिज्ञासु चार जकार प्रायः साधुको अभीष्ट होते हैं। प्रदक्षिणा में इसका भी चयन हो जाता है तब।

ग्रंथ विस्तार के भय से अभी विशेष सामग्री यहाँ नहीं दे रहे हैं। वैसे पुराणों में नर्मदा साहित्य प्रचुर मात्रा में विद्यमान है ही। आधुनिक आचार्यों की विद्वान् भावुक कवियों की लेखनी भी चलती रही और आगे भी चलेगी। 'नर्मदा लहरी' 'रेवा लहरी' नर्मदा जी के शतनाम स्तोत्र आदि सभी ग्राह्य सुमधर यहाँ हैं। जिज्ञासु उन सबको पढ़कर कृतकृत्य हों कि बहुना।

कतिपय स्तोत्रं का कुछ अंश यहाँ पाठकों की रुचि उत्पन्न करने हेतु दिया जा रहा है जो रेवाखण्ड के अमरकण्टक तथा भृगुक्षेत्र (भरोंच) आदि में स्थित देवी देवताओं से सम्बन्ध रखते हैं उनका आस्वादन करें।

सरल संस्कृत स्तोत्र

बाण द्वारा की गई स्तुति–ज्वालेश्वर के प्रसंग में है। अमर कण्टक के यह तीर्थ स्थित है। वाणासुर के स्वर्णमय पुरों को भस्मसात् करने के अवसर पर उसने अपने त्राणलिंग की रक्षा हेतु भी बड़ी सुन्दर शंकरकी स्तुति की थी उसका कुछ अंश प्रस्तुत है। (रे. खं. २८ अ०)

बाणकृतं-शिवस्तुति

शिव ! शंकर ! सर्वहराय नमो भवभीत-भयार्ति-हराय नमः ।
कुसुमायुध-देह विनाशकर ! प्रमदा प्रिय कामक ! देव नमः ॥१॥
जय पार्वतीश ! परमार्थ सार ! जय विरचित-भीम भुजंग हार ।
जय निर्मल भस्म विलिप्त गात्र ! जय मन्त्रमूल-जगदेक पात्र ॥२॥
जय विषधर-कपिल जटा-कलाप ! जय भैरव-विधृत-पिनाक चाप ।
जय विषमनयन ! परिमुक्तसंग ! जय शंकरधृत-गंगा तरंग ॥३॥
जय भीमरूप ! खट्वाङ्ग हस्त ! शशि शेखर ! जय जगतां प्रशस्त ।
जय सुरवरेश ! सुरलोकसार ! जय सर्व ! सकल-निर्दग्ध सार ॥४॥
जय कीर्तनीय जगतां पवित्र ! जय जय वृषांक ! बहुविध चरित्र ।
जय विरचित-नर कंकाल-माल ! अद्यअसुर-देहकङ्काल काल ॥५॥
जय नीलकण्ठा ! वर वृषभ-गमन ! जय सकल लोक-दुरितानुशमन ।
जय सिद्ध-सुरासुर-विनतचरण ! जय रुद्र ! रौद्र-भवजलधि-तरण ॥६॥
जय गिरिश ! सुरेश्वर-माननीय ! जय सूक्ष्मरूप ! सश्चिन्तनीय ।
जय दग्ध-त्रिपुर ! हे विश्व सत्त्व ! जय सकलशास्त्र-परमार्थतत्त्व ॥७॥
जय दुखबोध-संसारतार ! कलि-कलुष-महार्णव-घोरतार !
जय सुरासुरादि गणेश नमो हय-वानर-सिंह-गजेन्द्र-मुख ॥८॥
अति ह्रस्व स्थूल-सुदीर्घतम ! उपलब्धिर्न शक्यते ह्यमरैः ।
प्रणतोऽस्मि निरञ्जन ते चरणौ जय साम्ब सुलोचन-कान्तिहर ॥९॥

व्यासकृत-भगवती-नर्मदा की स्तुति

जय भगवति ! देवि ! नमो वरदे ! जय पाप विनाशिनि ! बहुफलदे ।
जय शुम्भ निशुम्भ कपालधरे ! प्रणमामि तु देव-नरार्ति हरे ॥१॥
जय चन्द्र-दिवाकर-नेत्र धरे ! जय पावक-भूषित-वक्त्रवरे ।
जय भैरव देह-निलीन परे ! जय अन्धक रक्त विशेष करे ॥२॥
जय महिष विमर्दिनि ! शूलकरे ! जय लोक समस्तक पाप हरे !
जय देवि ! पितामह-रामनते ! जय भास्कर-शक्रशिरोऽवनते ॥३॥
जय षण्मुख-सायुध-ईशनुते ! जय सागर गामिनि शम्भुनते ।
जय दुःख दरिद्र विनाश करे ! जय पुत्र-कलत्र-विबृद्धि करे ॥४॥
जय देवि समस्त-शरीर धरे ! जय नाक विदर्शिनि ! दुःख हरे ।
जय व्याध विनाशिनि मोक्षकरे ! जय वाञ्छित दायिनि सिद्धवरे ॥५॥
एतद् व्यासकृतं स्तोत्रं यः पठेच्छिव सन्निधौ ।
गृहे वा शुद्धभावेन काम क्रोध-विवर्जितः ॥६॥

तस्य व्यासो भवेत्प्रीतः, प्रीतश्च वृषवाहनः ।
प्रीता स्यान्-नर्मदा देवी सर्वपापक्षयङ्करी ॥७॥

भृगुमहर्षि कृत-शिवस्तोत्रम् [रेवा खं. १८१ अ.]

प्रणिपत्य भूतनाथं भवोद्भवं भूतिदं भयातीतम् ।
भवभीतो भुवनपते ! विज्ञप्तं किञ्चिदिच्छामि ॥१॥
त्वद्गुण-निकरान् वक्तं शक्तिर्मानुषस्यास्य ।
वासुकि रपि न तावद् वक्तुवदन सहस्रं भवेद्यस्य ॥२॥
भक्त्या तथापि शंकर ! शशिधर ! करजाल-धवलिताशेष ।
स्तुति-मुखरस्य महेश्वर ! प्रसीद तव चरणनिरतस्य ॥३॥
सत्त्वं रजस्तमस्त्वं स्थित्युत्पत्ति-विनाशनं देव !
भवभीतो भुवनपते ! भुवनेश ! शरण-निरतस्य ॥४॥
यम नियम-यज्ञदानं वेदाभ्यसश्च धारणा योगः ।
त्वद् भक्तेः सर्वमिव नार्हन्ति वै कला सहस्रांशम् ॥५॥
उत्कृष्ट-रस-रसायन-खड्गाञ्जन-विवर-पादुका सिद्धिः ।
चिह्नं हि तव नतानां दृश्यत इह जन्मनि प्रगटम् ॥६॥
शाढ्येन यदि प्रणमति वितरसि तस्यापि भूतिमिच्छया देव ।
भवति भवच्छेदकरी भक्तिर्मोक्षाय निर्मिता नाथ ! ॥७॥
तृष्णां हरस्व शीघ्रं लक्ष्मी दद हृदयवासिनीं नित्यम् ।
छिन्दि महा मोह पाशं मामुत्तारय भवाच्च देवेश ॥८॥
करुणाभ्युदयं नाम स्तोत्रमिदं सर्व सिद्धिदं दिव्यम् ।
यः पठति भृगुं स्मरति च शिवलोकमसौ प्रयाति देहान्ते ॥९॥

चामुण्डा-कनकेश्वरी स्तोत्र के कुछ मन्त्र (रेवा. अ. १८६)

या धत्ते विश्वमखिलं निजांशेन महोज्वला ।
कनक प्रसवे लीना पातु मां कनकेश्वरी ॥१॥
हिमाद्रि संभवा देवी दया-दर्शित-विग्रहा ।
शिवप्रिया शिवे सक्ता पातु मां कनकेश्वरी ॥२॥
अनादि जगदादिर्या रत्नगर्भावसुप्रिया ।
रथाङ्ग पाणिना पद्मा पातु मां कनकेश्वरी ॥३॥
सावित्री या च गायत्री मृडानी वागथेन्दिरा ।
स्मर्तृणां या सुखं दत्ते पातु मां कनकेश्वरी ॥४॥

शूलपाण की झाड़ी में सिद्ध-सन्तों का आवास

नर्मदा के दक्षिण उत्तर तट पर प्रसिद्ध शूलपाणेश्वर की झाड़ी लगभग ८०-९० मील की सीमा में संस्थित है। कोल भील तीर कमठा रखने वाले लंगोटियों का वहाँ साम्राज्य है उन्हें मामा कहने पर प्रसन्नता होती है। मामा होता है माता का भाई, यहाँ माता है साक्षात् नर्मदा मैया तब उनके ये भैय्या कैसे हो यह भी एक रहस्यमय प्रकरण कहा जायगा।

निर्जन कानन में बसने वाली जंगली जातियों में वहाँ तीन प्रकार के भील पाये जाते हैं। एक हैं नायका दूसरे तड़वी और तीसरे भिलाला। भिलाला का तो अर्थ है भीलों में आल्हा अर्थात् उत्तम वे हैं भिलाला उन्हीं के जाति के राजा आज भी ओङ्कार मान्धाता में वहाँ के अधिकारी बने बैठे हैं। वास्तव में ये लोग सभ्य नागरिक कहे जायँगे। दूसरे जो तड़वी हैं वे मध्यम श्रेणी के खेती तथा छोटा मोटा व्यापार धन्धा छोटी-सी दूकान खोलकर करते रहते हैं। रहते वे उन्हीं लँगोटी लगाने वालों के जैसे ही अर्धनंग। इनमें निम्न श्रेणी के भील नायका कहे जाते हैं जो न तो कोई धन्धा और न श्रम करके जीविका चलाना चाहते बस माई के भरोसे भाग्य से उनके जो नर्मदा माई के भक्त पहुँचते हैं उनकी उपयोगी सभी सामग्री छीन कर अपना गुजारा कर लेते हैं अथवा प्राणियों का घात करके भी पेट भर लेते हैं।

इनके ही विषय में कुछ महत्वपूर्ण संकेत मिलते हैं जिससे पता लगता है कि सचमुच ये माई के भाई हैं। जब कोई प्रदक्षिणा बासी अकेला तो प्रायः साधु को छोड़ कर कोई जाता नहीं दो चार दस की टोली भी हो तो वह दो चार ही तीर कमठा लेकर सामना करते हैं कमठे पर तीर लगाकर छाती के सामने सीधा कर देते हैं भयभीत करने के लिए। फिर वह कहते हैं मुक् मुक् अर्थात् मुञ्च-मुञ्च सब छोड़ो जो लाद कर चले हो। उस समय उनकी बात मानने में ही कल्याण है कितनों ने सामना करने पर लड़ने झगड़ने पर प्राण की बाजी भी लगा दी। इसीलिए प्रथम जब रजवाड़े थे तब वहाँ के राज पुरुष (सिपाही) बन्दूक लेकर परिक्रमा वासियों को सुरक्षित झाड़ी के बाहर पहुँचा देते थे। अब यह सब नहीं रहा।

कभी कोई साधु जटाजूट में यदि सिक्के छिपाकर रखता है तो उसे वे प्रथम खुलवाते और अपना अभीष्ट सिद्ध कर लेते हैं। दियासलाई भी वे ले लेते हैं। तब अग्नि को किसी गोवरी कण्डे-उपले में चेता करके साथ लिए चलते

फिरते हैं कोई कोई चतुर साधु उसमें भी कुछ सिक्के छिपा लेते हैं तब उन्हें भान हो जाता है और वे कहते हैं इसको पटक तब उन्हें उसमें कुछ प्राप्ति हो जाती है।

यह सब तो साधारण सी बातें हैं। विलक्षण बात तो यह उनके झोपड़ों में भूख लगने पर यदि कोई प्रदक्षिणावासी चला जाता है तो मुट्ठी भर पीठू पिसान आटा अवश्य दे देते हैं। जवार मक्का ही प्रायः वहाँ होती है उसे वे देते हैं। लूटने का यह भी एक तात्पर्य है कि प्रदक्षिणा वासी सर्वथा अकिंचन होकर मैया के भरोसे चले। जो मैय्या सदैव आतिथ्य अभूतपूर्व गति से सदैव करती कराती है फिर बोझा लादकर चलना साधक सन्त को क्या आवश्यक है? वास्तव में वहाँ सच्चे आस्तिक भक्तों को—

कौड़ी गाँठ न बाँधईं माँगत हू सकुचाँय।

तिनके पीछे हरि फिरें कहुँ भूखे ना रह जाँय॥ इस धारणा को हरि स्वयं मैय्या के रूप में पग-पग पर उसकी सँभाल सब प्रकार करती देखी जाती है इसका पूरा अनुभव झाड़ी में होता ही है। तब कहना होगा सब यह भगवान् की ही लीला है जो किसी भाग्यशाली साधु को ही समझ में आती है।

सिद्धों का आवास

एक बार कोई एक साधु उस झाड़ी के प्रदेश में एक बड़े डोंगे में बैठकर पार जा रहा था उसमें कुछ लोक निर्माण विभाग के अधिकारी भी बैठे थे साधु को देखकर सहज ही मनोविनोद करने लगे। 'कहो महाराज कैसा क्या चलता है'

साधु बोला—आनन्द है मैय्या देती है मौज लेते रहते हैं। इस पर वे लोग बोले—'महाराज हमें भी कुछ दिलवाओ'

साधु ने कहा—'तुम्हें चाहिए' सभी ने एक स्वर से कहा—'हां महाराज हम सब तो इसीके भूखे हैं'

तब साधु अपनी लम्बी बाहें डोंगे के बाहर निकाल कर नर्मदा मैया का जल अंजुली से भरने लगा उस जल के साथ सोने के सिक्के भी नाव में आने लगे। यह देखकर वे सभी बड़े आनन्द से विभोर हो उठे। किन्तु स्वर्ण सिक्कों के साथ नाव में अधिक जल भर जाने की आशंका से भयभीत हो उठे। उधर साधु अपना वह क्रम बनाए रखा और कहता जाय—'और चाहिए और लेव और चाहिए और लेव'

घबराये हुए उन लोगों ने सिक्कों का मोह छोड़ दिया और कहा—'बस बस अब नहीं चाहिये' साधु ने तब नाव से जल उलीचना भी वैसे ही प्रारम्भ कर

दिया और कहने लगा 'अच्छा नहीं चाहिए तो मत लो' कहते कहते जल बाहर कर दिया इतने में लघु नौका किनारे भी आ लगी।

उतरते ही सब चरणों में आ पड़े, कहने लगे यह सब क्या लीला है तब सन्त ने कहा–" 'सब भगवान् की लीला है नर्मदा मैय्या का खेल है। देखो इस सघन झाड़ी में हिमालय के बड़े-बड़े सिद्ध सन्त तीन सौ से भी अधिक आकर निवास करते हैं। जनसाधारण की यहां कोई हलचल न हो इससे यह वातावरण अर्थात् एकान्त शान्त प्रदेश यह बना रहे एतदर्थ नर्मदा मैय्या भी उनकी भावना को मनोपूर्ण करती हुई-सी प्रतीत होती है साधु ने निर्देश किया। मैं भी उन्हीं सन्तों के दर्शनार्थ आता जाता रहता हूँ।

यह है शूल पाणेश्वर की झाड़ी का रहस्यमय वृत्त। इसकी वास्तविकता अभी भी कोई पवित्र साधक सन्त किसी न किसी रूप में दिव्य दर्शन मिलन प्रसंग से कुछ न कुछ अनुभव करते रहते हैं वहाँ।

इतना अवश्य समझ में सही आ रहा है कि जहाँ जन साधारण का कोलाहल या अशुद्ध मलिन क्रियाएँ-पापाचरण नहीं होता वहाँ सहज ही दैवी वातावरण बन जाता है। देवता तरसते हैं ऐसी पवित्र भूमि पर हमारे पग पड़ें। वे यही चाहते हैं। विचरने लगते हैं वहाँ सिद्ध साधु सन्त। ईश्वरी सृष्टि ही जहाँ केवल दृष्टिगोचर होती हो और जीव सृष्टि का कुछ बोलबाला न हो, तब वहाँ की उस दिव्य भूमि के बने रहने में सन्देह ही क्या है?

नर्मदा तट की इस प्रकार की अनुभूतियाँ सन्तों की हैं एक दो की नहीं कितने ही सन्त इसके अनुभवी अभी भी विद्यमान हैं। अनादि काल से पवित्र तीर्थस्थली असंख्यों दिव्य विभूतियों से आच्छादित है। करोड़ों तीर्थों की चर्चा पुराण करते है। नर्मदा तट के बराबर अन्यत्र कहीं कोई तीर्थ नहीं शिव मन्दिर नहीं, नर्मदेश्वर भी नहीं। सन्त कहा करते हैं—नर्मदा तट पर गुप्त सिद्ध साधुओं की पंक्तियाँ इस प्रकार लगी हैं कि उनके कमण्डलु एक दूसरे से जुड़े रहते हैं।

हमें ऐसे भी साधु मिले जिन्होंने अपनी दिव्यानुभूति हृदय खोलकर सामने रखी। और बतलाया उन्होंने कि भगवान् ने मुझे दिव्य धाम नर्मदा तटवर्ती जो रहे उनका प्रत्यक्ष दर्शन कराया एक दो स्थलों का। अस्तु।

प्रायः हम लोग बहिर्मुख हुए स्थूल दृष्टि से भूमि ही बस नापते रहते हैं। लिखते हैं उत्तर तट–८५६ दक्षिण तट–८२१ कुल १६७७ मील है। अन्य कोई प्रमाणित किये हैं दोनों तट १६९३, उत्तर ८७०॥ दक्षिण ८२०॥ जो भी है परिक्रमा पथ इनका प्रशस्त रहा सही-सही माप होना असम्भव ही है। किनारे [illegible] ग्रामों में से जाने पर अन्तर पड़ना स्वाभाविक है, अन्य कोई

इससे भी अधिक सिद्ध किए हैं। अमरकण्टक की ऊँचाई भी ३५०० फुट सही मानते हैं।

परिक्रमा में तीन वर्ष तीन महीने तेरह दिन व्यतीत करना चाहिए इसका तात्पर्य नर्मदा पंचाग में सुस्पष्ट है। अमरकण्टक में २१ दिन तथा भड़ौच में भी २१, ओङ्कारेश्वर-भेड़ाघाट-ब्रह्माण आदि में सात-सात दिन तो कहीं ५ या चार तीन दो दिन ठहरने की बात महत्वपूर्ण स्थान एवं माहात्म्य के उल्लेख से कहीं गयी। शेष सभी स्थानों में एक एक रात्रि ही निवास करे उक्त संख्या सही मान ली जाती है ३ वर्ष तीन मास तेरह दिन की।

विशेष-विनिवेदन

नर्मदाजी के विषय में अनुभूतियाँ सन्तों की प्रिया प्रियतम के मिलन जैसी गोपनीय ही रहती हैं। सन्त उसका ढिंढोरा नहीं पीटना चाहते। दूसरी बात गूंगे के गुड़ की तरह रसास्वाद ही वे लेते हैं। इस दृष्टि से यहाँ चमत्कार पूर्ण विशेष घटनाओं का उल्लेख नहीं किया जा रहा है। ग्रन्थ विस्तार के भय से भी यहाँ उनका वर्णन अनावश्यक-सा हो गया। प्रदक्षिणा से होने वाली उपलब्धि अतः अपार हैं। यही कहा जायगा।

प्रदक्षिणा तन से होती है। स्तुति-प्रार्थना, नाम स्मरणादि वचन एवं मन से किए जाते हैं। जो फल स्थूल शरीर से होने वाली क्रिया से होता है उससे दशगुणा फल वाचिक जपादि का होता है। वह 'इत्येषा वाङ्मयी पूजा' के अनुसार इष्ट की वाणी से की जाने वाली पूजा ही सिद्ध होती है। इससे भी अत्यधिक फल नाम उच्चारण किए बिना ही केवल मन्त्रों का, नाम के अर्थ का भावपूर्ण ध्यान करना रूप मानसिक पूजा का माना जाता है।

नर्मदाजी के पवित्र नामों का तन्त्र में संग्रह है जो कि नर्मदा सहस्र नाम से भवानी तन्त्र में वर्णित हुआ अब उसका यहाँ संग्रह करके और अन्त में नर्मदाष्टक के द्वारा स्तुति करते ग्रन्थ का उपसंहार किया जा रहा समझें।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ अथ श्रीनर्मदासहस्त्रनाम प्रारम्भः ॥

श्रीपार्वत्युवाच—

ॐजगदीश जगद्धाम दिग्वासो मदनान्तक।
रेवा नाम सहस्रन्तु कथयस्व मम प्रभो ॥ १ ॥

श्रीशिवउवाच—

साधुप्रिये महासाधो लोकानुग्रहकारिणी।
नर्मदा महती माया सर्व संपत्ति कारिणी ॥ २ ॥
हारिणी सर्वमायानां संसारार्णव तारिणी।
धारिणी सर्वविद्यानामविद्याभेदकारिणी ॥ ३ ॥

श्रीपार्वत्युवाच—

का तिथिः कस्तु वारश्च किं स्थलं पठने शुभम्।
यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वसिद्धि र्भवेन्नरः ॥ ४ ॥
तन्मे कथय देवेश सर्वलोकोपकारम्।

श्रीशिवउवाच—

न योगं करणं वारं नक्षत्रं नापि संक्रमम् ॥ ५ ॥
यस्य पठन मात्रेण सद्यः सिध्दि लभेन्नरः (र्भवेन्नरं) ॥
नर्मदा सततं रक्षेज्जननी जगदम्बिका ॥ ६ ॥
ॐअस्य श्री नाम रेवायाः सहस्रं परिकीर्तितम्।
ऋषी रुद्रो विराडेष च्छंन्दो निगदितो मया ॥ ७ ॥
धर्मार्थ-काम-मोक्षार्थे विनियोगः प्रकीर्तितः।
रुद्रः शिरो मुखे छन्दो हृदये देवता स्मृता ॥ ८ ॥
ॐ नर्मदायै विद्महे मेकलकन्यायै धीमहि।
तन्नो रेवा प्रचोदयात्। ॐह्रीं श्री नर्मदायै स्वाहा ॥
इति गायत्रीमन्त्रं यथाशक्ति जपित्वा सहस्रनाम पाठं कुर्यात्।
तद्यथा–ॐनर्मदा-नागकन्या च नागेशी नागवल्लभा ॥
नारायणी निराकारा निरालम्बा निरञ्जनी ॥ ९ ॥
निरीहा निर्विकारा च नित्यानन्द स्वरूपिणी।
निस्पृहा नित्यरूपा च निर्लोभा निश्चयात्मिका ॥ १० ॥

नक्रेशी नागगमनी नागकन्या नगेश्वरी।
निर्दोषा निर्झरा नीरा निरीहा नित्यनन्दिनी ॥ ११ ॥
निश्चया निश्चला नीला निर्लेपा निधनेश्वरी।
नलनील-विलासा च नारायणपरायणा ॥ १२ ॥
निर्जरा नाकगमनी नक्षत्रा नेत्रवर्द्धिनी।
निर्भरा निर्म्मला नेत्रा निश्शङ्का सिर्जरात्मिका ॥१३॥
नीपप्रिया नीपरता निष्कलङ्का गणेश्वरी।
नाशिनी सर्व्वशत्रूणां नूतना नूतनेश्वरी ॥१४॥
निषङ्गधारिणी नीवा निर्भ्रमा नखवर्द्धिनी।
नदी मन्दाकिनी नाम मानरूपा नरार्तिहा ॥१५॥
नरकासुरनाशी च नरेशी नरपालिनी।
नरेन्द्रमानिनी निद्रानिग्रहा निग्रहेश्वरी ॥१६॥
नटिनी नाटिनी नाट्या निर्दृढा निर्दृढेश्वरी।
नितम्बिनी नितम्बी च निर्धना धनवर्द्धिनी ॥१७॥
निर्घृता निर्द्दया दुष्टा निष्ठुरा नैककामगा।
नभोरूपा नभेशी च नागरी नागरात्मिका ॥१८॥
नरनीतिप्रिया नेमी निर्भीका निष्कलेश्वरी।
नरेशपालिनी नौका नागस्था नागपार्श्विनी ॥१९॥
नागेन्द्रमानिनी नद्या नदेशी नर्म्मभाषिणी।
परमा परमेशी च पाकशासन पोषिणी ॥२०॥
पवित्रा पावनी पद्मा पादुका पदकेचरी ॥२१॥
पोषिणी पोषिका पोषा पूर्व्विका पूर्व्वमम्बिका।
पञ्चमी पञ्चित-प्रेमा पाञ्चाली परमेश्वरी ॥२२॥
पक्षधारा च पक्षेशी पक्षिणी पक्षिरूपधृक्।
पक्षिपालनसम्प्रीता पक्षिणी परमात्मिका ॥२३॥
पञ्जरी पिञ्जरी पिङ्गा पिङ्गला विकवल्लभा।
पिकरूपधरा पित्रा पिकेशी पिकभाषिणी ॥२४॥
प्रभाकारा प्रभारूपा प्रगल्भा पाकशासिनी।
पशुप्रीता पशुरता पुरन्दर हितैषिणी ॥२५॥
परुहूतप्रिया पद्मा पद्ममाला विभूषणा।
पापसन्त्रासिनी पापोत्पाटिनी पङ्कजेश्वरी ॥२६॥
पङ्कजाक्षी परभूतिः पथिनी पथिरक्षिणी।
पथिप्रिया पथिरता परसम्मोहकारिणी ॥२७॥

परेशी परहन्त्री च परब्रह्मस्वरूपिणी।
पराचाररता पापा पद्माक्षी पद्मवल्लभा ॥२८॥
पाठिनी सर्वविद्यानां पापपाश विनाशिनी।
पट्टप्रीता पाठरता पण्डिता बुद्धिवर्धिनी (द्धिनी) ॥२९॥
पुण्डरीक विशालाक्षी पुण्ड्र-धारणपुण्ड्रिणी।
पूतना पुत्रपाली च पुरुषार्थप्रसाधिनी ॥३०॥
पदस्था पापदमनी पादपङ्कजसेविता।
फलदा फलरूपा च फलेशी फलवर्द्धिनी ॥३१॥
फुङ्कारी फणिपाली च फणेशी पन्नगेश्वरी।
फूत्कारी फलदा फेकी फलेशी फलपोषिणी ॥३२॥
फटाकारा फणादर्शी फल्गुनी फलसाधिनी।.
फल्गुनी फाल्गुनप्रीता फल्गुः फल्गुफलात्मिका ॥३३॥
फूङ्कारी फलदात्री च निःस्फुलिङ्गा स्फुलिंगिनी।
बालिका बालिकामाला बाला बुद्धिविवर्द्धिनी ॥३४॥
वरदा वररूपा च वरमाता वरेश्वरी।
बगला वाग्विलासी च वाचनी वचनप्रिया ॥३५॥
वत्सला वत्सलेशी च वज्रिणी वज्रधारिणी।
बालिका बालिकावस्था बाहुदण्ड-विलासिनी ॥३६॥
बाहुनी बाहुवरदा वर्तिनी वर्तुला बला।
वीथिनी विधिका वीचि विकटा विकटेश्वरी ॥३७॥
ब्रह्मरूपा विष्णुप्रीता ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका।
वराक्षी वामना वामा वामिका वरदायिका ॥३८॥
ब्राह्मी बाला वराहीच वराक्षी विकृतानना।
वशिष्ठा वादिनी वाक्या वाद्यरूपा वरेश्वरी ॥३९॥
बषट्कारा वकेशी च बकदालभ्यपालिका।
वागुरी विकसद्वक्त्रा वक्रिणी वक्रकारिणी ॥४०॥
वक्ररूपा वक्रधरा वक्रेशी वक्रभाषिणी।
व्यक्ताऽव्यक्ताच बलदा बलेशा ब्रह्मचारिणी ॥४१॥
बदराश्रमसंस्था च बदरा श्रमवासिनो।
बदरीफल-सन्तुष्टा बदरी बदरीश्वरी ॥४२॥
बदरीफलसन्दोहा बदरीफलभाविनी।
बदरीफलसम्पूज्या, बदरीफल-तोषिता ॥४३॥
बदरीफलसंस्नेहा बदरीफलभाविनी।

बरदा बरदेशी च वसिष्ठाद्यै स्सुपूजिता ॥४४॥
विश्वामित्रसदापाली विश्वम्भरी धिचक्षणी ।
विश्वम्भरा विश्वरूपा विश्वात्मा विश्वपालिनी ॥४५॥
विश्वेशी विश्वहन्त्री च विश्वात्मा विश्वपोषिणी ।
वीरहा बिरता वीरा बिभीषणवरप्रदा ॥४६॥
विश्वामित्रवृहत्स्नेहा विश्वहा विश्वरूपिणी ।
भवानी भूतभव्या च भवपाशविमोचनी ॥४७॥
भोगिनी भोगकारी च भोगदा भोगवर्द्धिनी ।
भीषणा भीषणेशी च भीमा भीमपराक्रमा ॥४८॥
भिक्षुकापालिनी भूति भूंधरा भूधरात्मजा ।
भूषणा भूतपाली च भूजेशी भोगनायिनी ॥४९॥
भूतात्मा भूतसंरक्षी भूतिदा भूतिभूषणा ।
भवदा भवहन्त्री च भवशोक विनाशिनी ॥५०॥
भ्रामरी भ्रमराकारा भूतभावनभाविनी ।
भारद्वाजसदापूज्या भूषिता भूषितेश्वरी ॥५१॥
भक्षिणी भल्लुका भीषा भैरवी भवनाशिनी ।
भानुपूज्या भानुरता भवानी भुवनेश्वरी ॥५२॥
भूतला भूतलेशी च भूतली भूतलात्मिका ।
भोगिनी भोगदात्री च भोगदा भोगवर्द्धिनी ॥५३॥
भगात्मिका भगवती भगेशी भगपूजिता ।
भास्करी भास्करप्रीता भास्वती भासकारिणी ॥५४॥
भाषणी भाषिणी भामा भजनी भवरूपधृक् ।
भट्टिनी भट्टसम्पूज्या भट्टानां बुद्धिवर्द्धिनी ॥५५॥
भूपश्री भूंपसंरक्षी भूपात्मा भूपपालिका ।
भूपसाक्षी भूपरता भूमिपा भूमिधारिणी ॥५६॥
भूमिभोगरता माया भौमपूज्या सनातनी ।
भूमिदा भूमिजननी भूमिस्थिता भयापहा ॥५७॥
भावुका भवनाशा च भूरिदा भूमिपालिका ।
भुवना भुवनेशा च भुवनैक-सुपालिका ॥५९॥
भूरिपूजारता नित्या भूरिदा भूरिभोगिनी ।
भूतनाथसदाप्रीता भूतनाथसुपूजिता ॥६०॥
भूतनाथसदापाली भूतनाथप्रहर्षिणी ।
भैरवप्रीतिगापन्ना भैरवानन्दवर्द्धिनी ॥६१॥

भिक्षुपाली भिक्षुकेशी भिक्षुदा भिक्षुरक्षिणी ।
भेदकारी च भेदेशी भीतिदा भीतिघातिनी ॥६२॥
भीतिरक्षाकरि-स्तम्बा भीतिरूपा भयात्मिका ।
भस्मचन्दनसंयुक्ता भालरक्षा च भालिनी ॥६३॥
भालप्रीतिकरी भल्ला भल्लान्तकविदारिणी ।
मोहिनी मेहनेशा च महिला मदनासुरा ॥६४॥
महामाया महादेवी महामोहविनाशिनी ।
महायोगरता रेवा मदिरा मदिरेक्षणा ॥६५॥
मखरूपा मखेशो च मखगा मखधारिणी ।
मानिनी मानदा मान्या मोहरात्रि महेश्वरी ॥६६॥
मार्गणी मार्गणप्रीता मार्गदा मार्गरक्षिणी ।
मन्त्ररूपा मन्त्रकरी मञ्चाली मञ्चलेश्वरी ॥६७॥
मोक्षदा मोहदात्री च मोक्षहा मोक्षकारिणी ।
मत्सरा मत्सरप्रीता मत्सरात्मा मखान्तकृत् ॥६८॥
मार्जनी मार्जनरता मार्ज्जना मार्ज्जनेश्वरी ।
मिहिका मेढ्रिणी मेहा मेढ्रा मेढ्रविवर्धनी ॥६९॥
मनोरूपा मनस्था च मानसी मनमोहिनी ।
मनस्विनी मन स्थैर्या मानैका मानमानिनी ॥७०॥
मनोरूपा मानभावा मानभावविदारिणी ।
मंत्रिणी मन्त्रमाया च मन्त्रात्मा मन्त्रपालिनी ॥७१॥
मन्त्रहा मन्त्रसम्प्रीता मान्त्रिकी मन्त्रकारिणी ।
मखेशी मखकारी च मखरूपा मखेश्वरी ॥७२॥
मन्थिनी मन्थनाधीशा मन्थने शस्यपालिका ।
मदना मदरूपा च मदहा मदभञ्जनी ॥७३॥
मेदुरा मेदुराक्षी च मेदुरात्मा मदेश्वरी ।
माररूपा मारकारी मार्त्तण्डी मारवर्द्धिनी ॥७४॥
मारशान्तिकरी माया मानसैका मनस्विनी ।
मङ्गला मङ्गलाकारा मङ्गलात्मा महासुरी ॥७५॥
मध्यनीलम्बमध्यस्था मध्यमा मध्यरक्षिणी ।
महती मञ्जना मोटा मटका मरटात्मिका ॥७६॥
मलहा मलविध्वंसा मलसन्तोषकारिणी ।
जननी च जगद्धात्री जान्हवी जगदम्बिका ॥७७॥
योगमाया जगज्जेत्री जनित्री जननी जरा ।

जठरा योगसिद्धा च योगाक्षी योगवर्द्धिनी ॥७८॥
योगसंरक्षिणी योग्या योगिनां गतिदायिनी ।
योगसंरक्षणप्रीता जगत्त्रयविहारिणी ॥७९॥
योगरक्षाकरी योग्या योगसम्मोहकारिणी ।
योगिनी योगिसंसेव्या योगहा योगपालिका ॥८०॥
जगदात्मा जगद्रूपा जगन्ती जगती जगत् ।
जघना जघनेशी च यक्षिणी यक्षपालिका ॥८१॥
यक्षसम्मोहनिरता यक्षात्मा यक्षभेदिनो ।
त्र्यक्षरी त्र्यक्षरेशी च यक्षदा यक्षकारिणी ॥८२॥
यक्षदा यक्षमाता च यक्षसम्प्रीतिवर्द्धिनी ।
जगद्धात्री जगज्जेत्री जयकृत् जयदायिनी ॥८३॥
यमुना यमुनापाली यमशङ्का-निवारिणी ।
योगेशी योगमाया च जान्हवी जठरात्मिका ॥८४॥
यन्त्ररूपा यन्त्रमयी जनभक्ति-विवर्धिनी ।
जनेशी जनसंरक्षी जानकी जगदम्बिका ॥८५॥
युद्धनियुद्धप्रीता च युद्धभक्ति प्रवर्द्धिनी ।
योधनि योधसम्प्रीता युध्दकार्यप्रदर्शिनी ॥८६॥
युध्दारि युंध्दमाता च युध्दात्मा युध्दभाविनी ।
जगद्रंजनकारी च जनता जनकात्मिका ॥८७॥
योगरूपा योगधरा योगिनी योगमानिनी ।
जयरूपा जयमयी जयात्मा जयनेश्वरी ॥८८॥
जयहा जयसंरक्षी जयसम्मोहधारिणी ।
जीवन्ती युवति र्जीवा जीवनी जीवरक्षिका ॥८९॥
जीवपाली जीवभेदी जीवहा जीवपालिका ।
जीवेशी जीवसम्मोहा जीवकौतुकधारिणी ॥९०॥
जीवना जीवनारम्भा जीवनी जगद्गहिनी ।
रमणी रङ्किणी रेवा रणुका रणरक्षिणी ॥९१॥
राजकर्मरताऽनन्ता रक्षणा रक्षणेश्वरी ।
रक्षिका राक्षसाभक्ष्या राक्षतादि-विमर्दिनी ॥९२॥
रोगहा रोगकारी च रोगात्मा रोगनाशिनी ।
रघुराज-सदापूज्या रघुवंश-विवर्दिनीर्घि ॥९३॥
रामकार्यंकरी रामा रामराज्यप्रतिष्ठिता ।
रमणी रामणी राज्ञी राज्यश्री राज्यभञ्जिनी ॥९४॥

रक्षिणी रक्षिकारक्षा रक्षेशी रक्षणात्मिका ।
राजकी राजिका राज्या राजयोग-विलासिनी ॥९५॥
रथिनी रथसम्प्रीता रथात्मा रथकारिणी ।
रतिरूपा रूपधारी रूपात्मा रूपधारिणी ॥९६॥
रूपहा रूपसम्भेदी रूपाक्षी रूपकारिका ।
राकापति सदाभीता राकापतिविभेदिनी ॥९७॥
राकापति सदालीना राकापतिसुपुजिता ।
रासभी रासभप्रोता रासभा रासमण्डिनी ॥९८॥
राजकेली समाक्रान्ता रामराज्यप्रतिष्ठिता ।
रञ्जनी रङ्गरूपा च राहुधर्मकरी सदा ॥९९॥
राहुशीर्षच्छिदा रोहा राहुरूपप्रधर्षिणी ।
रमणी रेवती रम्या रोहिणी रतिभेगिनी ॥१००॥
रतिपूज्यतमा लोके रतिमानविभेदिनी ।
लोलाक्षी लक्षणा लक्ष्मी लोंकपाला लकावली ॥१॥
लङ्का पाली च लंकेशी लोकालोकप्रपूजिता ।
लोलेक्षणा लोमपाली लोमेशी लोकपालिका ॥२॥
लाक्षा लाक्षारुणा रक्षा लक्षणा लक्ष्यगोचरी ।
ललिताङ्गी लोलरति लींला बालविहारिणी ॥३॥
लालसा रुणलिप्ताङ्गी लालिता लालनेश्वरी ।
लोकेशी लोकपाली च लोकात्मा लोकरक्षिणी ॥४॥
लोकस्था लोकसाक्षो च लोकालोकविलासिनी ।
रोचनी रोचना लोला लीलालास्य विहारिणी ॥५॥
लक्षणा लक्षिता लक्ष्या लक्षग्रहविनाशिनी ।
लज्जामयी लोकलज्जा लज्जोत्पत्तिप्रचारिणी ॥६॥
लोपामुद्रा लोमकी च लिप्सा चोलिलिप्सिता सदा ।
लवणाब्धितरी लङ्का लंकेशी लङ्कपालिका ॥७॥
लोभद लोभहन्त्री च लोभमोहप्रहारिणी ।
लोभशान्तिकरी मन्त्रा लोमेशी लोमशात्मिका ॥८॥
लालसावर्द्धिनी लास्या लक्षिका लक्ष्यदायिनी ।
वन्तिकावरदप्रोक्ता वीर्यदा वीर्यवर्द्धिनी ॥९॥
विकलावस्थिनी वन्ध्या वन्दनप्रियवन्दा ।
वासिता वासितागारा विफला व्योमधारिणी ॥१०॥
सावित्री शारदा सन्ध्या शाम्भवी शांकरी शिवा !
सुकेशी शोभना सौम्या सात्विकी सत्यधारिणी ॥११॥

सत्या सत्यात्मिका शेषा राका शशिस्वरात्मिका।
शोकदा शोकनाशी च शोकहा शोकवर्द्धिनी ॥१२॥
सगुणा शोकहन्त्री च साक्षिणी सूक्ष्मरूपभाक्।
स्वक्षा स्वक्षविनिक्षिप्ता शिञ्जना शिञ्जनावती ॥१३॥
शाटिनी शाटशुभ्रा च शौरेयी शेखरेश्वरी।
सत्यहा सत्यपाली च शत्रुहा शत्रुनाशिनी ॥१४॥
शत्रुसम्मोहिनी सत्या शत्रूणांबुद्धिनाशिनी।
सुस्थला सुस्थली स्वस्था सुन्दरी सुन्दरा सदा ॥१५॥
सुधना शुद्धमानस्या सुधार्णवनिवासिनी।
सुधासागरसम्भूता सुधाशी शुद्धचन्दिका ॥१६॥
शून्यरूपा शून्यमयी शून्याशून्यनिवासिनी।
सर्प्पभूषा सर्पधरी सर्प्पेशी सर्प्पहारिणी ॥१७॥
स्वप्नावती सुषुप्तिस्था सर्व्वस्था सर्वपालिनी।
सर्वाङ्गी साधुशीला च सुशीला सुलभावती ॥१८॥
सफला शोभना शोभा सुभामा शुभगा शुभा।
सोमोद्भवा सोमसुता सोमात्मा सोमकन्यका ॥१९॥
सोमजा समता सोमा सौम्या सौम्यविहारिणी।
सुराज्य सुरता सूर्य्या सुरेशी सुरतिः स्वरा ॥१२०॥
सुरात्मजा सुरसुता सुरथा शूरवर्द्धिनी।
शूलहा शूलभृ – च्छूलभि-त्शूलधृताम्बरा ॥२१॥
शूलजा शूलजा शूला सुशिला च सुलोचना।
शर्व्वरी शर्व्वरप्रीता शयना शयनेश्वरी ॥२२॥
सहजा सिंहिका सिंही सिंहिका सिंहपालिनी।
खड्गिनी खड्गिका खड्गी खगेशी खगगामिनी ॥२३॥
खलघ्नी खलसम्मोहा खलरूपा खलप्रिया।
खलजा साधुशीला च शबरी शबरात्मिका ॥२४॥
शांकरी शंकरप्रीता शंकरप्रियकारिका।
सौन्दरी सुन्दरी सौधा सुधासिन्धुनिवासिनी ॥२५॥
सर्वदा सर्वमान्या च सर्वात्मा सर्व्वभोगिनी।
सर्व्वरा सर्व्वदा सर्व्वा सर्वस्था सर्वभूषणी ॥२६॥
सर्व्वारूढा सुवार्ता च सुवार्ता वचनेश्वरी।
साक्षिणी धर्मसेतूनां साधिनी सर्व्वकर्मणाम् ॥२७॥
सुप्ता सुप्तोत्थिता श्यामा श्यामला सौख्यकारिणी।
सौख्यदा सौख्यपाली च सौख्यघ्ना सौख्यभोगिणी ॥२८॥

सुदती सुमुखी स्मेरा सुवासा शरदम्बिका ।
सरिता शारदा सौरा सौरेयी सोमकारिणी ॥१९॥
सुवचा स्सुखदा स्वक्षा स्वक्षणी स्वक्षणेश्वरी ।
हासिनी हर्षिणी हंसी हंसगा हंसधारिणी ॥३०॥
हठिनी हर्षसंवर्धि हैराहरविहारिणी ।
हनूमत्प्रीतीमापन्ना हरिरूपा हरिप्रिया ॥३१॥
हर्यक्षी हारिणी हन्त्री हेरम्बा हरवल्लभा ।
हृशिकेषि सदास्नेहा हलाहल विमर्दिनी ॥३२॥
हलहा हलरुपा च हरैका हरतोषिणी ।
पद्मिनी छेदनप्रीता छन्देशी छन्दकारिणी ॥३३॥
छलात्मा छलभैदी च क्षुद्रबुद्धिविनाशिनी ।
छत्रिणी छत्रदा छत्रा सुच्छत्रा छत्रकारिणी ॥३४॥
आदिरुपा आदिमाया आद्या अम्बा च अम्बरी ।
अक्षनीरक्षधारी च आदिशक्ति राजेश्वरी ॥३५॥
अजा च अजनी क्षम्बा अजात्मा अजपोषिणी ।
अट्टहासा अट्टरुपा अग्निस्था अग्निरुपिणी ॥३६॥
अवर्त्त्या अर्ब्बुदा ओजा अशोका शोकहारिणी ।
आदिस्था अञ्जनी अञ्जा अजानेयाम्बिकाशिनी ॥३७॥
ईश्वरी ईशपाली च ईशाना ईशवासिनी ।
ईडा ईशविलासा च ईशस्था ईशपोषिणी ॥३८॥
ईतिदाईति हन्त्री च ईति भीतिविमर्दिनी ।
उमा उमापतिप्रीता उमापति विहारिणी ॥३९॥
ऐश्वर्य्यदायि न्यैश्वर्या एकात्मानेकसम्भवा ।
कलिका कामिनी कान्ता कामिनी कामभोगिनी ॥१४०॥
कौतुकी कमला काली कल्याणी कमलेश्वरी ।
काशी काञ्ची च कावेरी कैलासी केशवी कविः ॥४१॥
कामदा कान्तिदा कान्तिः कार्तिकी कृत्तिका क्रिया ।
कार्तवीर्यविलासा च कार्तवीर्यप्रबोधिनी ॥४२॥
कुरुक्षेत्रनिवासा च कुरुकुल्ला कपालिनी ।
कुमारी कुलजा कान्तिः कपाली केशपालिनी ॥४३॥
कौलिनी कञ्जधारी च कञ्जाक्षी कञ्जपालिनी ।
कञ्जपुष्पसदाप्रीता कज्जमाला विहारिणी ॥४४॥
कज्जस्था कञ्जिनी काया कायस्था कायसुन्दरी !
कामभोगसदाप्रीता कामिका कामसुन्दरी ॥४५॥

कामकेलीरतोन्मत्ता कामक्रीडाविहारिणी ।
कामिनो कामदात्री च कार्यदा कार्यवर्द्धिनी ॥४६॥
कोशा कोशी च कौशेयी कुटिला कुटिलेश्वरी ।
कुरूपा क्रूरगर्भा च क्रूरक्रीडा कपालिनी ॥४७॥
कामाख्या कौशिकप्रीता कोशला कोशपालिनी ।
कुचस्थाना कुचक्रूरा कवच्या कौञ्चदारिणी ॥४८॥
कुट्टिनी कुलजेशा च कौशिकागारवासिनी ।
कोपा कोपवती कुण्डा कुण्डलेशा च कुण्डली ॥४९॥
कुभोजनरता कुम्भा कुम्भिनी कुम्भगामिनी ।
कुधना क्रोधिनी क्रुद्धा कुशावर्तनिवासिनी ॥५०॥
कुमारी क्रूरगर्भा च क्रूराक्षी क्रूरपालिनी ।
कुञ्जरी कुञ्जरप्रीता कुन्जपाली कुजार्तिहा ॥५१॥
कुजमाता च कौलीना कुलीना कुलभोजना ।
कामिका कामदा काली कालञ्जरनिवासिनी ॥५२॥
कुस्थला च कुदत्कारी कामदा कामवर्द्धिनी ।
खलिनी खलपाली च खलदा खलवर्द्धिनी ॥५३॥
खड्गहस्ता च खड्गेशी खर्प्परी खर्प्परप्रिया ।
खट्वाङ्गधारिणी खड्गा खगदा खगगामिनी ॥५४॥
खेचरी खेचरा खेमा खजानेया खगेश्वरी ।
खट्वांगी खंगधारी च षण्मुखी षण्मुखप्रिया ॥५५॥
खरेशी खरभक्षी च खरदूषणमर्द्दिनी ।
गौरी गौरांगिनी गौरी गौरी गिरिवरात्मजा ॥५६॥
गिरीशतनया गौर्य्या गीर्द्धरी गीर्धरेश्वरी ।
गीर्वाणी गिरिजा गीर्ष्या गीष्पतिप्रेमवर्द्धिनी ॥५७॥
गिरीशवल्लभा गोत्रा गोत्रजा गोत्रपालिनी ।
गोत्रेशा गोपना गोपी गोपाली गोपवल्लभा ॥५८॥
गौतमी गारुडी गेया गौतमी गौतमप्रिया ।
गोदावरी च गण्डक्या गोकुला गोकुलांगजा ॥५९॥
गणेशी गणपाली च गणहा गणतोषिणी ।
गणपूज्या गणध्वंसी गणमान्या गणेश्वरी ॥६०॥
गणघ्नी गणसन्तुष्टा गारुडी गरुडप्रिया ।
ग्रहेशी ग्रहमान्या च ग्रहपूज्या ग्रहेश्वरी ॥६१॥
ग्राहिणी ग्रहणा गेहा ग्रहेशा ग्रहवल्लभा ।
गोधा गोधामिनी गोपा गोपाली गिरिजेश्वरी ॥६२॥

गगना गगनेशा च गगनी गगनेश्वरी।
गंगा गव्या च गायत्री गोधना गोधनेश्वरी ॥६३॥
गौणी गौणात्मिका गोत्रा गोत्रिणी गोत्रवर्द्धिनी।
गोत्रदा गोत्रपाली च गोत्रघ्ना गोत्रवल्लभा ॥६४॥
गोरजा गोस्वरूपा च गोपाली गिरिकन्यका।
गोत्रजा गोत्रसंवृधि गौंधना गोधनप्रिया ॥६५॥
गोलगर्भनिवासा च गोलगर्भविमोचना।
गोलगर्भमनस्स्नेहा गोलगर्भविद्दिनी ॥६६॥
गर्भिणी गर्भवासिन्या क्रूरगर्भनिवारिणी।
गर्भरूपा गर्भमयी गर्व्विणी गर्वमोचना ॥६७॥
गर्व्वहा गर्व्वहन्त्री च गर्व्वघ्नी गर्व्वपालिनी।
गर्व्वेशी गर्व्वयोग्या च गर्व्वदा गर्व्वकारिणी ॥६८॥
गलगण्डविनाशा च गलगण्डविभेदनी।
गलगण्डबहिस्स्था च गलगण्डोपकारिणी ॥६९॥
गोक्षणी गोजनि गुंर्व्वी गुर्विणी गर्व्वमर्द्दिनी।
गीताज्ञाना च गोलब्धि गौंलेपी गोत्रजा ग्रहा ॥१७०॥
घनेशी घनपाली च घनौघा घनवर्द्धिनी।
घोषपाली च घोषेशी घोषहा घोषघातिनी ॥७१॥
घटस्था घटरूपा च घटेशी घटना घटा।
घण्टानाद सदाप्रीता घण्टानादप्रतोषिणी ॥७२॥
घटिका घण्टिका घण्टा घण्टानादप्रहर्षिणी।
घोटिनी घोटजा घोटा घोटकी घोटकप्रिया ॥७३॥
घनिनी घनरूपा च घनकेशी घनार्त्तिहा।
घनदा घनसम्मोहा घनद्युति घंनप्रिया ॥७४॥
घर्म्मरूपा घर्म्मकरी घर्म्मदा घर्म्महारिणी।
घर्म्मेशी घर्म्मसम्मोहा घनौघा घनवर्षिणी ॥७५॥
चन्द्रिका चन्द्रवदना चर्च्चिका चन्दन प्रिया।
चन्डिका चण्डहन्त्री च चण्डी चण्डपराक्रमा ॥७६॥
चारुरूपा चारुमयी, चतुरा चतुरानना।
चित्रिणी चित्ररूपा च विचित्रा चित्रवल्लभा ॥७७॥
चखिनी च चखेशी च चारुवक्त्राब्जहामिनी।
चूडामणि करस्था च चूडामणिविभूषणा ॥७८॥
चार्वङ्गी चारुसर्व्वाङ्गी चच्चिनी चच्चंनेश्वरी।
चापिनी चापहस्ता च चापेशी चम्पकद्युतिः ॥७९॥

चम्पकपुष्पसम्प्रीता चम्पकेशी च चम्पिका ।
चपला चारुचार्व्वङ्गी चामीकरमहाद्युतिः ॥१८०॥
चामीकरसदाप्रीता चामीकरविभूषणा ।
चामीकरमहाप्रेमा चम्पका चम्पकप्रिया ॥८१॥
चमरी चामरी चौरी चौरांगी चौरवर्द्धिनी ।
चारुचन्द्रकलायुक्ता चण्डमुण्ड निनाशिनी ॥८२॥
चरेशी चररूपा च चर्च्चिनी चर्च्चनार्चिता ।
चारुचन्दनलिप्ताङ्गी चतुरा चतुरानना ॥८३॥
चलत्कुण्डलचिन्मौली चारुबाहुविलासिनी ।
चतुर्मुखा चतुर्वक्त्रा चतुर्बाहु श्चतुर्भुजा ॥८४॥
चक्रधरा च चक्राङ्गी चक्रहा चक्रभेदिनी ।
चकोरी चन्द्रिका स्नेहा चन्द्रकान्ति सदार्च्चिता ॥८५॥
छत्रिणी छत्ररुपा च छत्रणी छत्रपालिनी ।
छत्रेशी छत्रिका छत्रा क्षद्मना छद्मनप्रिया ॥८६॥
छागप्रिया छागभक्षा शोकहा शोकभेदिनी ।
शोकदा शोकहन्त्री च क्षेमङ्करी क्षरेश्वरी ॥८७॥
छलिनी छलरूपा च छत्रहा छत्रदायिनी ।
छटाकारा छन्नमुखी छदनी छदवल्लभा ॥८८॥
क्षणदा क्षणरूपा च क्षमदा क्षामसुन्दरी ।
क्षोभना क्षोभिनी क्षोभा क्षोभात्मा जोभकारिणी ॥८९॥
छजिनी छाजिनी छज्जा छटिनी छटना द्युतिः ।
क्षेपेशी क्षेपणी क्षेपा क्षपानाथसदाप्रिया ॥१९०॥
क्षरेशी क्षरकारी च क्षपना क्षपिनी क्षपा ।
जननी च जगन्माता जनयित्री जराजया ॥९१॥
जनशोकहरी जन्या जनदा जनरञ्जनी ।
जयरूपा जगध्दात्री जर्ज्जरा जर्ज्जरेश्वरी ॥९२॥
जघना जघनी जंघा जघासु-जंघवर्ध्दिनी ।
यन्त्रिणी यन्त्ररूपा च जगदा जगदम्बिका ॥९३॥
योगमाया योगिनी च योगिनां बुध्दिदायिनी ।
जगज्जयन्ती जेत्रा च जान्हवी जानकी जरा ॥९४॥
जठरा ज्येष्ठधान्या च जडेशी जडबुध्दिदा ।
जाड्यहा जाड्यध्वंसी च जाड्यसम्भेदकारिणी ॥९५॥
यज्ञरूपा च यज्ञाङ्गी यज्ञेशी जगदम्बिका ।
जारमार्गरता जारा जर्ज्जरी जगन्मातृका ॥९६॥

जयिनी जृम्भणी जृम्भा यदुनाथविमोहिनी ।
यादवजीतिमापन्ना यद्वीशा यादवात्मजा ॥९७॥
यशोदा च यशःपाली यशोहा यशोवर्ध्दिनी ।
यशः क्षेमङ्करी योषा पोषिणी जगत्पालिनी ॥९८॥
जलदा जलसंवृष्टिर्जलधाराप्रहारिणी ।
जलेशी जलशय्या च जलसागरवासिनी ॥९९॥
जलसंक्षोभणी ज्येष्ठा ज्येष्ठेशा ज्येष्ठपालिनी ।
ज्येष्ठरूपा ज्येष्ठमयी ज्येष्ठसम्मोहकारिणी ॥२००॥
भूर्भूरिणी भूरिभूषा भूपेशा भूपरूपिणी ।
भूपपाली च भूपेशी भूपप्रीता भूपप्रिया ॥ १ ॥
टंकिनी टंकरूपा च टंकात्मा टङ्कनेश्वरी ।
टोपा टोपायनी टेरा टौरिका टारटारिणी ॥ २ ॥
टासन्जा टाटिनी टौरा टामरप्रियकारिका ।
टोरा टट्टाट्टहासा च ठमिनि ठम्भठम्भिनी ॥ ३ ॥
डण्डिनी डण्डधारी च डण्डेशी डमरात्मिका ।
डाकिनी डामरी दण्डी डेरेका डामरप्रिया ॥ ४ ॥
ढक्का संक्षोभिनी ढौरा ढुण्ढिराजसदाप्रिया ।
ढुण्ढिराजप्रहर्षा च ढुण्ढिराजप्रपूजिता ॥ ५ ॥
नारायणी नरेन्द्राणी निरीहा नरकार्तिहा ।
निशुम्भशुम्भमथिनी नरकासुरघातिनी ॥ ६ ॥
नित्यानन्दा नरेशाना निर्व्विकारा निरञ्जनी ।
निर्ल्लोपा निर्ल्लया नीला नारिकेलफलप्रिया ॥ ७ ॥
नाकिनी नाकशयना नीरवाहा नरप्रिया ।
निर्भासा नूतनानन्दा नन्दिकेशप्रपूजिता ॥ ८ ॥
नन्दिकेश्वरसम्मोहा नन्दिकेश्वरपूजिनी ।
नौकासन्तारिणी नीला नासिकाग्रसुगन्धिनी ॥ ९ ॥
नागसन्धारिणी नग्ना नगेशी नगरेश्वरी ।
निःशंकनिकटा नारी नवीना नरपालिनी ॥२१०॥
नरवाहनशोभाढ्या नखिनी नखधारिणी ।
तन्त्रिणी तन्त्रवाद्या च तारिका तारिकोत्तमा ॥११॥
तारा तरङ्गिणी तीरा ताटंकी तटनी स्थली ।
तुलजा तोतला तुर्य्या तुरीया तरुणी त्वरा ॥१२॥

तारिणी तामसी तन्त्रा तन्त्रिका तमहारिणी ।
तुन्दरा तुकरूपा च तोषिणी त्रिगुणात्मिका ॥१३॥
तङ्गिनी तुच्छहन्त्री च निर्भूरा निजकारिणी ।
तपिनी तापिनी तापी तपेशी तपमानिनी ॥१४॥
तारुण्यतमहन्त्री च, तमोहा तमभक्षिणी ।
स्तम्भिनी स्तम्भरूपा च स्थलिनी स्थलधारिणी ॥१५॥
स्थलेशी स्थलहारी च थर्थरा स्थलभोगिनी ।
दमनी सर्वशत्रूणां दमयन्ती दयार्णवी ॥१६॥
दुर्ग्गा दुर्ग्गतिहारी च, दुर्ग्गिणो दुर्ग्गरूपिणी ।
दुरन्ता दुष्कृतिर्दूरा दुर्द्दरोध्दारकेश्वरी ॥१७॥
दुर्विनीता च दैत्यारि दानवानां विमर्हिनी ।
दुःखहा दुर्ग्गरूपा च दुरन्ता दयिता दया ॥१८॥
दुर्भिक्षहारिणी दीर्ग्घा दीर्ग्घहा दीर्ग्घलोचनी ।
द्विजरूपा द्विजप्रीता द्विजेशी द्विजपूजिता ॥१९॥
द्विजात्मा द्विजमान्या च द्विजविद्याविवर्द्धिनी ।
द्विरूपा दीर्ग्घनयना दीर्ग्घवक्त्रप्रकाशिनी ॥ २०॥
दीर्ग्घहस्ता दीर्ग्घदेहा दीर्ग्घहासा दृहासिनी ।
दुर्ल्लभा दुर्भरा दूर्व्वा दुर्व्वासोमुनिपूजिता ।।२१।।
दण्डिनी दण्डरूप च हेमदण्डसुधारिणी ।
दूती दुःस्थालिका दुर्ग्गा दुर्द्दराधरधारिणी ॥२२॥
दानदा दानपूज्या च दानमानविलासिनी ।
द्युमणि स्तिमिरारिश्च दुःसहा दुःसहेश्वरी ॥२३॥
धामिनी धामपूज्या च धूमा धूम्राक्षहारिणी ।
ध्वजिनी ध्वजवाही च ध्वजात्मा ध्वजधारिणी ॥२४॥
धनदा धनपूज्या च धनहा धनवर्द्धिनी ।
धनेशपोषिणी धन्या धारिणी धनदेश्वरी ॥२५॥
धरणीधरमान्या च धरणीधरवल्लाभा
धाराधरी जलधरी धरेशा धरणीधरा ॥२६॥
धूलिसम्मोहिनो धौरा धर्षणी धूमसी ध्वजा ।ॐ।
इति नामसहस्रन्तु नर्मदायाः प्रकाशितम् ॥५७॥
ये पठन्ति महादेवि तेषां सिद्धिरनेकधा ।
प्रातःकाले पठेन्नित्यं धनधान्य समृद्धिमान् ॥२८॥

मध्यान्हे च पठेद्देवि ईप्सितं लभते क्षणात् ।
सायंकाले पठेद्यस्तु सर्व्वकामार्थसिद्धये ॥२९॥
अर्द्धरात्रे विशेषण नर्म्मदाप्रियकारकम् ।
एकवारं पठेद्यस्तु सर्व्वबाधा विमोचतेत् ॥१३०॥
द्विवारं च पठेन्नित्यं सर्व्वशत्रुविमर्द्दनम् ।
त्रिवारं तु पठेन्नित्यं सर्व्वशत्रुरोगनिवारणम् ॥३१॥
चतुर्व्वारं पठेन्नित्यं चतुर्वेदाधिपो भवेत् ।
पञ्चवारं पठेन्नित्यं पञ्चभूतेश्वरो भवेत् ॥३२॥
षड्वारं च पठेन्नित्यं सर्व्वैश्वर्य्यंलमेध्द्रुवम् ।
सप्तवारं पठेन्नित्यं संभवेद्विजयी नरः ॥३३॥
अष्टवारं पठेन्नित्यमष्टासिद्धि-मवाप्नुयात् ।
नववारं पठेद्यस्तु नवनाथसमद्युतिः ॥३४॥
दशवारं पठेन्नित्यं दशविद्यालभेत्स्वयम् ।
रुद्रवारं पठेद्यस्तु रुद्रतुल्यपराक्रमः ॥३५॥
विंशतिवारं पठेद्देवि सर्वदुः खनिवारणम् ।
त्रिंशद्वारं पठेद्यस्तु मुच्यते व्याधिबन्धनात् ॥३६॥
चत्वारिंशत्समावर्त्य कामुको लभते स्त्रियम् ।
पञ्चाशद्वारमासाद्य कामकोटिविमोहितम् ॥३७॥
षष्ठिवारं पठेद्यस्तु स लभेदचलां श्रियम् ।
पठेत्सप्ततिवारं चेच्छत्रुहानिः प्रजायते ॥३८॥
पठेदशीतिवारं वै सभवेद्देवदुर्ल्लभः ।
पठेन्नवतिवारं यः सभवेद्धनदोपमः ॥३९॥
शतावृत्तिपठेद्यस्तु मनोभिलषितं लभेत् ।
सहस्रावृत्तिपाठेन मुच्यते व्याधिबन्धनात् ॥४०॥
निशीथे नर्मदातीरे यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
सहस्रावृत्तिपाठेन सर्वसिद्धि लभेन्नरः ॥४१॥
राजभ्रंशे महादुःखे दारिद्ये व्याधिसम्भवे ।
अयुतावृत्तिपाठेन गतराज्यमवाप्नुयात् ॥४२॥
दुष्टग्रहविनाशं च अयुतावृत्तिपाठतः ।
शिवगेहे रिपोर्भङ्गे श्रीकामे विष्णुमन्दिरे ॥४३॥
अश्वत्थे राजवश्यार्थे कन्यार्थे चाण्डिकागृहे ।
जले स्वरूपकामो हि राज्यार्थे सरितस्तटे ॥४४॥

विद्यार्थे ब्रह्मवृक्षे च रोगे चारण्ययोगकः।
यं यं कामयते काम मयुतावृत्तिपाठतः ॥४५॥

तं तं प्राप्नोति देवेशि नान्यथा वचनं मम।
प्रतिमा मर्च्चयेद्धीमान्स पुष्पबिल्वपत्रकैः ॥४६॥

तस्य सिद्धिरनेकस्था सर्व्वसौभाग्यसम्पदा।
दारिद्र्यं नश्यते सर्व्वं नर्मदायाः प्रसादतः ॥४७॥

नान्यदेवी नान्यदेवी नान्यदेवी महीतले।
नर्म्मदा सदृशा लोके न गङ्गापि वरानने ॥४८॥

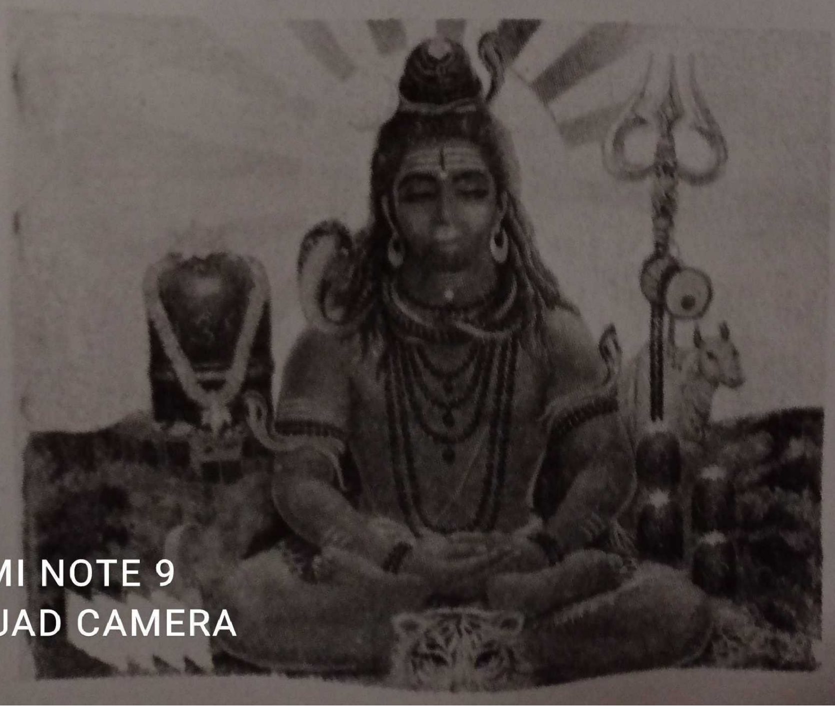
नर्म्मदा नर्म्मदा सर्व्वमनोरथान्ददाति वै।
कलौ तु नर्म्मदा देवी कल्पवृक्षो भनार्तिहा ॥४९॥

तस्या वै स्तोत्रपाठेन भवन्ति सफलाः क्रियाः।
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन नर्म्मदा सेवनं कुरु ॥२५०॥

ऐश्वर्यदात्री जनदुःखहन्त्री, पापान्विहन्त्री विमलार्च्चितश्रीः।
शिवात्मिका लोकपदस्थिता त्वं श्रीनर्म्मदे देवि मम प्रसीद।
देविमम प्रसीद ॥२५१॥

हरिः ॐ तत्सदितिश्री भवानीतन्त्रे हरगौरी संव्वादे अक्षरादिनर्म्मदासहस्र-नामस्तोत्र सम्पूर्णम्। श्रीनर्म्मदागजाननार्प्पणमस्तु ॥

•



श्रीमदाद्य शङ्कराचार्य (भगवत्पाद) स्वामी विरचितं—

❀ श्री नर्मदाष्टकम् ❀

सविन्दु-सिन्धु-सुस्खलत्-तरंगभंग-रञ्जितं,
द्विषत्सु पापजात-जातकारि-वारि संयुतम् ।
कृतान्त दूत-कालभूत-भीतिहारि वर्मदे,
त्वदीय पाद पंकजं नमामि देवि नर्मदे ॥१॥
त्वदम्बुलीन-दीन मीन-दिव्यसम्प्रदायकं,
कलौ मलौघ-भारहारि सर्वतीर्थ नायकम् ।
सुमत्स्य-कच्छ-नक्रचक्र-चक्रवाक शर्मदे, त्वदीय पाद पंकजं० ॥२॥
महागभीर-नीरपूर-पापधूत भूतलं,
ध्वनत्-समस्त-पातकारि-दारितापदाचलम् ।
जगल्लये-महाभये-मृकण्डुसूनु हर्म्यदे, त्वदीय पाद पंकजं० ॥३॥
गतं तदैव मे भयं त्वदम्बु वीक्षितं यदा,
मृकण्डुसूनु-शौनका सुरारि सेवि सर्वदा ।
पुनर्भवाब्धि-जन्मजं भवाब्धि दुःखवर्मदे, त्वदीय पाद पंकजं० ॥४॥
अलक्ष-लक्ष-किन्नरामरासुरादि पूजितं,
सुलक्ष–नीरतीर–धीरपक्षि–लक्षकूजितम ।
वशिष्ठ-शिष्ट-पिप्पलाद-कर्दमादि शर्मदे त्वदीय पाद पंकजं० ॥५॥
सनत्कुमार-नाचिकेत-कश्यपात्रि-षट्पदै–
धृतं स्वकीय मानसेषु नारदादि षट्पदैः ।
रवीन्दु रन्तिदेव-देवराज कर्म शर्मदे, त्वदीय पाद पंकजं० ॥६॥
अलक्ष-लक्ष-लक्षपाप-लक्षसार-सायुधं
ततस्तु जीव जन्तु तन्तु भुक्ति मुक्ति दायकम् ।
विरञ्चि-विष्णु-शंकर-स्वकीय धाम वर्मदे, त्वदीय
पाद पंकजं० ॥७॥
अहोऽमृतं स्वनं श्रुतं महेश केशजा तटे,
किरात-सूत-वाडवेषु पण्डिते शठे नटे ।
दुरन्त पाप-ताप हारि-सर्वजन्तु शर्मदि, त्वदीय पाद पंकजं०
नमा० ॥८॥
इदंतु नर्मदाष्टकं त्रिकालमेव ये सदा,
पठन्ति ते निरन्तरं न यान्ति दुर्गतिकदा ।
सुलभ्य देह-दुर्लभं महेशधाम गौरवं,
पुनर्भवा नरा न वै विलोकयन्ति रौरवम् ॥९॥

तीर्थ यात्रा का शास्त्रीय विधान

नर्मदाजी की परिक्रमा अथवा अन्य किसी तीर्थ यात्रा के विषय में पुराणादि में विस्तार से विधि नियमों का उल्लेख है। काशीखण्ड के कुछ अंश यहाँ दिए जा रहे हैं प्रत्येक तीर्थ सेवी इनका भली भाँत पालन करें।

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थ फल मश्नुते ॥१॥

जिस तीर्थ यात्री के हाथ पाँव तथा मन भली भाँत वश में है, जिसे अपनी विद्या और अपने तप तथा कीर्ति को सुसंयत बना रखा है सही में वही तीर्थ यात्रा का फल प्राप्त करता है।

प्रतिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो येन केन चित्।
अहंकारविमुक्तश्च सतीर्थं फलमश्नुते ॥२॥

जो प्रतिग्रह अर्थात् दान ग्रहण करने से कतराता है, (तीर्थ में किसी का दान तीर्थ यात्री न लेकर अधिकारानुरूप उदर पोषण के लिए अकिञ्चन साधु-वृत्ति वाला भिक्षामात्र ग्रहण करता हुआ प्रतिग्रही नहीं माना गया। क्योंकि कहा है—'भिक्षाहारी निराहारी भिक्षा नैव प्रतिग्रहः। असन्तो वापि सन्तो वा सोम पानं दिने दिने' ॥ इन वाक्यों से वह भिक्षुक निराहारी ही माना गया। जैसे कैसे जो जहाँ मिलता है प्रतिदिन सोमपान करता हुआ सा वह अनुभव करता है जो कुछ भी यदृच्छा से मिल जाता है उसीमें सन्तुष्ट रहता है एवं जो अहंकार रहित है, वही तीर्थयात्रा का फल प्राप्त करता है।

अदाम्भिको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रिय।
विमुक्तः सर्वं संगैर्यः स तीर्थं फलमश्नुते ॥३॥

जो दिखावा अर्थात् दम्भ नहीं करता किसी नये कार्य का श्रीगणेश नहीं करता, स्वल्पाहार जो जहाँ मिलता है करता हुआ, इन्द्रियों को स्वाधीन रखता है सब प्रकार के कुसंग से विमुक्त रहता है वही तीर्थयात्रा का फल प्राप्त करता है।

अकोपनोऽमलमतिः सत्यवादी दृढव्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥४॥

जो क्रोध नहीं करता, विशुध्द बुध्दि है तथा सत्यभाषी, दृढमति वाला है एवं सभी प्राणियों में अपने जैसा आत्मभाव रखता है वही तीर्थ यात्रा का फल भोगता है।

अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽछिन्न संशयः।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफल भागिनः ॥५॥

जो श्रध्दालु नहीं, पाप परायण है, तथा जो नास्तिक है, संशय में ही पड़ा रहता है एवं कोई न कोई मतलब रखता हुआ धर्म साधता है ये पाँचों तीर्थ फल भागी नहीं होते। ऐसे अन्य भी बहुत से नियम या शास्त्रविधि पुराणों में हैं।

प्रदक्षिणा वासियों के लिए सामान्य नियम

१. प्रतिदिन नर्मदा जी में स्नान मुण्डन कराकर करें जलपान भी रेवा के जल का ही करें।

२. प्रदक्षिणा में दान ग्रहण न करें। श्रद्धापूर्वक कोई भोजन करावे तो करले। क्योंकि आतिथ्य सत्कार अंगीकार करना तीर्थ यात्री का धर्म है। त्यागी विरक्त सन्त तो वस्तुतः भोजन ही नहीं करते, भिक्षा करते हैं जो अमृत तुल्य मानी जाती है।

३. व्यर्थ वाद विवाद, पराई निन्दा चुगली न करें परचर्चा न करते हुए वाणी का संयम रखें। गीता के अनुसार वाणी का तप साधक मात्र ग्रहण करें सदा सत्य बोले।

४. कायिक तप भी सदा अपनाए रहें :

देव द्विजगुरु प्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यं महिंसा च शरोरं तप उच्यते ॥'

५. मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भाव संशुद्धिरित्येतत् मानसं तप उच्यते ॥

श्रीमद्भगवद्गीता (गीता सत्रहवाँ अध्याय) का त्रिविध तप आजीवन मानव मात्र को ग्रहण करना चाहिए एतदर्थं परिक्रमा वासियों को प्रतिदिन गीत रामायणादि का पाठ भी करते रहना उचित है।

६. परिक्रमा आरम्भ करने के पूर्व नर्मदाजी में संकल्प करे, माई की कढाई अर्थात् कढाई में हलुवा जैसा प्रसाद बनाकर कन्याओं को साधु ब्राह्मण को अतिथि अभ्यागतों को यथाशक्ति भोजन करावे।

७. दक्षिण तट की प्रदक्षिणा नर्मदा तट से पाँच मील दूर और उत्तर तट की प्रदक्षिणा साढे सात मील से दूर नहीं करना चाहिए।

८. कहीं भी नर्मदा जी को पार न करें। जहाँ नर्मदा जी में टापू हो गये वहाँ भी न जाँय। किन्तु जो सहायक नदियाँ हैं नर्मदा जी में आकर मिलीं हैं उन्हें भी एक बार पार करना आवश्यक हो जाता है, वह करें।

९. चातुर्मास में परिक्रमा न करे। दो या तीन मास का भी कोई मानते हैं। देव शयनी आषाढी शु. एकादशी से देवोत्थानी कार्तिक शुक्ल एकादशी तक सभी गृहस्थ चातुर्मास मानते हैं। 'मासः मासो वै पक्षः' की बात को लेकर चार पक्षों का संन्यासी यति प्रायः करते हैं। नर्मदा प्रदक्षिणावासी

विजयादशमी तक दशहरा पर्यन्त तीन मास का भी कर लेते हैं। उस समय भी मैया की कढ़ाई यथाशक्ति करे। कोई आदि में भी करके पसन्न रहते हैं।

१०. बहुत सामग्री बटोर कर न चले। अन्यथा साधुओं की कहावत चरितार्थ हो जायेगी—'लटरम पटरम शिर पार भार जोग नहीं कर्मों की मार' अतः थोड़े हलके बर्तन तवा थाली कटोरी आदि रखे सीधा सामान आदि न रहा जाय तो एक दो बार पाने योग साथ रखले।

११. बाल न कटावे, नख भी बारम्बार कटाने का साहस न करे। वानप्रस्थी का व्रत ले। ब्रह्मचर्य का पूरा पालन करे। सदाचार अपनाये रहे। श्रृंगार की दृष्टि से तेल फुलेल कभी न लगाए। साबुन का प्रयोग न करे। शुद्ध मिट्टी का सदैव उपयोग करे।

१२—जब परिक्रमा परिपूर्ण हो जाय तब ओंकारेश्वर जाकर भगवान को जल चढ़ाए पूजाभिषेक करें करायें। मुण्डनादि कराकर विधिवत् पुनः स्नानादि नर्मदा मैया को कढ़ाई उत्साह और सामर्थ्य के अनुपार करे ब्राह्मण साधु अभ्यागतों को कन्याएँ को भोजन अवश्य कराएँ। फिर आशीर्वाद ग्रहण करके संकल्प निवृत्त हो जाय। अन्त में नर्मदाजी की विनय करें।

सरिद्वरे ! पाप हरे ! विचित्रिते !
गन्धर्व–यक्षोरग–सेविताङ्गे !
सनातनि ! प्राणगणानुकम्पिनी !
मोक्षप्रदे देविविधेहि शं नः ॥१॥

हे सरित् प्रवरे रेवे ! तुम समस्त पापों का परिहरण करने वाली हो। हे विचित्ररूप धारण करने वाली देवि ! तुम गन्धर्व यक्ष और नागदेवताओं से सेवित अंग वाली हो हे सनातनि ! तुम प्राणि मात्र पर दया करनेवाली हो। हे मोक्षदायिनो हमारा भी कल्याण करें।

ऐश्वर्य दात्री जन दुःख हन्त्री
पापान्विहन्त्री विमलार्चित श्रीः।
शिवात्मिका लोक पदस्थिता त्वं
श्रीनर्मदे देवि मम प्रसीद ॥२॥ (भवानी तन्त्रे)

हे नर्मदा मैया तुम सम्पूर्ण ऐश्वर्य को देनेवाली हो। सभी प्राणियों के दुःख दूर करने वाली हो। पापों का निवारण भी करती हो। विमला-कमला से सुपूजित हो। आप स्वयं ही शोभन श्री हों। शिवजी की प्यारी बेटो हो। इस प्रकार के लौकिक पदों में भी संस्थित हो। हे दिव्य स्वरूपे ! आप मुझपर भी प्रसन्न हों।

प्रातः समुत्थाय तथा शयानो
यः कीर्तयेतानुदिनं स्तवं च।
स मुक्तपापः सुविशुद्ध देहः
समाश्रयं याति महेश्वरस्य ॥३॥ (स्कन्द पुराणे)

जो पुरुष प्रातः उठकर तथा सायंकाल सोने के पूर्व प्रतिदिन पुराणोक्त नर्मदा स्तोत्र का सतत कीर्तन करता अर्थात् पाठ करता है वह पापों से प्रमुक्त हुआ तथा विशुद्ध देह वाला होकर महेश्वर सदाशिव के लोक को प्राप्त होता है।

यहाँ सतत कीर्तन की बात कही। भगवद्गीता में 'सततं कीर्तयन्तो मां' उपदेश दिया है—सतत निरन्तर मेरा भजन करो। पर यह महान् से महान् साधक भला ! वाणी से सतत कीर्तन कैसे करेगा ? अतः आशय यह-केवल वैखरी वाणी से नहीं, उपांशु जपादि से भी नहीं, मानसिक ध्यान चिन्तन से सतत चिन्तन सम्भव है वह करो अथवा प्राणों का स्वर जो मानव मात्र की संस्कृत भाषा से संप्रसूत है वह सोऽहं सोऽहं के स्वरों से अर्थात् अजपा गायत्री द्वारा सतत कीर्तन सम्भव है वही उत्तम साधक करें।



नर्मदा महिमा

नर्मदा तेरी कीर्ति अपार। नाम ले ले हों भव से पार॥
दिव्य परिधान रही तूँ धार। धार में पड़ते बेड़ा पार॥१॥
शम्भु की सुकुमारी बेटी। भूमिपर तूँ आके लेटी॥
नहीं तू माता से उपजी। पिता शंकर को सदा भजी॥२॥
तीर्थ जननी बनकर आयी। भक्त जग को अतिशय भायी॥
हुई जन गण को सुखदायी। निछावर वह तुम पर मायी॥३॥
किये जो तुझसे सच्ची प्रीति। रही ना उनको कोई भीति॥
करे जो तेरा नित गुणगान। सदा होता उसका कल्याण॥४॥

सन्त की देन

निरत रँह बहुजन हिताय सुखाय कुछ
हों कहीं स्वान्तः सुखाय प्रवृत्तियाँ।
लोक हितकारी सदा रँह सन्त की
सेतु सम साधक सभी उपलब्धियाँ॥

गुण ग्राहकता

गुण ग्राही सन्त विरले लखरहे, छिद्र मणिमय भवन में भी चींटियाँ।
देखतीं, प्राकृत जनों की प्रायशः, होंय त्योंही दोषमय बस दृष्टियाँ॥
स्वयं की छाया न दुखदायी हुई, अन्यकी छाया अँधेरा ला रही।
रहीं रुचिकर सभी रचनाएँ निजी, धन्य जिनको अन्यकी कृति भा रही॥

वाणी चार प्रकार की है-वैखरी, पश्यन्ती, मध्यमा और परा। वैखरी से उच्चारण, पश्यन्ती से अर्थाविभास, मध्यमा से ध्यान-चिन्तन तथा पराधरा से भावोद्रेक माना गया। वे स्थूल-सूक्ष्म-सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतम जिह्वा-कण्ठ-हृदय और नाभि में स्थान पाती हैं। साधक माई नर्मदा को हर को इन्हीं में प्रगट पाते हैं।

नर्मदा मादिनाथं च प्रणम्य परया गिरा।
वैखर्या तु वदेदुच्चै नर्मदे हर! नर्मदे।
ॐ नमः प्रणवार्थाय शुद्धज्ञानैक-मूर्तये।
निर्मलाय प्रशान्ताय दक्षिणामूर्तये नमः॥

(हर हर नर्मदे)

नर्मदा पर आधुनिक विचारधारा

गंगा कनखले पुण्या प्राच्यां पुण्या सरस्वती ।
याम्ये गोदावरी पुण्या पुण्या सर्वत्र नर्मदा ॥ (स्कन्दपुराण)

'गंगा कनखल (हरिद्वार) में पुण्य देने वाली है, पश्चिम में सरस्वती पुण्यदा है, दक्षिण में गोदावरी पुण्यवती है और नर्मदा सब स्थानों में पुण्यवती और पूजनीय है।"

भारत में वैसे तो अनेक पुण्य प्रदाता नदियाँ हैं, पर उनका स्थान विशेष पर महत्त्व है, उदाहरणार्थ गंगा हरिद्वार, प्रयाग, काशी और गंगासागर में पुण्य देनेवाली मानी जाती है। सरस्वती नदी तो अब लोप हो चुकी है। गोदावरी नासिक में सबसे महत्त्वपूर्ण तीर्थ है. लेकिन नर्मदा पग-पग पर पूजनीय है। ऐसी है नर्मदा की युग-युगीन कीर्ति, जो निरन्तर देदीप्यमान है।

विन्ध्याचल और दक्षिणी पठार की सभी नदियाँ हिमालय की नदियों से जेठी हैं। जबकि गंगा, यमुना, सिन्धु, सरस्वती का उद्भव भी नहीं हुआ था, तब नर्मदा, गोदावरी और कृष्णा अस्तित्व में थीं। भूगर्भ एवं पुरातत्त्व शास्त्र द्वारा जो अर्वाचीन अध्ययन क्रिया गया है, उससे यह तथ्य स्थापित होता है कि दक्षिण में गोंडवाना प्राय द्वीप था और वह अफ्रीका के भुभाग से जुड़ा हुआ था। तब नर्मदाका क्षेत्र न केवल मेडागास्कर व अफ्रीका से सम्बन्ध था, वरन् दक्षिण अमेरिका तक का व्यापार नर्मदा के द्वारा हुआ करता था।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि मानव की उत्पत्ति नर्मदा और उसके दक्षिण में हुई। नर्मदा के अंचल में नरसिंहपुर के पास भूतड़ा ग्राम में आदि पाषाण-युग के पत्थर से बने चाकू हँसिया आदि पाये गये हैं। इसके अतिरिक्त नर्मदा के पाषाणों में डिनोसर सरीखे विशालकाय किन्तु लुप्त जानवरों के अस्थि पिंजर वनस्पति वगैरह पाये गये हैं, जिससे नर्मदा के क्षेत्र का सम्बन्ध मेडागास्कर व अफ्रीका से प्रतीत होता है।

आदि नर्मदा विन्ध्याचल और सतपुड़ा के मिलन-स्थल तक अवरुद्ध होकर एक बड़ी झील के रूप में थी, जब नर्मदा ने पहाड़ों को भेदकर जाने का प्रयत्न किया, तो पौराणिक गवाही के अनुसार दोनों पर्वतों ने ब्रह्मा से उनकी मर्यादा-रक्षा करने की प्रार्थना की। ब्रह्मा ने आश्वस्त किया कि नर्मदा पहाड़ों के नीचे

से निकल जायगी नर्मदा एक पाषाणी नदी है—दोनों ओर दृढ़ पाषाणों के किनारों से बंधी। इस तरह नदियों की धारा नीचे सबसे प्रबल होती है और वे निरन्तर गहरी होती जाती हैं।

नर्मदा वरुण युग में आज से ५०० फुट ऊँचे पृष्ठ पर बहती थी। जबलपुर के पास बँदर कूदनी एक उदाहरण है, जहाँ नर्मदा पहाड़ को छोटी दूरी से ऊपर काटकर तराश कर नीचे चौड़ी होती गयी है। भूगर्भीय हलचलों ने आदि नर्मदा के स्वरूप को बदल दिया। पहले ताप्ती नर्मदा की सहायिका थी, आज वह एक स्वतंत्र नदी है। नर्मदा का सौ मील से अधिक लम्बा पथ समुन्द्र से जीता हुआ है। कुछ का मत तो यह है कि वाघ की गुफाओं तक जो विन्ध्याचल की तलहटी में इन्दौर से १०० मील पश्चिम में है, समुन्द्र लगा हुआ था। यह नर्मदाजी की खाड़ी का सिरा था, जहाँ से स्थल आरंभ होता था। बाघ गुफाओं का शिल्प जिन पाषाणों में अंकित है, वे समुन्द्र के खारेपन से नमदार होकर चित्रकला का अनुपम केनवास बन गये हैं, बाघ उस समय नर्मदा की खाड़ी का बंदरगाह रहा होगा। यह उस समय का काल था—५ लाख वर्ष पूर्व से–जब हिमालय का उत्थान नहीं हुआ था और न प्रथम उत्तरीय नद सिन्धु का उद्भव हुआ था। आर्य सप्त सिन्धु में ईसा से २५ हजार वर्ष पूर्व आये, इस तरह स्पष्ट है कि उत्तर भारत में पूर्व मानव का अस्तित्व नर्मदा के अंचल में हो गया था। उत्तर से दक्षिण को जाने के मार्ग में नर्मदा प्रथम थी और सर्वप्रथम आर्यावर्त की कल्पना नर्मदा तक ही की जाती थी। आर्यावर्त के नीचे दक्षिणी भारत द्रविड़ प्रदेश माना जाता था। मनुस्मृति में आर्यावर्त की सीमा नर्मदा तक ही है।

इसी संक्षेप विवेचन से यह जचता है कि नर्मदा का अंचल मानव की आदि सभ्यता की भूमि है। और यदि आर्यों ने नर्मदा को 'सर्वत्र पूज्यते' कहा है तो उसकी ज्येष्ठता को श्रेष्ठता में परिवर्तन कर दिया है।

पाँच लाख वर्ष पूर्व मानव-सभ्यता से परिचित नर्मदा का क्या नाम था, यह ज्ञात नहीं। नर्मदा आर्यों का रखा हुआ नाम है जिसका अर्थ है आनन्दिनी या आनन्द देनेवाली नदी, यह नर्मदा का प्राकृतिक रूप—किल्लोल करती, उछालें लेती हुई तीव्र गतिवाली नदी का है। नर्म का अर्थ आनन्द और दा का अर्थ देनेवाली। यह आर्यों द्वारा इस नदी के प्रथम दर्शन और प्रथम स्पर्श का दर्शन है जिसे आज भी सहज देखा जा सकता है। चिरकुमारी नर्मदा की खिलवाड़ उसकी१९६९ मील की यात्रा में सर्वत्र हैं। वह पहाड़ों पर से छलांग लगाती है—धुआधार बन जाता है। कहीं वह दुग्ध-धारा है फेनिल स्फटिक

श्वेत में लिपटी अल्हड़ कोमलांगी-सी कहीं वह सप्तधारा है—सहस्त्रधारा है केश छिटकाये रूप गर्विता-सी।

नर्मदा का दूसरा प्राकृतिक नाम है—मेकलसुता विन्ध्याचल की जिस पर्वत माला से नर्मदा निकलती है, वह मेकल ऋषि की तपस्या से मुखरित होने के कारण मेकल पर्वत कहलाया, इसी से उद्गम के कारण यह नाम पड़ा।

नर्मदा का विशिष्टता-सूचक नाम है, रेवा। रेवा का अर्थ है सभी चीजों को बालू बना देने वाली। नर्मदा के तटीय पाषाणों में ऐसे रासायनिक तत्त्व हैं, जो हर चीज को गला देते हैं—हड्डियों तक को वैसे एक प्राकृतिक विशेषता और भी है, पाषाणों को शिवशंकर में तब्दील कर देने की, जिसके कारण कहा जाता है—

'नर्मदा के कंकर शिवशंकर समान हैं।'

हण्डिया से आगे धापड़ी कुण्ड है। बड़ी-बड़ी चट्टानों को चीरता हुआ पानी ९० फुट की ऊँचाई से इस हिल्लोल से गिरता है कि पत्थर भी कट कर गिरते हैं। कुण्ड की पाषाणी रगड़ और चक्र की तरह घूमने वाली जल-प्रवाह में पत्थर गोल हो जाते हैं। देश के मन्दिरों में अधिकांश शालिग्राम (नर्मदेश्वर) इसी कुण्ड के हैं। इसी कारण कहा गया है कि नर्मदा 'अश्मकुट्टनी'—नर्मदा पत्थरों को चूर-चूर कर देती है।

ये तीनों नर्मदा की प्रकृति और परिवेश के विशेषण-सूचक नाम हैं। इसके बाद उसके आख्यानों पर आधारित जो नाम हैं, वे इस प्रकार हैं :—

(१) शांकरी—यानी शंकर के दिव्य शरीर से प्रगट होने के कारण शिव की बेटी। कथा है कि ताण्डव नृत्य करते समय पसीना बह निकला। वह अमरकंटक के एक कुण्ड में जमा हुआ। वहीं एक बालिका प्रगट हुई जो शांकरी कहलाई।

(२) दक्षिण गंगा—भारतमें आदि आर्य कालमें केवल तीन नदियां ही श्रेष्ठ मानी जाती थीं—गंगा, सरस्वती व नर्मदा। भारत के दक्षिण में होने के कारण इस दक्षिणा गंगा कहा गया। रेवा पुराण में कहा गया है कि एक बार सब देवता शंकर से पापमोचन की प्रार्थना लेकर मेकल पर्वत पर प्रार्थना करने लगें। इससे द्रवीभूत होकर शिव के माथे के चन्द्र से एक बिन्दु पृथ्वी पर गिरा, जिसके पृथ्वी पर गिरते ही एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या हुई। इसी कन्या ने वर माँगा—हे महादेव ! पृथ्वी में जिस प्रकार गंगा स्वर्ग से आकर प्रसिद्ध हुई, उसी प्रकार मेरी प्रसिद्धि दक्षिण गंगा के नाम से हो।'

(३) सोमोद्भवा—सतयुग में देवताओं ने सोम नामका यज्ञ किया। यज्ञ की सोम-सुरा से ही नर्मदा की उत्पत्ति हुई। यह भी एक पौराणिक आख्यान है।

इन सब नामों से प्रचलित नर्मदा और उसका अपभ्रंश नरबदा तथा रेवा ही है।

(श्री विष्णुदत्त तरंगी जी की 'नर्मदे हर' पुस्तक से यहाँ साभार उद्धृत)

रेवातीरे तपः कुर्यात् (नर्मदा तट पर तप करे)

जन तप करें मन इन्द्रियां भी वश करें।
शुचि देश रेवा का न कोई परिहरें।।
सुस्थिर रहें तप साधना जप भी करें।
विचरें सदा निस्संग रह रक्षा करें।।१।।

प्राणादि की, आहार से जलवायु से।
रह नर्मदा के निकट तरुवर छाह से।।
पोषण सदा शिव सन्निकट लखते हुए।
होता, जनों का शम्भु नित भजते हुए।।२।।

भीतर तथा वाहर सदाशिव छा रहे।
कह नर्मदे हर गीत जनगण गा रहे।।
जँह-तँह निहारें शिव मनुज नहि अन्य कुछ।
शिव में समाये रँह न दुर्गुण दोष कुछ।।३।।

काय की हो शुद्धि तीर्थ-स्नान से।
बुद्धि की भी शुद्धि शिव के भजे से।।
वसें मन में शिव सदा मन शुद्ध हो।
सफल जीवन सन्तसंग सदैव जो।।४।।

ध्यानजप स्वाध्याय में जीवन लगा।
त्याग के संग्रह-परिग्रह मन रँगा।।
तजे विषया सक्ति सारे व्यसन भी।
नर्मदा के तीर जप तप हो तभी।।५।।

*　　　　*　　　　*

शैवी छटा सम्पूर्ण होकर द्रवमयी।
है मूर्ति रेवा की प्रगट करुणामयी।।
लेते शिवाश्रय सभी रेवा भक्त ये।
हर नर्मदे! हर नर्मदे! कहते हुए।।१।।

अन्तर्जगत् में शिव समाये रँह सदा।
पा नर्मदा की सुधा जीवन जगमगा।।
है नर्म-सुख का नाम, वदे वह मधुर भी।
करते उसीका पान रेवा भक्त ही।।२।।

।। हरिः ॐ तत् सत्।।

*　　　　*　　　　*

ज्ञानसत्र प्रकाशन के अन्य प्रकाशन

(वर्तमान में उपलब्ध साहित्य)

भक्ति-ज्ञान-वेदांत

१.	भक्त-भक्ति भगवान	१२)
२.	परम शिव	१५)
३.	गीता के भगवान और उनकी देन	२५)
४.	बड़ा कौन	१२)
५.	अपने आपको जानो	१५)

शंकर साहित्य

१.	श्री शंकर चरितामृत एवं संक्षिप्त शंकर दिग्विजय	१५)
२.	श्री शंकर वचनामृत [वेदान्त के ४० निबन्ध]	२४)
३.	श्री गीता के शाँङ्करभाष्य की विशेषताऐं	१०)
४.	श्री दक्षिणामूर्ति गुरुस्तव	१०)

नर्मदा साहित्य

१.	श्री नर्मदा कल्पवल्ली	१०)
२.	श्री नर्मदा प्रदक्षिणा	२५)
३.	श्री नर्मदा पुराण [४५२ अध्याय खुले पन्ने बड़े अक्षर]	२५०)

विशेष जानकारी के लिये पत्र-व्यवहार करें :-

व्यवस्थापक :

नर्मदा सत्संग भवन

सेठानी घाट, नर्मदापुर,

होशंगाबाद (म० प्र०) ४६१००१

विवेक आश्रम

कुण्ड : ऋषिकेश (उ० प्र०)- २४९२०१